दानशील – साहित्यरसिक – संस्कृतिप्रिय

स्व० बाबू श्री बहादुर सिंहजी सिंघी
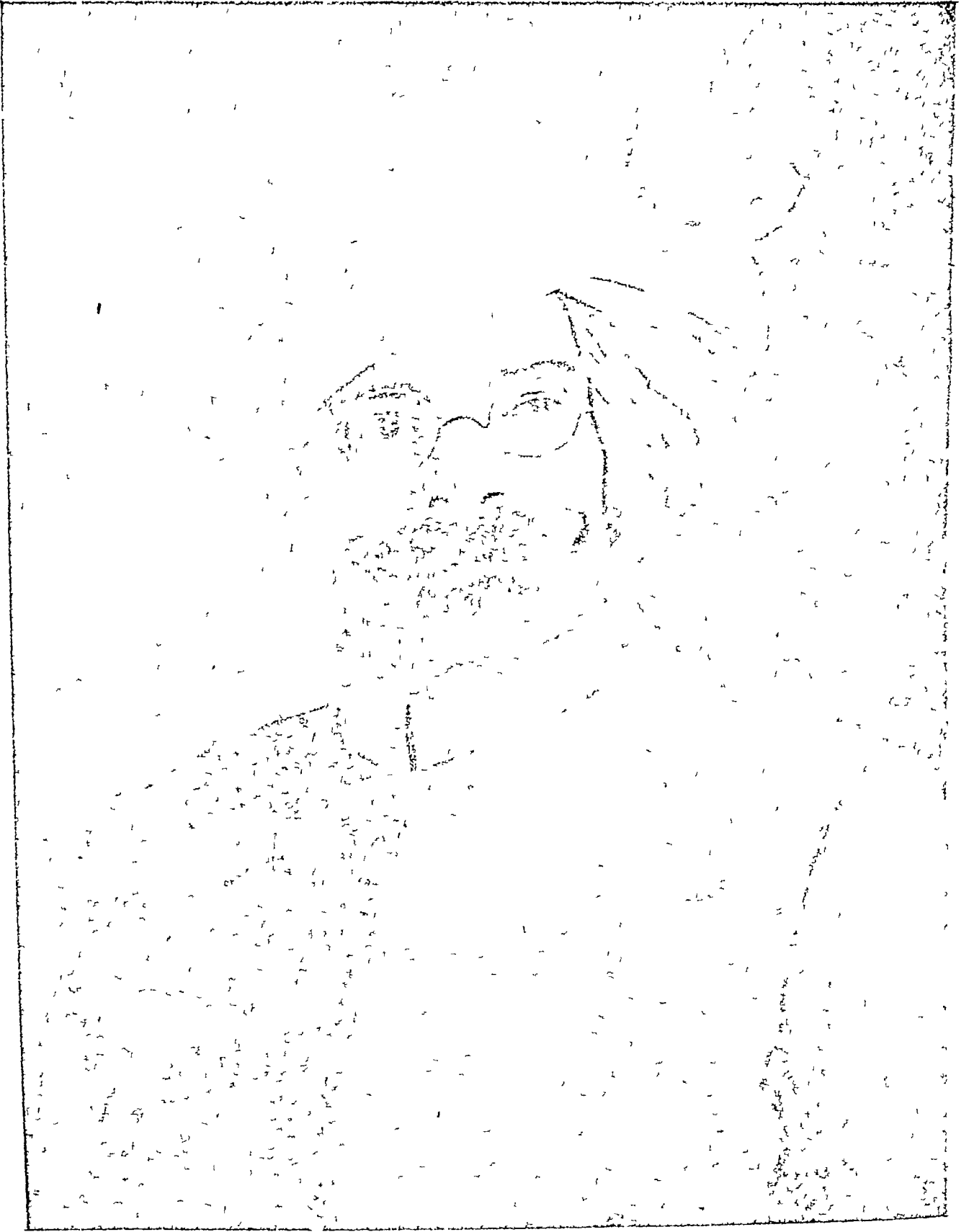
जन्म ता. २८।६।१८८५] अजीमगंज – कलकत्ता [मृत्यु ता. ७।७।१९४४

स्वर्गवासी

बाबू श्रीबहादुर सिंहजी सिंघी

के

सम्बन्धके पुण्य स्मरण

*

लेखक

आचार्य श्री जिनविजयजी मुनि

तथा

पण्डित श्री सुखलालजी संघवी

*

[सिंघीजीकी प्रथम स्वर्गमन श्राद्धतिथि निमित्त प्रकाशित]

भारतीय विद्या – तृतीय भाग

'सिंघी स्मृति ग्रन्थ'मेंसे उद्धृत

प्रकाशक

प्रो० जयन्तकृष्ण ह० दवे, एम्. ए., एल्एल्. बी.

ऑनररी रजिष्ट्रार

भारतीय विद्या भवन

वि. सं. २००१] मुंबई [ई. स. १९४५

मुद्रक–रामचद्र येसू शेडगे, निर्णयसागर प्रेस, २६।२८ कोलभाट स्ट्रीट, मुंबई. २.

अनुक्रम

*

पण्डितवर्य श्रीसुखलालजी लिखित संस्मरणोंका अनुक्रम

सिंघीजी – अपने तीनों पुत्रोंके साथ

[सिंघीजीकी बाईं ओर श्रीराजेन्द्र सिंहजी तथा दाहिनी ओर श्रीनरेन्द्र सिंहजी और श्रीवीरेन्द्र सिंहजी खडे हैं]

सिंघीजीके ज्येष्ठ पुत्र-श्रीराजेन्द्र सिंहजी सिंघी, बी. कोम्.

कॉन्सल ऑफ पोलांड, सन् १९३६-१९३८.

प्रेसिडेन्ट ऑफ मारवाडी एसोसिएशन (सं. १९९८)

डायरेक्टर-झगराखण्ड कोलियारी लि०

,, कलकत्ता नेशनल बेंक लि०

,, हिन्दुस्थान कोटन मिल्स लि०

,, मोडर्न हाऊस एण्ड लेन्ड डेवलपमेन्ट कं. लि०

सिंघीजीके द्वितीय पुत्र – श्रीनरेन्द्रसिंह सिंघी, एम्. एस्सी., बी. एल्,

आनररि मेजीस्ट्रेट – लालवाग-मुर्शिदाबाद
,, सेक्रेटरी – जियागंज हाईस्कूल
,, ,, – सिंघीपार्क मेला (१९४३)
डायरेक्टर – झगराखण्ड कोलियारी लि०
,, नवयुवक लि० (कलकत्ता)

सिंघीजीके लघु पुत्र–श्रीवीरेन्द्रसिंहजी सिंघी

[कलकत्ता युनिवर्सिटीमें इन्टर साइन्स पास करके इन्जीनियरिंग कालेजमें पढाई की, स्वास्थ्य ठीक न रहनेसे परीक्षा पास न कर सके]

सिंघीजीके पौत्र और श्री राजेन्द्रसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र
श्री राजकुमारसिंह सिंघी
(अभी कालेजमें बी. ए. का अध्ययन कर रहे है)

सिंघीजीकी वृद्ध माता
(अपने पौत्र श्री राजेन्द्र सिंहजीके साथ वार्तालाप कर रही हैं)

सिंघीजी बंगालके वर्तमान गवर्नरकी पत्नी लेडी केसीका अपने पार्कमें स्वागत कर रहे हैं
(यह उनका अन्तिम चित्र है)

सिंघी पार्क में – सिंघी सदन

[जिसकी डीझाइन सिंघीजीने अपने हातसे वनाकर पुराने मकानको आधुनिक रूप दिया]

सिंघीपार्कमें मकरानेके मार्बलका सुन्दर फव्वारा

[सिंघीजीने अपने हाथसे प्लान बनाकर निजकी देख भालमें बनवाया]

सिंघीजी–सुप्रसिद्ध जैनसाहित्यज्ञ जर्मन विद्वान्
डॉ॰ हर्मन याकोबीके साथ

(सिंघीजीके हाथमें छडी है, सन् १९१३-१४)

सिंघीजी – बिहारके भूतपूर्व गवर्नर व्हीलर और लेडी व्हीलरसे जैन तीर्थ पावापुरीमें मिलनेवाले जैन डेप्युटेशनके साथ
[दाहिनी ओर अंतमें बैठे हैं]

ॐ

श्रद्धेय श्री मुनिजी कि सेवामे

सविनय प्रणाम, आपका कृपापत्र ता० २०-१-४३ का. जैसलमेर से लिखा आया पत्र बिशेष उत्साहजनक और मनोरंजक है इसका उत्तर तो अवसर मिलनेपर लिखेंगे वर्तमान मे तो आपने रुपये मंगवाया इसके पहुंचने मे बिलम्ब न हो, इस बिचार से यह छोटासा नोट लिखकर भेज रहा हुं सो सो के नोट वहाँ जैसे स्थान मे भुंजानेमे कष्ट न हो इस बिचारसे दस दस के ही भेजे भाई शंभू को = १५००) आपके लिखे अनुसार आज भेज दिया है।

पूज्य भाभी कि तबियत कैसी ही है, उनका तथा और सबों का प्रणाम। यहाँ सब मजेमे हैं आप अपने कुशल समाचार से अनुगृहीत करते रहें। इसदफे आपको अपने मनोवांछित कार्य तो मिल गया है मगर उसके आवेश मे आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान न भुलावें उसी पर सब निर्भर है, बिशेष फिर।

श्री मुंशिजी से पत्र व्यवहार चल रहा है।

सं २००० माघ ब = ११

सिंघीजीके सुन्दर देवनागरी हस्ताक्षर

सिंघीजीके संग्रहमें शिव-पार्वतीकी बहुमूल्य रत्नकी मूर्ति

[जिसकी पूजा छत्रपति शिवाजी महाराज करते थे]
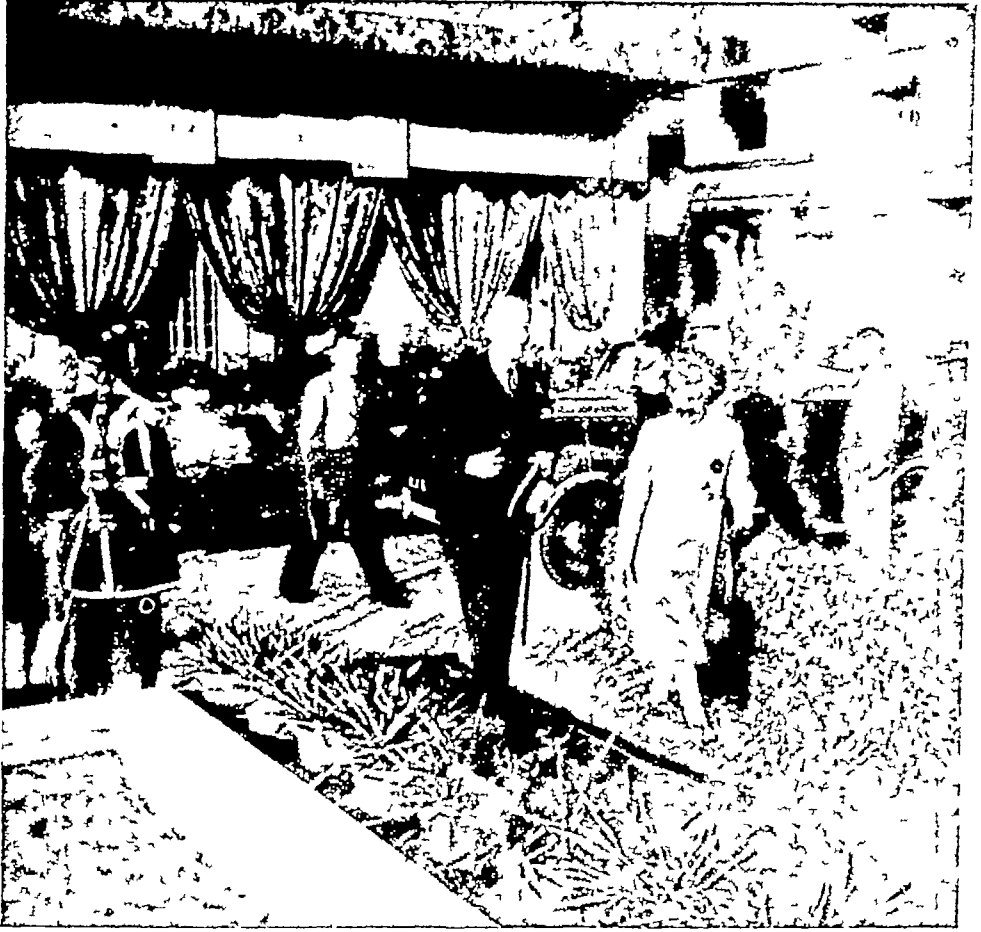
सिंघीजी–बंगालके भूतपूर्व गवर्नर सर् हर्बर्टको अपने पार्कमें ले जा रहे हैं.

[जब कि उन्होने रेड क्रॉस फंडकी सहायताके लिये अपने पार्कमें सन १९४२ के डीसेंबरमें सिंघीपार्क मेलाका एक बहुत बडा आयोजन किया था जिसमें उस समयके कमान्डर-इन्-चीफ (वर्तमान वायसराय) लॉर्ड वावेल भी उपस्थित हुए थे]

सिंघीजी - बंगालके भूतपूर्व गवर्नर और लेडी हर्बर्टके साथ

[बाईं ओर सिंघीजीके ज्येष्ठ पुत्र श्री राजेन्द्र सिंहजी तथा दाहिनी ओर ज्येष्ठ पौत्र चि. राजकुमार सिंह खडे हैं]
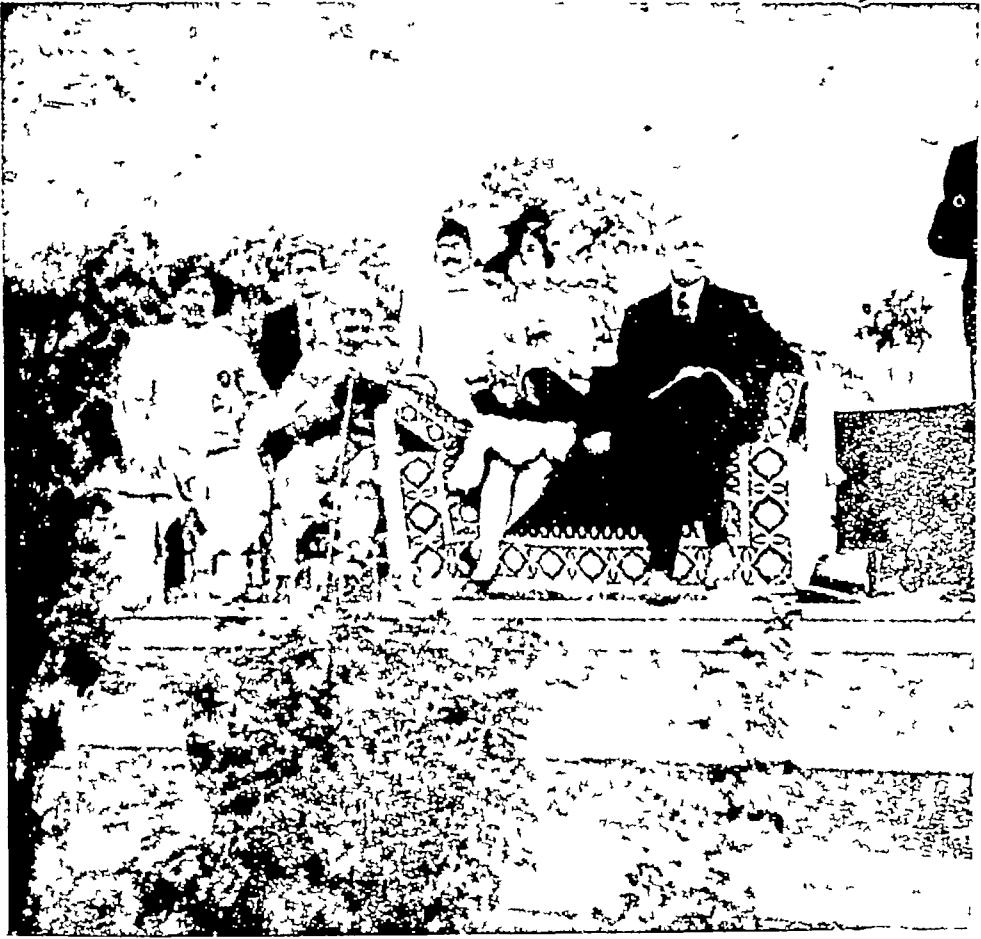
सिंघीजी – मुर्शिदाबादके नवाब और बंगालके भू. पू. गवर्नर
तथा लेडी हर्बर्टके साथ

सिंघीजीकी ओरसे दुष्कालपीडितोंको प्रतिदिन भोजन देनेके समय एकत्रित हुए बुभुक्षित मनुष्योंका एक दृश्य
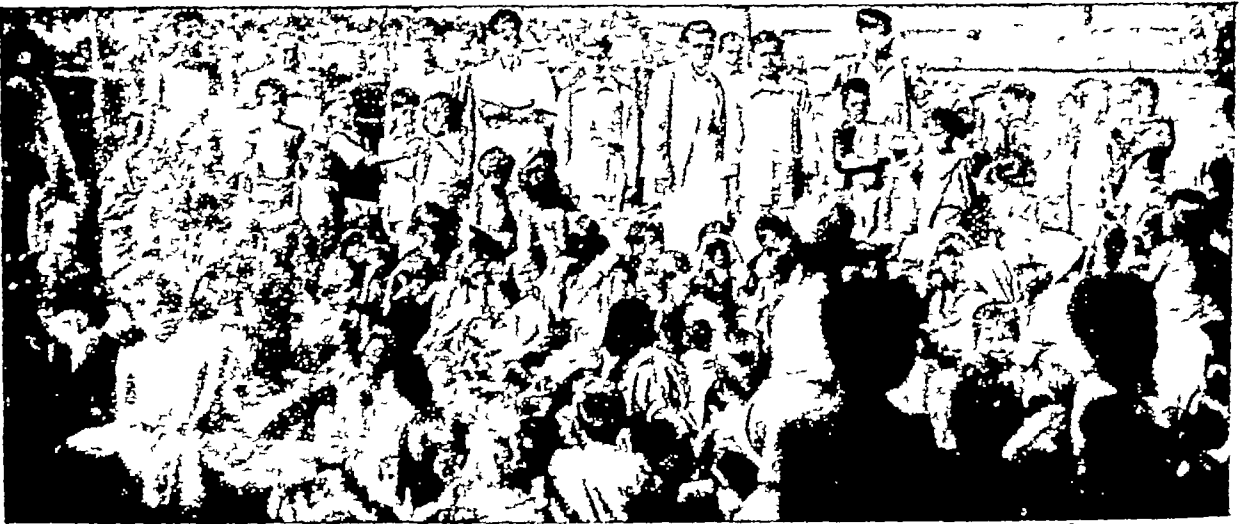
सिंघीजीके स्वयंसेवक–क्षुधार्तोंको भोजन देनेके लिये उत्सुक हो रहे हैं उसका एक दृश्य

स्व० बाबू श्रीबहादुर सिंहजी सिंघीके साथके मेरे पुण्य स्मरण

*

'भारतीय विद्या' का प्रस्तुत ३ रा भाग, जिसमें हिन्दी और गुजराती भाषाके छोटे-बडे अनेक मौलिक और विचारपूर्ण निबन्धोंका एकत्र संग्रह किया गया है, योगानुयोगसे स्वर्गवासी श्रीमान् बाबू बहादुर सिंहजी सिंघीकी प्रथम वार्षिक मरण-तिथिके अवसर पर प्रकट हो रहा है, इसलिये हमने इसको **'श्रीबहादुर सिंहजी सिंघी स्मृति ग्रन्थांक'** के रूपमें प्रकाशित करना निश्चित किया है।

सिंघीजीकी पहली श्राद्धतिथि

विगत जुलाईकी (सन् १९४४ के) ७ वीं तारीखको **'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'**के संस्थापक, 'भारतीय विद्या भवन'के एक परम हितैषी एवं स्थापक-सदस्य और मेरे अनन्य आत्मीय सहृदय सुहृद्वर श्रीमान् बाबू बहादुर सिंहजी सिंघीका, ५९ वर्षकी वयमें, कलकत्तामें, उनके अपने **'सिंघीपार्क'** नामक निवासस्थानमें, दुःखद अवसान हो गया। सिंघीजीके स्वर्गवाससे मुझे अपने व्यक्तिगत संबन्धकी दृष्टिसे जो उद्वेग और अवसाद हुआ है वह कभी नहीं मिटनेवाला और अप्रतिकार्य है। प्रायः पिछले पंदरह वर्षोंमें जो कुछ भी यत्किंचित् साहित्योपना मैं कर सका हूं और अब भी कर रहा हूं, वह सर्वथा उन्हींके उत्साह, आश्रय, आदर और औदार्यका फल है। सिंघीजीके साथ मेरा वह सौहार्दसम्बन्ध न बन्धता और मैं शान्तिनिकेतनमें जा कर **'सिंघी जैन ज्ञानपीठ'** का अधिष्ठाता न बनता, तो शायद मेरा कार्यक्षेत्र आज और कोई दूसरा ही होता। इसलिये इस प्रसंग पर, सिंघीजीके स्वर्गमनकी इस पहली श्राद्धतिथिके उपलक्ष्यमें, मैं अपने पिछले १५ वर्षोंके वे कुछ पुण्य स्मरण यहां पर शब्दांकित करना चाहता हूं जो मैंने समय समय पर प्राप्त होनेवाले उनके साथके सहवासमें संगृहीत किये हैं। यों तो ये स्मरण बहुत विस्तृत हैं। उन सबको यदि व्यवस्थित रूपसे लिखना चाहूं तो एक बडीसी पुस्तक ही हो जाय–और यदि कभी मौका मिला तो उन सबको लिखनेकी मेरी आकांक्षा भी है–पर प्रस्तुतमें मैं कुछ उन्हीं स्मरणोंको यहां पर आलेखित करना चाहता हूं जो विशेषकर साहित्यविषयक कार्यके साथ संबन्ध रखते हैं। किस तरह उन्होंने मेरी साहित्यिक प्रवृत्तिको अनन्य आश्रय दिया और किस तरह इस प्रवृत्तिके निमित्त अत्यन्त उत्सुकताके साथ उदार अर्थव्यय किया–इसीको लक्ष्य कर ये स्मरण लिखे जा रहे हैं। इन स्मरणोंके पठनसे पाठकोको बाबू बहादुर-सिंहजीके उदार व्यक्तित्व और उदात्त संस्कारप्रेमका परिचय प्राप्त होगा।

सिंघीजीके साथ मेरा जो स्नेहसम्बन्ध और कार्यव्यवहार चालू हुआ उसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे बहुत कुछ निमित्तभूत, मेरे जीवनके चिर सहकारी एवं सहचारी तथा जो मेरे और सिंघीजीके समान सखा और श्रद्धेय व्यक्ति है, पं० श्रीसुखलालजी हैं। सिंघीजीके साथ पण्डितजीका परिचय बहुत वर्षोंसे था। कलकत्ता या अन्य किसी

स्थान पर, जैन ज्ञानप्रकाशक कोई संस्थाकी स्थापना करनेमें सिंघीजीको पण्डितजीकी ओरसे भी बहुत कुछ प्रेरणा मिली थी। पण्डितजीके प्रौढ पाण्डित्य और विशिष्ट व्यवहार कौशल पर सिंघीजीकी बडी श्रद्धा थी। सिंघीजीके संकल्पित कार्यका भार अपने हाथमें लेनेका जो मैंने स्वीकार किया उसमें भी पण्डितजीकी इच्छा ही बहुत कुछ प्रेरक बनी थी। मेरे निवेदन करने पर, पण्डितजी भी सिंघीजीके साथके अपने कुछ विशिष्ट स्मरण लिखनेको प्रवृत्त हुए हैं जो इसके साथ ही पाठकोंको पढने मिलेंगे।

*

विदेशयात्रासे मेरा प्रत्यागमन

सन् १९२९ के डीसेंबर महिनेमें, मैं जर्मनीकी यात्रा कर वापस लौटा और लाहोरकी कॉंग्रेसमें द्रष्टाके रूपमें उपस्थित हुआ। यद्यपि जर्मनी जानेमें मेरा मुख्य लक्ष्य तो था साहित्यिक कार्यके करनेमें कुछ विशिष्ट और अधिक क्षमता प्राप्त करनेका। लेकिन इस विषयमें तो मुझे वहां कोई अनपेक्षित और अज्ञात वस्तु प्राप्त करने जैसी दिखाई न दी। पर उस समयके वहांके समाजवादी, साम्यवादी और अराजकवादी आदि वातावरणने मेरा वह मूल लक्ष्य ही शिथिल बना दिया और मैं समाजवादी, साम्यवादी आदि विचारों और आन्दोलनोंका उत्सुक अभ्यासी बन गया। भिन्न भिन्न देशोंके, विविध प्रकारके विचारवाले अनेकानेक विद्वान् मनुष्योंके, परिचयमें आनेका मुझे वहां अत्यधिक प्रसंग मिलता रहा और इससे मेरे विचारोंमें वहां बहुत कुछ क्रान्ति होती गई। जीवनके बहते आते हुए प्रवाहमें बडे बडे भंवर पडने लगे। साहित्यिक संशोधन और संपादनके कार्यमें उपरतिसी होने लगी। निष्क्रिय आध्यात्मिकता और अर्थहीन धार्मिकता पर उद्वेग होने लगा। जीवनको अब किसी दूसरी ही ओर प्रवृत्त करनेके तरंग मनमें उछलने लगे। इसी क्षुब्ध अन्तरंगके साथ, मैं जर्मनीसे यहां लौटा था और शुष्क साहित्योपासनाकी अपेक्षा किसी सजीव सामाजिक या राष्ट्रीय जागृतिकी प्रवृत्तिमें अपने भावी जीवनको संलग्न करनेकी मनमें ठान रहा था। कॉंग्रेससे वापस लौट कर अहमदावाद आया और मनके नये तरंगोंके अनुसार, तदनुकूल कार्यक्षेत्रकी विचारणा करने लगा। कुछ विचार फिरसे विदेशमें जानेका भी मनमें रखा हुआ था और वहीं कोई कार्यकेन्द्र–जिसका बीज मैं बर्लिनमें डाल भी आया था–स्थापित करनेका मनोरथ कर रहा था।

लाहोर कॉंग्रेसके प्रस्तावके मुताबिक देशमें स्वराज्यकी सिद्धिके लिये कोई जोरदार आन्दोलन खडे करनेकी तजवीज महात्माजी सोच रहे थे और देशकी हवा उससे काफी उष्मा लिये हुई थी। एक दिन यों ही महात्माजीसे मैंने अपना पुनः विदेशमें जानेका भाव प्रकट किया, तो उन्होंने कहा–'अब तो हमें देशकी स्वतंत्रताके लिये कोई जोरदार आन्दोलन शुरु करना होगा; और उसमें तुम्हारे जैसे विद्यापीठके प्रधान सेवकोंको अगुवानी लेनी होगी। ऐसे समयमें तो देश ही अपना कर्मक्षेत्र होना चाहिये, न कि परदेश' इत्यादि। महात्माजीके विचार सुन कर मैं चुप हो रहा और परदेशमें पुनः जानेके विचारको तो उसी समयसे मनसे हटाने लगा।

*

सिंघीजीका पहला आमंत्रण

मार्च महिनेमें, पटनेसे कुछ जैन सज्जनोंके आग्रहपूर्ण आमंत्रण पत्र आये। वहां पर, पावापुरी तीर्थके विषयमें, कोर्टमें केस चल रहा था, जिसमें श्वेताम्बर और दिगम्बर पार्टियां लड रही थीं। श्वेताम्बरोंकी ओरसे, स्व० विद्यावारिधि काशी प्रसादजी जायस्वाल बेरिस्टर, कॉन्सल थे। श्वेताम्बर–दिगम्बर संप्रदायके मतभेद विषयके कुछ ऐतिहासिक प्रश्नोंकी चर्चा उन्हें मुझसे करनी थी, और इतिहासके ऐसे प्रश्नोंमें कुछ मेरी सम्मति आधारभूत समझी जाती है इसलिये उन्होंने एक 'एक्सपर्ट' गवाहके रूपमें मेरी जबानी भी कोर्टमें लिवानी थी। सो उन्होंने अपनी पार्टीके प्रमुख व्यक्तियोंको कह कर मुझे वहां बुलानेका अत्याग्रहपूर्ण आमंत्रण भिजवाया। श्री बहादुर सिंहजी सिंघी भी उन्हीं प्रमुख व्यक्तियोंमेंसे एक थे।

श्री सिंघीजी, बहुत समयसे अपने स्वर्गवासी पुण्यश्लोक पिता श्रीडालचन्दजी सिंघीकी स्मृतिके निमित्त कोई ज्ञानप्रसारक अच्छा कार्यकेन्द्र स्थापित करनेकी बात सोच रहे थे; पर उसके लिये उन्हें कोई उपयुक्त नियामक अथवा योजककी सहायता हस्तगत हो नहीं रही थी। पण्डितवर्य श्री सुखलालजी द्वारा, सिंघीजीको मेरी अहमदाबादवाले पुरातत्व मन्दिरगत कार्यप्रवृत्ति और तदनन्तर परदेशगमन आदिकी सारी बातें ज्ञात होती रहती थीं। मेरा विदेशसे वापस आना सुन कर और पण्डितजीकी प्रेरणा पा कर, सिंघीजीकी मनोभावना हुई कि मैं कलकत्ता अथवा उधर ही कहीं अन्य जगह जा कर बैठूं और उनके संकल्पित कार्यका संचालन अपने हाथमें लूं। इस बारेमें कुछ प्रत्यक्ष विचार-विनिमय करनेका अवसर भी पटनेमें मिल जायगा, ऐसा सोच कर मैं पटना चला गया। पर मेरे पटना पहुंचनेके पहले ही किसी अत्यावश्यक कार्यवश सिंघीजीको कलकत्ता चला जाना पडा, इससे वहां हमारी मुलाकात नहीं हो पाई।

पटनेमें कोर्टमें साक्षी वगैरहका काम कई दिन तक चलनेवाला था और वहां पर मेरे परममित्र श्री का० प्र० जायस्वालके साथ रहनेका मुझे अकल्पित लाभ प्राप्त हो रहा था इसलिये मैंने वहां कुछ अधिक समय तक ठहरनेका कार्यक्रम सोचा। जब कोर्टमें काम नहीं होता था तो जायस्वालजीके साथ पटनेके आसपासके पुराने स्थानोंको देखनेके लिये फिरा करते थे। ५–७ दिन हम दोनोंने, खण्डगिरिवाले खारवेलके शिलालेखका जो पूरा कास्ट पटना म्युजियममें रखा हुआ है, उस परसे लेखके सन्दिग्ध और विवादास्पद शब्दों और अक्षरोंका पाठ पढनेमें व्यतीत किये। मेरे सामाजिक और राष्ट्रीय प्रवृत्तिविषयक विभिन्न विचारोंको सुन कर जायस्वालजी बडे चमकते थे और मुझसे सदा आग्रहपूर्वक वारंवार कहा करते थे कि–'आपको तो अपने परमप्रिय इतिहास और साहित्य संपादनके पवित्र कार्यके सिवा अन्य किसी प्रवृत्तिमें न पडना चाहिये।' जायस्वालजी नरम प्रकृतिके विद्वान् थे। सामाजिक या राष्ट्रीय उग्र वातावरणसे वे सदा दूर ही रहते थे। राजकीय अर्थात् राष्ट्रीय प्रवृत्तिमें उन्हें सच्चाईकी अपेक्षा कुटिलता ही अधिक दिखाई देती थी। अतः इस प्रवृत्तिसे उन्हें बिलकुल प्रेम नहीं था। सामाजिक जागृतिके बारेमें वे चलती-आईको चलने देनेवाले विचारोंके थे, इससे इस विषयमें वे उदासीन रहते थे। इसलिये मुझसे उन्होंने

बहुत ही आग्रहपूर्वक कहा कि–'साहित्योपासनासे बढ कर कोई पुण्यकार्य और देश-हितकार्य नहीं है; और फिर, जो कार्य आप कर रहे हैं वह तो लाखोंमेंसे किसी एक ही से शक्य है। इसलिये आपको तो इस महत् कार्यको छोड कर अन्य किसी कार्यांतरमें संलग्न नहीं होना चाहिये' इत्यादि।

मैं यों जब पटनेमें था तब एक दिन कलकत्तेसे सिंघीजीका टेलीग्राम मिला जिसमें उन्होंने कमसेकम एक दिनके लिये भी कलकत्ता आनेका मुझसे अनुरोध किया। मेरी भी इच्छा उनसे मिलनेकी थी ही–सो मैंने कलकत्ते जानेका निश्चय किया।

*

शान्तिनिकेतनका प्रथम दर्शन

पटनासे साहिबगंज लूप लाईनसे हो कर कलकत्ते जाते समय रास्तेमें शान्तिनिकेतन आता था। विश्वभारतीके नामसे संसारके संस्कृतिप्रिय जनपदोंमें सुप्रसिद्ध और भारतके सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक कवीन्द्र गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरके वासस्थानसे पुनीत इस तीर्थस्थानके दर्शनोंकी अभिलाषा तो बहुत वर्षोंसे हो रही थी, पर उसे सफल करनेका अभी तक कोई प्रसंग नहीं मिला था। सो कलकत्ते जाते समय इस वार इस स्थानकी यात्रा भी करनेका सुअवसर मिल गया। मैं एक दिनके लिये बोलपुर स्टेशन पर उतर कर शान्तिनिकेतन हो आया। मेरे चिरपरिचित सहृदय सन्मित्र आचार्य श्रीक्षिति-मोहन सेन वहीं पर थे। गुरुदेव कहीं बहार गये हुए थे सो उनके दर्शनका सौभाग्य तो नहीं प्राप्त हुआ, पर आश्रमका बाह्य और कुछ आन्तरिक अवलोकन कर लिया। गुरुदेवकी गीतांजलिके काव्योंका मनन और पठन तो जीवनमें बहुत वर्षोंसे हो रहा था पर जिस पुण्यभूमिमें बैठ कर गुरुदेवने वाग्देवताकी वैसी लोकोत्तर विभूति प्राप्त की, उस भूतिमती भूमिका चिराकांक्षित दर्शन जीवनमें प्रथम वार ही कर उस दिनको अपने आयुष्यका एक सबसे अधिक सुखद और सुधन्य माना। शान्तिनिकेतनके प्रशान्त, प्रस्फुटित और प्रमुदित तपोवनको देख कर मेरा हृदय बहुत प्रहर्षित हुआ। वहांके उस अनवद्य, अनाडंबर और अनाकुल वातावरणकी अनुभूति कर अंतरात्मा आनन्दसे उच्छ्वसित हुआ। मनमें अकल्पित रीतिसे भाव उठा कि यदि कभी अवसर मिल जाय तो कमसेकम ४–६ महिने तो जरूर इस तपोवनमें आ कर बसना चाहिये और गुरुदेवकी ज्ञानगरिमापरिपूर्ण अप्रतिम प्रतिभाकी प्रत्यक्ष उपासना कर, जीवन-समृद्धिमें एक मूल्यवान् स्मृतिरत्नकी वृद्धि करनी चाहिये।

दूसरे दिन मैं वहांसे कलकत्ते गया। सिंघीजीने तो तारमें लिखा था कि कलकत्ते आनेकी और गाडीकी सूचना तारसे दें; लेकिन मैं तो यों ही घोडागाडी कर उनका मकान खोजता हुआ अनपेक्षित भावसे उनके वहां चला गया। नीचे दरवान खडा था उसने नाम-ठाम पूछा और ऊपर जा कर बाबूजीको खबर दी तो वे स्वयं ऊपरसे उतर कर नीचे आये और मुझे ऊपर सीधे अपने बैठनेके कमरेमें ले गये। बोले 'मैं तो ३ दिनसे टेलीग्रामकी प्रतिक्षामें था–आप तो यों ही विना खबर किये चले आये। खबर मिलती तो स्टेशन पर मोटर चली आती'–इत्यादि।

*

सिंघीजीसे पहली भेट

सिंघीजीसे, मेरी यह एक तरहसे पहली ही भेट थी। यद्यपि इससे कोई १० वर्ष पहले (सन् १९२१ में) कलकत्ते ही में, जब उनके स्वर्गस्थ पिता श्रीडालचन्दजीसे कोई आधे घंटेके लिये मेरा मिलना हुआ था, तब वे भी उस समय वहां उपस्थित थे, परंतु उस समय उनसे सीधी बातचीत करनेका कोई प्रसंग नहीं आया था। उस प्रसंगके अगले दिन, कलकत्तेकी एक जैन सभाके सामने मेरा व्याख्यान हुआ था, जिसमें मैंने अपने कुछ राष्ट्रीय विचार प्रकट किये थे और उस समय देशमें महात्माजीने असहकारका जो अभिनव कार्यक्रम आन्दोलित किया था उसमें जैन समाजको भी किस तरह सम्मीलित होना आवश्यक है, वह समझाया था। श्रीबहादुर सिंह बाबू उस सभामें उपस्थित थे, और उनके साथ, बडोदाके स्वर्गस्थ लालभाई कल्याणभाई झवेरी, जो मेरे एक निकट परिचित सज्जनोंमेंसे प्रमुख व्यक्ति थे, वे भी वहां हाजर थे। व्याख्यान समाप्तिके बाद सेठ लालभाईने मुझे बाबू डालचन्दजीसे मिलानेके लिये ले जाना चाहा। उन दिनों, पूनामें नूतन स्थापित भाण्डारकर रीसर्च इन्स्टीट्यूटको जैन समाजकी ओरसे ५०००० का दान दिलानेका मैंने वचन दिया था और उस कार्यमें सेठ लालभाई तथा कलकत्तेके सुप्रसिद्ध जौहरी बाबू श्रीबद्रीदासजीके सुपुत्र स्व० बाबू श्रीराजकुमार सिंहजीने मुझे सर्वाधिक सहायता दी थी। लालभाई सेठ सिंघीजीके पिता और उनके निजके साथ भी घनिष्ठ मित्रताका संबंध रखते थे। इसलिये उनकी इच्छा हुई, कि मैं बाबू डालचन्दजीसे भी मिलूं और उनको भाण्डारकर रीसर्च इन्स्टीट्यूटका परिचय दूं एवं उसमें जो जैन साहित्यका संग्रह है तथा उसके द्वारा जैन साहित्यके प्रकाशनका जो काम होना सोचा गया है, उसका दिग्दर्शन कराऊं। दूसरे दिन रातको आठ बजे लालभाई सेठ मुझे श्रीडालचन्दजी सिंघीके पास ले गये। कोई आध घंटे तक उनसे वार्तालाप होता रहा। मैंने उक्त इन्स्टीट्यूटका यथोचित परिचय कराया और जैन साहित्यके प्रकाशन आदिका भी कुछ विचार सुनाया। साथ ही में, अहमदाबादमें अभिनव स्थापित गुजरात विद्यापीठ और तदन्तर्गत पुरातत्त्वमन्दिरका भी कुछ परिचय कराया। बाबू डालचन्दजी सिंघी बडे ज्ञानप्रेमी और विद्यानुरागी थे ही। ज्ञानप्रकाशनके कार्यमें वे हमेशां ही अपनी उदारता प्रकट किया करते थे। मेरे आगमनके उपलक्ष्यमें, उन्होंने भाण्डारकर इन्स्टीट्यूटके फण्डमें, उसी समय १००० (एक हजार) रूपया देना स्वीकार कर, लालभाई सेठको उसके ले जानेकी सूचना की। उस समय स्वप्नमें भी किसीको कोई कल्पना नहीं हो सकती थी, कि १० वर्ष बाद, इन बाबू डालचन्दजी सिंघीकी पुण्यस्मृति ही, मेरे अपने शेष जीवनकी समग्र साहित्योपासनाका मूलाधार निमित्त बनेगी और इनके सुपुत्र बाबू बहादुर सिंहजी ही मेरी वाङ्मयतपस्याके अनन्य साधक-सहायक बनेंगे। सिंघीजीसे जब इस बार पहले पहल मिलना हुआ, तो उन्होंने सबसे पहले उपर्युक्त प्रसंगका स्मरण दिलाया। यों उस समय थोडीसी औपचारिक बातें हुई और फिर स्नान-भोजनादिसे निवृत्त हो कर, कुछ आरामके बाद, दोपहरके कोई ३-३॥ बजे हम दोनों उद्दिष्ट कार्यके विषयमें विचार-विनिमय करने बैठे। बडे अच्छे ढंगसे और बहुत विनयके साथ, उन्होंने अपने स्वर्गवासी साधुचरित पिताकी

पुण्यस्मृतिके उपलक्ष्यमें, ज्ञान-प्रसारका अथवा साहित्य-प्रकाशनका जो कोईएक सुन्दर और स्थिर कार्य करनेका मनोरथ वे वर्षोंसे कर रहे थे उसके विषयमें दिल खोल कर वातें कीं। इतः पूर्व अप्रत्यक्षरूपमें, इस विषयमें बन्धुवर पं० श्रीसुखलालजीके माध्यमसे, उनकी इस इच्छाका बहुत कुछ ज्ञान मुझे था ही तथा उनको भी मेरे कार्य और जीवनका कितनाक परिचय मिल ही चुका था, इसलिये इस विषयको समझने-समझानेमें हम दोनोंको कोई विशेष समय न लगा। वार्तालापका सारांश यह था कि– मैं उनके नजदिक कहीं आ कर बैठूं और इस कार्यके संचालनका भार अपने ऊपर लूं; और उसके निमित्त जितना भी जरूरत हो उतना आर्थिक भार उठानेकी उन्होंने अपनी उत्सुकता प्रकट की। इस विषयमें जो बहुतसी चर्चा पण्डितजीके साथ पहले हो चुकी थी उसका भी सारा बयान उन्होंने सुनाया। उनके साथ होनेवाले इस प्राथमिक वार्तालापमें ही उनके और मेरे वीचमें एक प्रकारका मुक्त और अनौपचारिक– आत्मीय स्वजनके जैसा–सौहार्द भाव स्थापित हो गया।

कोई ४ घंटे तक उस दिन हमारा वह पहला वार्तालाप होता रहा। 'जैन साहित्य संशोधक' और 'पुरातत्त्व' आदि पत्रोंमें मेरे और पण्डितजीके जो संशोधनात्मक लेख आदि प्रकाशित हुए थे, उनका उनको परिचय था और जैन इतिहासकी बहुतसी गुत्थियोंका भी उनको अच्छा ज्ञान था। वीचवीचमें इन सब वातोंकी भी चर्चा होती रही। इससे पहले ऐसे किसी जैन गृहस्थको मैंने नहीं देखा था जो उनके जैसी मर्मकी और रहस्यकी बातोंकी गहरी जानकारी रखता हो।

उनके साथ ३-४ घंटोंकी उस पहली ही मुलाकातमें मुझे मालूम हो गया कि– सिंघीजी बडे संस्कारप्रिय और कलाविज्ञ पुरुष हैं। यद्यपि युनिवर्सिटीका अभ्यासक्रम उन्होंने कभी नहीं पढा था पर उनका अनेक विषयोंका ज्ञान बडे बडे पदवीधारियोंसे भी बहुत कुछ बढ-चढ कर था। भारतवर्षकी स्थापत्यकला और चित्रकलाके वे बडे मर्मज्ञ थे। निष्क-विद्या (प्राचीन मुद्राशास्त्र) के तो पूरे निष्णात थे। प्रसंगवश इस विषयका जब वार्तालाप चला तो उन्होंने अपने संग्रह किये हुए चित्र और सिक्कोंका वह खजाना भी थोडासा खोल कर बताया जो सारे भारतवर्षमें प्रथम कोटिके संग्रहोंमेंसे एक समझा जा सकता है। इस विषयमें उनकी जानकारी और जिज्ञासा इतनी उत्कट थी कि उसे प्रदर्शित करते वे थकते ही नहीं। उस दिन सायंकालका भोजन आदि करके फिर हम वातें करने वैठे। उसमें वे इतने तल्लीन बने रहे कि वातें करते और चीजें दिखाते कोई रातके तीन वज गये। उन सब चीजोंको देख कर मैं तो आश्चर्यमुग्धसा हो रहा। मैंने कहा–'वावूजी! आपके पास जो यह अमूल्य और अपूर्व संग्रह है उसकी कम-से-कम कोई छोटी-वडी सूचि तो तैयार कर आप छपवा दीजिये जिससे इस विषयके जिज्ञासुओं और अभ्यासकोंको इतना तो पता लगे कि अमुक चीज अमुक संग्रहमें है। आपके पास कई चीजें ऐसी हैं जो शायद दुनियामें कहीं नहीं हों।' इसके उत्तरमें वावूजीने हंस कर कहा–'इसी लिये तो हमने आपको बुलाया है। संग्रह करनेका काम हमने किया है, इसे प्रकाशमें लानेका काम अव आप कीजिये।' उनके सच्चे दिलसे निकले हुए इन शब्दोंको सुन कर मैं अवाक् रहा। वे शब्द आज

भी मेरे कानोंमें उसी तरह गुनगुना रहे हैं। उसके बाद भी कई दफह उन्होंने अपना वह मनोभाव उसी तरह प्रकट किया था।

मैं तीन बजे बाद जा कर अपने बिछाने पर सो गया, पर मुझे ठीक तरह नींद नहीं आई। मैं उनके विचारों और भावोंका अपने मनमें पृथक्करण करता रहा। क्यों कि दूसरे दिन मुझे कुछ निश्चित विचार करना था और तदनुकूल सिंघीजीको उत्तर देना था।

मेरा मनोमन्थन और कार्य निर्णय

इसके पहले, जैसा कि मैंने ऊपर सूचित किया है, मेरा मन साहित्यिक कार्यक्षेत्रसे हठ कर किसी अन्य कार्यक्षेत्रकी ओर खींचता जा रहा था। देशकी राजकीय परिस्थितिके अनावश्यक फंदेमें पड जानेसे अहमदाबादके पुरातत्त्वमन्दिरकी स्थिति अनिश्चित हो गई थी। जिस उत्साह, जिस ध्येय और जिस कार्यको लक्ष्य कर, मैंने उसके आचार्य पदकी सेवा स्वीकृत की थी, उसमें अब बहुत परिवर्तन हो गया था। वहां बैठ कर इच्छित कार्य करनेकी कोई गुंजाइश नहीं थी। अपने अभीष्ट कार्यका कोई श्रद्धास्पद सम्यक् परीक्षक या प्रोत्साहक जहां न हो, वहां मेरे जैसे स्वाभिमानी और स्वयंनिर्मापकके लिये अन्य कोई वस्तु आकर्षक नहीं बन सकती। जैन समाजके एक बहुत बडे महन्त और उद्दंड आचार्यदेव बननेकी विशिष्टतर शक्तिका अपनेमें काफी भान और उपादान रखते हुए भी, जिस साहित्योपासनाकी आकांक्षाने मेरा वेषपरिवर्तन और जीवनपरिवर्तन करवाया और जिसीकी एकमात्र साधनाकी अभिलाषाने अपने ऐकान्तिक जीवनका समूचा प्रवाह बदलवाया, उसीकी उपेक्षा या अनुपयोगिताका भाव जहां मुझे दिखाई देता मालूम दे, वह स्थान किसी भी तरह मुझे अभीष्ट नहीं लग सकता। उस समय तक यद्यपि मैंने उस स्थानसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर लिया था पर उसके बारेमें मनमें रस नहीं रहा था।

इधर यह भी बात कभी कभी मनमें आ जाती थी कि—जिस विशाल साहित्यिक सामग्रीको प्रकाशमें लानेकी दृष्टिसे मैंने जीवनके पिछले २० वर्ष सतत परिश्रम किया और जिसको व्यवस्थित कर संपादित करनेके लिये योग्य अवसरके उपस्थित होनेकी आशा बान्धे बैठा हुआ था, उसकी उपेक्षा कर यदि इस प्रकार कार्यांतरके क्षेत्रमें प्रवेश किया गया तो फिर वह सब सामग्री और वह सब परिश्रम व्यर्थ ही रह जायगा। ऐसे साहित्यके संपादन और प्रकाशनके कार्यमें बहुत कुछ द्रव्यकी अपेक्षा रहती है, जिसको प्राप्त करनेके लिये धनिकोंको प्रसन्न करना चाहिये। धनिकोंको प्रसन्न करनेके निमित्त उनकी इच्छाओंका अनुसरण और उनके आदेशोंका अभिवादन करना चाहिये। मुझमें इस कलाका सर्वथा अभाव होनेसे, स्वयं किसी धनिकके पाससे यथेष्ट आर्थिक सहायता प्राप्त करनेके कार्यमें मै अपने आपको सर्वथा अयोग्य समझता रहा हूं। ऐसी स्थितिमें सिंघीजी जैसे साहित्यानुरागी और समर्थ धनिक, जब स्वयं चला कर मुझसे अनुरोध करते हैं और अपने चिरोपासित जीवनकार्यको फलान्वित करनेका आदरपूर्ण आग्रह करते है, तब फिर मुझे क्यों किसी अन्य नये कार्यक्षेत्रकी ओर मुडना चाहिये?।

पर इसके साथ ही मनमें यह भी विचार उठा कि – किसी सार्वजनिक संस्थाके तंत्रके साथ सम्बद्ध हो कर कार्य करना और वस्तु है और किसी धनिक या बडी गिनी जानेवाली व्यक्तिविशेषके साथ सम्बद्ध रह कर कार्य करना और ही वस्तु है। संस्थाके तंत्रमें तो एकाधिक व्यक्तियोंका सम्बन्ध और सहकार रहता है और उसमें समान-भावका प्राधान्य रहता है, इसलिये कहीं कार्यमें मतभेद होनेके अवसर पर भी, किसी व्यक्तिविशेषका हस्तक्षेप उतना कार्यविक्षेपक नहीं हो सकता जितना केवल किसी अकेले व्यक्तिके विचार पर किसी कार्यके होने-न-होनेकी परिस्थितिमें हो सकता है। सिंघीजी यद्यपि आज स्वयं कार्य करनेका अनुरोध कर रहे हैं, पर यदि किसी कारणवश उनके साथ मतभेद उपस्थित हो गया, तो फिर उस कार्यकी क्या स्थिति हो सकती है और अपने व्यक्तित्वका क्या स्थान हो सकता है। जैन समाजके अच्छे अच्छे धनिकोंका मुझे प्रत्यक्ष या परोक्षरूपमें इस विषयका बहुत कुछ अनुभव हो चुका था। इसके पूर्व ही मैंने, पूनामें एक बडी जैन संस्थाका निर्माण किया था जिसके बनानेमें बहुत परिश्रम भी उठाया था और धन भी जुटाया था। परन्तु अन्धश्रद्धावाले अज्ञान वणिकोंके साथ अपने विचारस्वातंत्र्यका और ध्येयका मेल मिलता न देख कर, एक अनाथ बालककी तरह उस संस्थाको निराधार छोड कर, मुझे उससे उपरत हो जाना पडा था। ऐसी ही कोई अनिच्छनीय परिस्थिति यदि सिंघीजीकी इस संकल्पित संस्थाके बारेमें उपस्थित हो जाय तो, अपने मनकी उस समय क्या प्रतिक्रिया होगी? उसके भी कुछ उडते विचार आंखोंके सामनेसे गुजर गये। इस तरह, वह अवशेष रात यों ही तरह तरहके विचारोंकी तन्द्रामें व्यतीत हुई।

सिंघीजीके कुटुम्बका धार्मिक भाव

मैंने देखा कि सिंघीजीका कौटुम्बिक वातावरण पुराने खयालोंकी दृष्टिसे बहुत कुछ धर्मनिष्ठ है। उनकी माताजी मानों साक्षात् धर्मकी मूर्ति ही है। तप, जप, नियम, स्वाध्याय आदि उनके घरमें अच्छे ढंगसे चल रहे हैं। यद्यपि मूढ रूढिप्रियताका कोई विशेष चिन्ह नहीं दिखाई दिया, तब भी पुराने रीति-रिवाजोंका ठीक ठीक आदर और व्यवहार दृष्टिगोचर हुआ। बडी तिथि – अष्टमी चतुर्दशी जैसे दिन घरमें हरी तरकारी नहीं बनती है। आलू वगैरह जैसे कंदमूलमें गिने जानेवाले शाक-पानका व्यवहार कभी नहीं होता है। घरमें छोटेसे ले कर बडे तक कोई भी इन चीजोंका उपयोग नहीं करते। पांवरोटी और मक्खन तो कभी मकानमें घुसने भी नहीं पाते हैं। परिवारमें चहा – कॉफीका रिवाज भी प्रायः नहीं है। अलबत्त, महेमानोंके लिये उसका बन्दोबस्त जरूर रहता है। इस तरह मैंने देखा कि सिंघीजीके घरमें रूढिकी दृष्टिसे धार्मिक गिने जानेवाले आचार-विचारका अच्छी तादादमें परिपालन होता रहता है।

यद्यपि मैंने सुन रखा था कि सिंघीजी स्वयं बहुत कुछ उदार विचारके और सुधारप्रिय व्यक्ति है। पर उनके घरमें उसके चिन्ह मुझे बहुत कम दिखाई दिये। इससे मेरे मनमें एक यह भी विचार उपस्थित हुआ कि – सिंघीजी अपने पिताकी स्मृतिके उपलक्ष्यमें जो कार्य करना चाहते हैं वह एक प्रकारका सांप्रदायिक कार्य है – जैन संप्रदायका ही उस कार्यके साथ मुख्य संबंध है। सिंघीजी स्वयं जैन समाजके एक

प्रमुख व्यक्ति गिने जाते हैं और उनके घरमें भी बहुत कुछ परंपरागत श्रद्धाका वातावरण बना हुआ है। ऐसी स्थितिमें मेरा सम्बन्ध इनके उद्दिष्ट कार्यमें कहां तक सुघटित हो सकेगा। मेरा आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान इत्यादि बहुत कुछ असांप्रदायिक है। संप्रदायरूढ मेरा कोई व्यवहार नहीं है। न किसी संप्रदाय विशेष पर मेरी अनन्य श्रद्धा है। जैन धर्मके सिद्धान्तोंके प्रति मेरी जो कोई भक्ति और श्रद्धा है, तो वह अपने स्वतंत्र विचार और मननके परिणामसे जैसी बन सकती है, वैसी है। संप्रदायगत परंपराकी वह अनुगामिनी नहीं है। मेरी आंतरिक मनोवृत्ति समाजवादी विचारों और आचारोंकी ओर झुकनेवाली है। सिंघीजीको मेरी ऐसी विचारधारा और जीवनचर्याका ठीक पता है या नहीं–इसकी मुझे कोई कल्पना नहीं थी। सो मैंने उनसे अपने इस स्वगत विचारका भी यथायोग्य मनोभाव प्रदर्शित कर देना चाहा और उनके विचारोंका आभास ले लेना चाहा।

सिंघीजीके व्यक्तित्वका मेरे मन पर प्रभाव

दूसरे दिन भोजन किये बाद हम दोनों फिर उसी तरह वार्तालाप करने बैठे। प्रसंगवश मैंने उनसे उपर्युक्त सभी विचार प्रदर्शित कर दिये जिनको उन्होंने बडी गंभीरता एवं एकतानताके साथ सुना। उत्तरमें उन्होंने अपने भी विचार बहुत कुछ विस्तारके साथ कह सुनाए जिससे मुझे विश्वास हुआ कि सिंघीजी धार्मिक अन्धश्रद्धाके बिल्कुल अनुगामी नहीं है। समाज और देशकी प्रगतिके वे बडे इच्छुक हैं। लोगोंकी धार्मिक और सामाजिक मूढताका उन्हें बडा दुःख है और इसीलिये अन्यान्य रूढिप्रिय धनिकोंकी तरह उन्होंने अपने जीवनमें गतानुगतिकताके पोषणके लिये कभी किसीको द्रव्य आदिकी कोई सहायता नहीं की। समाजकी गति और स्थितिसे वे अच्छी तरह परिचित हैं। व्यक्तिविशेषके आचार-विचारके प्रति उनकी सम दृष्टि है। वे अपना निजका जो आचार-विचार रखते हैं वह उनकी निजकी परिस्थितिके कारण है। उनमें उनका अभिनिवेश नहीं है और नाही दूसरेके भिन्न प्रकारके आचार-विचारके प्रति उनका अनुदारभाव है। उनमें गहरी विचारक शक्ति है और हर प्रकारके विचारोंका पृथक्करण वे स्वयं अच्छी तरहसे कर सकते हैं। किसी दूसरेके विचारका अन्ध अनुकरण या अनुसरण करना उनकी प्रकृतिमें बिल्कुल नहीं है। न वे किसी साधु या आचार्यके बहकानेसे बहकनेवाले हैं और न किसी धर्मात्मा मानने-मनानेवाले भाईयोंसे प्रभावित होनेवाले हैं। उनको अपने कार्यका और लक्ष्यका स्पष्ट दिग्दर्शन है और उसे कैसे सिद्ध किया जाय इसके उपाय और योजनाके समझनेका यथेष्ट ज्ञान है।

इस प्रकार दो दिन तक मैंने उनके साथ दिन और रात बैठ कर खूब बातें कीं। भिन्न भिन्न प्रकारके अपने विचार प्रदर्शित किये और उनके विचार सुने। मनुष्यके सामान्य वार्तालापसे ही उसके प्रकृति आदिका योग्य परिज्ञान प्राप्त कर लेनेकी मैं अपनेमें यथेष्ट परख शक्ति रखता हूं–ऐसा मुझमें कुछ विश्वास है। इस विश्वासके अनुसार मैंने सिंघीजीको एक आदर्श विचारवान् व्यक्ति और विश्वस्त भावनाशील सज्जनके रूपमें अपने मनमें स्थान दिया। उनके निरभिमान व्यवहार, तीव्र बुद्धि-प्रभाव, गहरी समझशक्ति, इतिहास-साहित्य-स्थापत्य-चित्रकला आदि विषयोंकी ऊंडी परख, सांप्रदायिक मूढ विचार और रूढिवादसे निरपेक्षभाव, व्यक्ति विशेषके

विभिन्न आचार-विचारोंके प्रति उदार दृष्टि, अपने विचारोंका स्पष्ट दर्शन और उन पर दृढ रहनेकी मनोवृत्ति, बहुत बडे धनिक होने पर भी सब प्रकारके दुर्व्यसनोंसे संपूर्ण विमुखता, विद्या और कलाके प्रति उत्कृष्ट अनुराग, उत्तमकोटिकी संस्कारिता, आदर्श धार्मिक सहिष्णुता, समुचित सुधारप्रियता, मनःपूत कार्यमें उन्मुक्त उदारता, स्वीकृत कार्यको सर्वांगपूर्ण बनानेकी तत्परता — इत्यादि प्रकारके अनेक उच्च गुणोंका उनमें समन्वय देख कर, मेरे दिल पर उनके व्यक्तित्वका बहुत ही गहरा प्रभाव पडा।

मेरा कार्य स्वीकार और स्थान निर्णय

यों तो मेरा स्वभाव बहुत ही संकोचशील तथा जनसंसर्गसे दूर रहनेकी आदतवाला है। उसमें भी धनिकों तथा बडे गिनेजानेवालोंसे संपर्क करनेकी अभिलाषा तो मुझे प्रायः ही नहीं होती। अपने आप चलकर किसीके पास जानेकी या किसीसे संबन्ध बांधनेकी कला या वृत्तिका मुझमें प्रायः अभाव ही है। जिनके साथ स्वभावका निर्व्याज सुमेल नहीं हो सकता अथवा जिनके साथ समान-शील-व्यसनवाला सख्य नहीं हो सकता उनके साथ होनेवाला मिलनप्रसंग क्वचित् ही मुझे रुचिकर होता है। बाबू श्री बहादुर सिंहजीसे मिलनेके पूर्व, साधारण धनिकोंके या बडे लोगोंके प्रति जो मेरा स्वभावगत अभिप्राय बना हुआ है उसी अभिप्रायके साथ, मैं बडे संकोच भावसे, उनसे मिलने गया था। परन्तु उनसे प्रत्यक्ष मिले बाद और दो दिन उक्त रीतिसे उनके साथ खूब दिल खोल कर बातें-चीतें करने बाद, मेरा मन उनके प्रति उन्मुक्तसा हो गया और उनके उक्त गुणान्वित व्यक्तित्वसे आकृष्ट हो कर मैंने उनके अभिलषित पितृस्मारकके पवित्र कार्यमें अपनी सेवा समर्पित करनेकी सहज इच्छा व्यक्त की।

इस कार्यका प्रारंभ कहां और किस तरहसे किया जाय इसका जब विचार होने लगा तो सिंघीजीकी कुछ इच्छा कलकत्तेमें उसके शुरू करनेकी थी कि जहांपर वे स्वयं भी कुछ सक्रिय भाग ले सकें। परंतु मेरी इच्छा स्वाभाविक ही शान्तिनिकेतनमें रह कर कार्यका प्रारंभ करनेकी रही जिसको उन्होंने मुक्तभावसे स्वीकार लिया। काम कैसे और क्या क्या किया जाय उसकी संक्षिप्त रूपरेखा भी बना ली गई और खर्चका अन्दाजा भी कर लिया गया। प्रारंभमें ३ वर्षके लिये, शान्तिनिकेतनमें "सिंघी जैन चेयर"की स्थापनाका कार्यक्रम निर्णीत किया गया और उसके लिये वार्षिक ६–७ हजार रुपयेका बजट बनाया गया। आनेवाले जुलाईके प्रारंभसे कार्यका प्रारंभ करना और मेरा शान्तिनिकेतन जा कर रहना प्रायः निश्चितसा हुआ।

सिंघीजीमें कार्यविषयक निर्णायक-शक्ति बडी तीव्र थी। जो बात उनकी समझमें आ गई और उनको जंच गई, उसका तत्काल ही वे निर्णय कर डालते और अपना मत स्थिर कर लेते। दिनो तक किसी बातको सोचते रहना और उसके विषयमें करना-न-करनाके फेरमें फंसे रहनेवाली दीर्घसूत्री मनोवृत्ति उनकी बिल्कुल नहीं थी। स्पष्टवादिता भी उनमें ऊंची कोटिकी थी। किसी भी विषयमें वे अपना मतामत बडी स्पष्टताके साथ व्यक्त कर देते थे। बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि कोई भी व्यक्ति उन्हें भ्रममें नहीं डाल सकता था। जो कोई व्यक्ति अपनी चतुरता बतलानेके

लिये उनके आगे सन्दिग्ध भावसे या द्विअर्थी शब्दोंसे बातचीत करना चाहता, तो उसका वास्तविक मनोभाव क्या है, इसको वे झट पकड लेते और उसको उसका स्पष्ट उत्तर दे देते। तर्क और दलीलमें वे बड़े बडे वकील और बेरिस्टरोंको मात कर देते थे। उनके साथ स्नेह-सम्बन्ध स्थापित होनेमें न केवल उनकी उदारता ही मुख्य कारण बनी थी, परंतु उससे कहीं अधिक उनकी सुरुचि, संस्कारप्रियता और बुद्धिकी तेजस्विता उसमें कारणभूत बनी थी।

कलकत्तेसे मेरा प्रत्यागमन और जेलनिवास

इस तरह शान्तिनिकेतनमें 'सिंघी जैन ज्ञानपीठ' की स्थापनाका कार्यक्रम बना कर मैं वहांसे फिर पटना गया। वहांका कार्य समाप्त होने पर फिर अहमदाबाद अपने निवास स्थान पर पहुंचा।

उसी बीचमें, महात्माजीने देशके सामने अपना वह ऐतिहासिक नमक सत्याग्रह का कार्यक्रम उपस्थित किया और मार्च महिनेकी ता. १२ को, अपने चिर स्थापित सत्याग्रह आश्रमका त्याग कर, उन्होंने "दांडी कूच" की। इससे सारे गुजरातमें बडी हलचल मच गई। सैंकडों ही सत्याग्रही नमक सत्याग्रहमें भाग लेनेके लिये गुजरातके गांवोंगांवसे तैयार होने लगे। सरकार भी उन सत्याग्रहियोंको शिक्षा देनेके लिये पूरी तरह कटिबद्ध हो गई। 'धारासणा'का नमकका सरकारी अड्डा सत्याग्रहियोंकी मुख्य आक्रमणभूमि बनी। गुजरातके प्रायः सब ही उत्साही और मुख्य मुख्य सेवक इस सत्याग्रहमें सम्मीलित हुए। महात्माजीके एक छोटेसे अनुगामीके रूपमें, मैंने भी अहमदाबादकी केन्द्रीय कार्यसमितिके आदेशानुसार, चुने हुए ७५ स्वयंसेवकोंके एक बडे दलके साथ, धारासणाके सत्याग्रही दुर्गको सर करनेके लिये विजयी प्रस्थान किया। अहमदाबादकी जनताने बडे भारी समारोहके साथ हम सत्याग्रहियोंका प्रस्थान मंगल किया। कोई ५० हजारसे भी अधिक जनता हमें अहमदाबादके स्टेशनपर पहुंचाने आई। अहमदाबादसे रातको ९ बजे गुजरात मेलसे हम रवाना हुए। गाडीके चलने पर, १५-२० ही मिनीट बाद, एक छोटेसे स्टेशन पर मेलट्रेनको खडा किया गया और एक पुलीसकी बडी भारी पार्टी, जो हमारे डिब्बेके पीछे एक स्पेशल डिब्बा जुडवाकर हमारे साथ आ रही थी, उतर आई और उसने हम सबको गिरफ्तार कर वहीं जंगलमें गाडीसे नीचे उतार दिया। फिर उसी छोटेसे स्टेशन पर, सारी रात बडे चोकी पहरेके नीचे हमको बिठाया गया। दूसरे दिन १ बजे वहीं पासहीमें, एक मामूलीसे किसीके बंगलेमें, कोर्ट बैठी, और मेजिस्ट्रेटने—जो हमारे किसी समय शिष्य भी रह चुके थे—हमारे स्टेटमेंट ले कर, आधेघंटेमें हमको ६ महिनेकी कडी सजा सुना दी। मेरा कुछ व्यक्तित्व खयाल कर मेजीस्ट्रेटने मुझे 'ए' क्लास दे दिया। उस रातको, फिर उसी गुजरातमेलसे, उसी स्टेशन पर गाडीमें बिठा कर, पुलीसके पक्के बंदोबस्तके साथ हमें बंबईकी 'वरली चॉल'की कामचलाउ जेलमें रखनेके लिये रवाना किया।

कुछ दिन बाद मेरी बदली वहांसे नासिक-सेंट्रल जेलमें की गई। इस जगह मुझको 'ए क्लास' के वॉर्डमें रखा गया जहां पर, स्वर्गस्थ श्री जमनालालजी बजाज, तथा कर्मवीर श्री नरीमान, डॉ. चोकशी, श्री रणछोडभाई सेठ, श्री मुकुंद मालवीय आदि हम ७-८ व्यक्ति एक साथ रहा करते थे। जेलमें मैंने अपना जर्मन भाषाका

अभ्यास चालू रखा और हिन्दीमें एक जर्मन प्राइमर लिखनेका उपक्रम किया। वीर नरीमान तथा डॉ. चोकशीने मुझसे हिन्दी भाषा और उसका साहित्य पढना शुरू किया। सेठ जमनालालजी बजाज अपना गुजराती भाषाका विशेष ज्ञान बढानेकी इच्छासे रोज मेरे पास दो घंटे नियमित गुजराती साहित्य पढा करते थे। सुबह स्यामकी प्रार्थना भी हम दोनों नियमित साथ बैठ कर करते और मीरा तथा कबीरके कुछ भजन सुनानेका मुझसे वे सदा अनुरोध करते। पीछेसे कवीन्द्र रवीन्द्र नाथकी गीतांजलीके गीतों पर भी उन्हें बहुत अनुराग हो गया और फिर उनमेंसे भी दो चार गीत रोज सुनानेका वे आग्रह करते। इस तरह नासिक जेलका निवास मेरे लिये तो एक प्रकारसे विद्या-मन्दिरका ही निवाससा बन गया।

सिंघीजीका पत्र और मनोभाव

सिंघीजीको इस बातका तब तक कोई पता नहीं चला। ना ही मैंने अपने बारेमें उन्हें कुछ सूचना दी। यद्यपि मैंने उनके साथ परामर्श कर, शान्तिनिकेतनमें "सिंघी जैन ज्ञानपीठ"की स्थापनाका कार्यक्रम मनमें बहुत कुछ स्थिर कर लिया था, पर मनमें रह रह कर किसी सामाजिक या सार्वजनिक कार्यमें प्रवृत्त होनेकी धुन भी अभी तक उठा ही करती थी। इतनेमें उक्त सत्याग्रहका अनिवार्य प्रसंग आ उपस्थित हुआ। महात्माजीके चलाए हुए इस राष्ट्रीय आन्दोलनसे मैं किसी तरह अलिप्त रह नहीं सकता था। सिंघीजी बडे चतुर और देशकी परिस्थितिके सतर्क निरीक्षक थे। गुजरातमें जब यह आन्दोलन खूब जोरशोरसे शुरू हुआ, तो उनके मनमें सहज शंका हुई, कि कहीं मैं इस आन्दोलनमें संमीलित न हो जाऊं और उसके कारण जो उन्होंने अपने चिराभिलषित कार्यके प्रारंभ करनेका उपक्रम निश्चित किया है, वह गडबड न हो जाय। इस विषयमें उन्होंने एक पत्र जो उनदिनों (ता. १५-५-३०) पण्डितजीको लिखा उसमें उन्होंने अपने ये विचार इस तरह स्पष्ट लिखे थे–

"श्रीजिनविजयजी पटनामें पावापुरीजीके केसमें गवाही दे कर अहमदाबाद चले गये हैं। ...अब वे कहां है मालूम नहीं। हमको सबसे बडा डर यह है कि वे कहीं महात्माजीके छेडे हुए राष्ट्रीय युद्धमें न फंस जाय और अपना ठहराया हुआ प्रोग्राम सब उलट पलट न हो जाय। राष्ट्रीय स्वाधीनताकी लडाई भी बडे महत्त्वकी है। मगर वह राष्ट्रीय होनेके कारण भारतकी सर्व जनता उसमें भाग ले सकती है और अपना काम धार्मिक और सामाजिक होनेके कारण फक्त जैनी ही इसको कर सकते हैं। इसलिये जैनियोंके वास्ते यह भी कम महत्त्वका नहीं है। इस कारणसे जैनियोंको खास करके इस तरफ भी दृष्टि रखना चाहिए। साम्प्रदायिकताका भाव इसमें जरूर आ जाता है और राष्ट्रकी दृष्टिसे इसमें संकुचितता भी कुछ आ जाती होगी, मगर सांप्रदायिक उन्नतिके वगैर राष्ट्रीय उन्नति भी अपूर्ण रह जाती है। और शायद स्थायी भी नहीं होती है। जड कमजोर रह जाती है। इसलिये जैनियोंको जिस जगह अपने धर्मके तत्त्वोंका प्रचार और सामाजिक उन्नतिके लिये कुछ कार्य करनेका मौका हो तो उसकी उपेक्षा करके दूसरे कार्यमें हाथ देना जरूरी हो यह हमारी समझमें नहीं आता है। इस विषयमें उनके क्या खयालात है, कभी बात होनेका अवसर नहीं आया। अभी आपको पत्र लिखना आरंभ करते ही यह बात ध्यानमें आ गई सो यों ही लिख डाली है।"

इसी पत्रमें, उन्होंने पण्डितजीको, हम दोनोंने बैठ कर जो शान्तिनिकेतनमें 'जैन चेयर'की स्थापनाका कार्य निश्चित किया था उसकी रूपरेखाका भी संक्षिप्त सूचन करते हुए लिखा था कि—

"शान्तिनिकेतनकी 'जैन चेयर'के लिये जो विचार हुआ है उसमें अभी ये तीन काम होंगे—

(१) जैन चेयर—अभी तीन वर्षके लिये—पूज्यश्री पिताजीके स्मारकमें।

(२) जैन लायब्रेरीके लिये सालाना एक हजार रूपया। याने तीन सालमें तीन हजार रूपयेके खर्चेसे जैन पुस्तकोंका संग्रह अलग आलमारियोंमें हमारी स्वर्गीया छोटी बहन केसरकुमारीके स्मारकमें।

(३) जो अध्यापक वहां रहेंगे उनकी लिखी हुई या संपादित पुस्तकें सालाना ढाई हजारके खर्चसे प्रकाशित करना—पूज्यश्री पिताजीके स्मारकमें।

स्कॉलर्शिपके लिये बातचीत चली थी परन्तु कुछ निश्चय नहीं हुआ—पीछे जो कुछ निश्चय होगा सो किया जायगा।"

इस पत्रकी लिखावटसे सिंघीजीके राष्ट्रीय और सामाजिक कार्य करनेके बारेमें कैसे विचार थे उनका भी कुछ दिग्दर्शन हो जाता है।

पण्डितजीको जब यह पत्र बंबईमें मिला, उस समय मैं अहमदाबादमें उक्त सत्याग्रही संग्राममें सम्मीलित होनेका निश्चय कर चुका था और उसके कुछ ही दिन बाद मैं जेलमें पहुंच गया था। इस प्रकार उस समय तो सिंघीजीकी उक्त पत्रमें लिखी हुई आशंका सच ही हो चुकी थी और आगामी जुलाईसे शान्तिनिकेतनमें 'सिंघी जैन चेयर'-की स्थापनाका प्रोग्राम सचमुच ही 'उलट-पुलट' हो गया था।

नासिक जेलके अनुभव

नासिक सेंट्रल जेलमें ही मेरी सबसे पहली मुलाकात मित्रवर श्रीमुंशीजीसे हुई। मैं तो वहां उक्त प्रकारसे पहले ही से गया हुआ था। श्रीमुंशीजी पीछेसे यरवडा जेलसे वहां पर लाये गये थे। हम दोनों उस एक ही बेरेकमें और पासपासके कमरेमें इकट्ठे हो गये। उस पहले ही दिन हम दोनोंके बीच "समान-शील-व्यसनेषु सख्यं" वाली उक्तिका बीजारोपण हो गया और हम एक-दूसरेके बहुत निकटसे मित्र हो गये। मुंशीजी उन दिनों "गुजरात एन्ड इट्स् लिटरेचर" वाली अपनी प्रसिद्ध पुस्तकका मशाला इकट्ठा कर रहे थे। हम दोनों रोज घंटों साथ बैठ कर गुजरातके प्राचीन इतिहास और साहित्यके अनेक पहलुओं पर विचार-विनिमय किया करते और अपना अपूर्व आनन्द लूटा करते। सिंघीजीके समान मुंशीजीके साथ भी, मेरा वैसा ही उन्मुक्त सौहार्दभाव तत्क्षण स्थापित हो गया, जो पिछले १५ वर्षोंमें शुक्लपक्षके चन्द्रकी कलाओंकी तरह, उत्तरोत्तर विकसित ही होता रहा। मेरे विचारमें, मनुष्यके जीवनमें ऐसा सौहार्द भाव ही सबसे अधिक मूल्यवान् संपत्ति है और सबसे अधिक आनन्ददायक स्मृति है।

नासिक जेलके स्मरण बडे आल्हादक और जीवनतोषक हैं पर उनका विस्तृत वर्णन यहां शक्य नहीं। प्रस्तुतमें जितना प्रासंगिक है उसका कुछ आलेखन मैंने 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'के प्रथम ग्रन्थ – 'प्रवन्धचिन्तामणि'की अपनी प्रस्तावनामें किया है जो सन् १९३३ में प्रकाशित हुई थी। यहां पर उसीको उद्धृत करना अधिक उपयुक्त मालूम देगा। मैंने उसमें लिखा है कि –

"सचमुच ही नासिकके सेंट्रल जेलखानेमें जो चित्तकी शान्ति और समाधि अनुभूत की वह जीवनमें अपूर्व और अलभ्य वस्तु थी। वह जेलखाना, हमारे लिये तो एक परम शान्त और शुचि विद्या-विहार बन गया था। उसकी स्मृति जीवनमें सबसे बडी सम्पत्ति मालूम देती है। स्वनामधन्य (अब स्वर्गस्थ) सेठ जमनालालजी बजाज, कर्मवीर श्रीनरीमान, देशप्रेमी सेठ श्रीरणछोडभाई, साहित्यिक धुरीण श्रीकन्हैयालाल मुंशी आदि जैसे परम सज्जनोंका घनिष्ठ संबन्ध रहनेसे और सबके साथ कुछ-न-कुछ विद्या-विषयक चर्चा ही सदैव चलती रहनेसे, हमारे मनमें वे ही पुराने साहित्यिक संकल्प, वहां फिर सजीव होने लगे। सहवासी मित्रगण भी हमारी रुचि और शक्तिका परिचय प्राप्त कर, हमको उसी संकल्पित कार्यमें विशेष भावसे लगे रहनेकी सलाह देने लगे। मित्रवर श्रीमुंशीजी, जो गुजराती अस्मिताके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं और जो गुजरातके पुरातन गौरवको आबाल-गोपाल तक हृदयङ्गम करा देनेकी महती कला-विभूतिसे भूषित हैं, उनका तो दृढ आग्रह ही हुआ कि और सब तरंग छोड कर वही कार्य करने ही से हम अपना कर्तव्य पूरा कर सकते हैं†। अन्यान्य घनिष्ठ मित्रोंका भी यही उपदेश हमें वहां बैठे बैठे वारंवार मिलने लगा और जेलखानेसे मुक्त होते ही हमे वही अपने पुराने बहीखाते टटोलनेकी आज्ञा मिलने लगी।

संवत् १९८६ के विजयादशमीके दिन, मित्रवर श्रीमुंशीजीके साथ ही हमें जेलसे मुक्ति मिली। हम बंबई हो कर अहमदाबाद पहुंचे। यद्यपि जेलखानेके उक्त वातावरणने मनको इस कार्यकी तरफ बहुत कुछ उत्तेजित कर दिया था, तो भी देशकी परिस्थितिका चालू क्षोभ, रह रह कर मनको अस्थिर बनाए रखता था। आखिरमें श्रीसिंघीजीका, शान्तिनिकेतन आ कर, जैन साहित्यके अध्ययन-अध्यापनकी (वह जो पहले सोची और निश्चित की गईथी) व्यवस्था हाथमें लेनेका आग्रहपूर्ण निमंत्रण मिलनेसे, और हमारे सदैवके सहचारी परमबन्धु पण्डित प्रवर श्रीसुखलालजीकी भी तद्विषयक वैसी ही बलवती इच्छा होनेसे (सन् १९३० के डीसेंबर मासके मध्यमें) अपने साथके कई विद्यार्थी एवं सहवासी गणके साथ हम शान्तिनिकेतन आ पहुंचे। यहां पर विश्वभारतीके ज्ञानमय वातावरणने हमारे मनको एकदम उसी ज्ञानोपास-

---

† शायद भविष्यके ही किसी संकेतने मुंशीजीसे यह मुझे कहलवाया था। नहीं तो जिसकी कोई कल्पना भी न की जाय ऐसा योग उसके ८-९ वर्ष बाद कैसे उपस्थित हो गया तथा कैसे हम दोनों एक जगह मिल कर इस 'भारतीय विद्या भवन' के हाथ पांव बन गये एवं कैसे इस भवनकी गति-स्थितिके एक विधायकके स्थानमें बिठा कर, इन्होंने अपने उस जेलखानेवाले भविष्य कथनका पालन करानेके लिये मुझे अकल्पित रूपसे बाध्य बना दिया।

नामें फिर स्थिर कर दिया और हमारी जो वह चिरसंकल्पित भावना थी उसको यथेष्ट समुत्तेजित कर दिया। साथ ही में, उस संकल्पको कार्यमें परिणत होनेके लिये, जिस प्रकारकी मनःपूत साधन सामग्रीकी अपेक्षा हमारे मनमें गूढ भावसे रहा करती थी, उससे कहीं अधिक ही विशिष्ट सामग्री, सच्चरित्र, दानशील, विद्यानुरागी श्रीमान् बहादुर सिंहजी सिंघीके उत्साह, औदार्य, सौजन्य और सौहार्द द्वारा प्राप्त होती देख-कर, हमने बडे आनन्दसे इस "सिंघीजैन ज्ञानपीठ" के संचालनका भार उठाना स्वीकार किया।

यद्यपि प्रारंभमें हमने इस स्थानका, जैन वाङ्मयके अध्ययन-अध्यापन करानेकी दृष्टिसे ही स्वीकार किया था; लेकिन हमारे मनस्तलमें तो वही पुराना संकल्प रहा हुआ होनेसे, यहांपर स्थिर होते ही वह संकल्प फिर सहसा मूर्तिमान् हो कर हमारे हृदयांगणमें नाचने लगा। और वही पुरानी ऐतिहासिक सामग्री जिसको हमने आज तक मुंजीकी पुंजीकी तरह बडे यत्नसे संचित रख कर, बन्दी बना रखी है, हमारे मानस-चक्षुके आगे खडी हो कर, कटाक्षपूर्ण टकटकी लगा कर ताकने लगी। हमारा व्यसनी मन फिर इस कामके लिये पूर्ववत् ही लालायित और उत्सुक हो उठा।

प्रसङ्ग पा कर हमने अपने ये सब विचार ज्ञानपीठके संस्थापक श्रीमान् बहादुरसिंह बाबूसे कह सुनाए और "ज्ञानपीठ" के साथ एक "ग्रन्थमाला" भी स्थापित कर जैन साहित्यके रत्नतुल्य विशिष्ट ग्रन्थोंको, आदर्श रूपसे तैयार करवा कर प्रसिद्धिमें लानेका प्रयत्न होना चाहिये - इस बारेमें सहज भावसे प्रेरणा की गई। इन बातोंको सुनते ही सिंघीजीने उसी क्षण, बडे औदार्यके साथ, अपनी सम्पूर्ण सम्मति हमें प्रदान की और ऐसी 'ग्रन्थमाला'के प्रारंभ करनेका और उसके लिये यथोचित द्रव्यव्यय कर-नेका यथेष्ट उत्साह प्रकट किया। इसके परिणाममें, सिंघीजीके स्वर्गीय पिता साधु-चरित श्रीमान् डालचन्दजी सिघीकी पुण्यस्मृति निमित्त 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' का प्रादुर्भाव हुआ।" (देखो, प्रबन्धचिन्तामणि, प्रस्तावना, पृ. ३-४)

शान्तिनिकेतनमें जैन छात्रावास

शान्तिनिकेतनमें मेरे पहुंचने पर कलकत्ते आदिसे कुछ जैन विद्यार्थियोंके पत्र आने लगे जिनमें शान्तिनिकेतनमें रह कर विद्याभ्यास करनेकी सुविधाके निमित्त कोई छोटासा जैन छात्रावास स्थापित करने-करानेकी मुझसे अभ्यर्थना की जाने लगी। सिंघीजीके नजदिकके कुछ कुटुंबी जन भी चाहने लगे कि उनके बच्चे शान्तिनिकेतनमें और मेरे सहवासमें रह कर विद्याभ्यास कर सकें तो बहुत उत्तम हो। प्रसङ्ग पा कर मैंने सिंघीजीसे इस विषयमें परामर्श किया तो उन्होंने वडी उत्सुकताके साथ, यदि शान्तिनिकेतनके संचालक गण जगहकी सुविधा कर दें, तो अगामी जुलाई (सन् १९३१)से शान्तिनिकेतनमें एक जैन छात्रावास खोल देनेकी स्वीकृति दे दी। शान्ति-निकेतनमें उन दिनो जगह की बडी तंगी थी। तो भी आश्रमके संचालकोंने तथा स्वयं गुरुदेवने इस विषयमे मुझे अपना बडा उत्साह दिखलाया और स्थान वगैरेह देनेमें बहुत उदारता बतलाई। बागान बाडीकी दो पूरी कतारें जिनमें २०-२५ विद्यार्थी रह सकते थे मेरे स्वाधीन कर दी। इस तरह जगह वगैरहका मैंने प्रबन्ध कर सिंघी-

जीसे लिखा, तो वे स्वयं एक दिन वहां आये और जगह वगैरह सब देख कर उसके बारेमें गुरुदेवसे उसकी ऑफिसियल स्वीकृति आदि मांग लेनेका निर्णय किया और छात्रालयके सामान आदिकी तैयारीकी बात वे सोचने लगे।

सिंघी जैन ग्रन्थमालाका प्रारंभ

उस ग्रीष्मकालके अवकाशमें मैं अहमदाबाद आया और पण्डितजी वगैरहको साथ ले कर पाटणके भण्डारोंमेंसे साहित्यिक सामग्री इकट्ठी करने तथा ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियां आदि करने-करानेके निमित्त दो-एक महिने वहां ठहरा। मेरे परमपूज्य गुरुस्थानीय प्रवर्तकजी श्रीकान्तिविजयजी महाराज तथा उनके साहित्योद्धारकार्यनिरत सुचतुर शिष्य प्रवर मुनिवर श्रीचतुरविजयजी महाराजकी मेरे प्रति अप्रतिम वत्सलता एवं ममताके कारण, मेरे अपने कार्यमें उनसे संपूर्ण सहायता मिलती रही और उसके कारण भण्डारोंका निरीक्षण करनेमें मुझे यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई। पाटणके भण्डारोंकी सुव्यवस्था और सुरक्षा आदि करनेमें जितना परिश्रम और जितना उद्यम मुनिवर्य श्रीचतुरविजयजीने किया, वैसा आज तक किसी साधुने, किसी ज्ञानभण्डारके निमित्त किया हो ऐसा मुझे ज्ञात नहीं है। वे बडे कर्तव्यनिष्ठ और साहित्य-संरक्षक साधुपुरुष थे। मैंने पहले पहल अपने ग्रन्थ संपादनका "ॐनमः सिद्धम्"का पाठ उन्हींसे पढा था। पाटणमें संघवीके पाडेमें जो ताडपत्रका मुख्य भण्डार है उसके ग्रन्थोंकी प्रशस्तियां आदि लेनेमें स्वयं इन शिष्यवत्सल मुनिवरने मुझे वहुत सहायता की। सैंकडो ही प्रशस्तियां उन्होंने अपने हाथसे लिख लिख कर मुझे दीं। उस उग्र ग्रीष्मकालके भर मध्याह्नमें वे सागरगच्छके उपाश्रयसे चल कर संघवीके पाडेमें पहुंचते और भंडारके पिटारोंमें रखे हुए सैंकडों ही पुस्तकोंके बस्तोंको अपने हाथसे उठा उठा कर इधर उधर रखते और अभीष्ट पोथीको खोज कर नीकालते। भण्डारकी पोथियोंको रखनेके लिये कुछ आलमारियां नहीं थी सो उनके बनवानेकी इच्छा श्रीचतुरविजयजी महाराज कर रहे थे। मैंने यह सब हाल सिंघीजीको लिख भेजा और सूचित किया कि यदि उनकी इच्छा हो तो इस भण्डारके रक्षणकार्यमें कुछ मदद देने योग्य है। इसके उत्तरमें उन्होंने ५००रू० के नोट भेजे जो मैंने श्रीचतुरविजयजी महाराजको, ज्ञानोद्धार कार्यमें समर्पण कर दिये।

यहींसे 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के संपादनका कार्यारंभ हुआ। मैंने बंबई जा कर निर्णयसागर प्रेसके साथ छपाई वगैरहका प्रबन्ध किया और सबसे पहला ग्रन्थ 'प्रबन्धचिन्तामणि' छपनेको दिया।

जैन छात्रालयका कार्यारंभ

जुलाईके प्रारंभमें मैं फिर शान्तिनिकेतन पहुंचा। वहां पहुंचते ही 'सिंघी जैन छात्रालय' की व्यवस्थाका काम शुरू किया और उस विषयमें सिंघीजीको विस्तृत पत्र लिखा। उत्तरमें सिंघीजीने ता. ७. ७. ३१ को पत्र लिखा—

... आपका पत्र ता. ५–६ जुलाईका अभी मिला। आप शान्तिनिकेतन पहुंच गये मालूम हुआ। हम तो उम्मीद कर रहे थे कि आप इधरसे होते हुए जायंगें। बोर्डिंगके लिये जो दोनों मकान आपने पसंद किये थे वे हमने कविवर टागोरजीसे पत्र लिख कर माग लिये हैं और उन्होने हमारी मागको स्वीकार कर लिया है। विद्यर्थी और सुपरिन्टेन्डेंटके रहनेकी जगह तो उसीमे हो जायगी। रसोई और भोजन करनेके लिये एक अलग

स्वर्गवासी साधुचरित श्रीमान् डालचन्दजी सिंघी

बाबू श्रीबहादुर सिंहजी सिंघीके पुण्यश्लोक पिता

जन्म-वि स. १९२१, मार्ग. वदि ६ 卐 स्वर्गवास वि स. १९८४, पोष सुदि ६

प्रवर्तक श्रीमत्कान्तिविजयजी महाराज

मुनिप्रवरश्रीचतुरविजयजी महाराज

[पाटणके जैन ज्ञानभाण्डारोंके उद्धारकर्ता, ज्ञानोपासक गुरु-शिष्य]

मकानकी जरूरत होगी जो उसीके नजदीक होना चाहिए। शायद वैसा कोई मकान वे नहीं दे सकेंगें। वह अपने ही को तैयार (कम खर्चेमें) कर लेना होगा। आप इन बातोंकी और इसके सिवाय और और जो जरूरत हो उन बातोंकी निगाह करके, एक दफह इधर आ जावें तो रूबरूमें सब बातें हो जानेसे जल्दी सब तय हो जाय। पत्रमें विलंब हो जाता है। 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के छपाईके बाबतमें भी कुछ बातें आपसे करनी हैं।"

सिंघीजीका यह पत्र मिलने पर यथावकाश मैं कलकत्ते गया और जिन जिन बातोंका बिचार करना आवश्यक था किया गया। 'जैन छात्रालय' के लिये सामान तैयार करने की यादी की गई। भोजनालयके लिये कोई योग्य स्थान हमको वहां मिल नहीं रहा था इसलिये एक नया ही मकान अपने खर्चेसे बनानेका विचार तय हुआ और वह मकान कैसा और कितना लंबा-चौडा आदि होना चाहिये इसका रफ प्लान भी हम दोनोंने बैठ कर अंकित कर लिया। सिंघीजीको मकान आदि बनानेका बडा शौक था और प्लान वगैरह अपने आप सोच कर अंकित करते-करवाते थे। मुझे भी इस विषयमें कुछ रस रहा है और अनेकों प्लान मैंने यों ही अपने शौकको पूरा करनेके लिये बनाये-बिगाडे हैं। शान्तिनिकेतनमें उस समय तो मकान प्रायः कच्चे ही थे। मिट्टीकी दिवारें और ऊपर घासके छप्पर यही वहांके मकानोंकी रचना थी। हमने भी उसी ढंगका प्लान बनाया पर दरवाजे और खिडकियां आदिके लिये कुछ टिकाउ लकडीका उपयोग करना तय किया और वह सब कलकत्ते ही से बनवा कर भेजा जाना सोचा गया। इस एक छोटेसे झोंपडेका प्लान बनानेके लिये हम दोनोंने पूरा एक दिन खर्च किया। मै तो खैर निकम्मा ही था इसलिये मुझे तो उसमें उतना समय देनेमें कोई विशेष नहीं लगता था। पर सिंघीजी तो बडे व्यवसायी थे, उनका इस प्रकार ऐसी मामूली लगनेवाली बातमें इस तरह समय खर्च करना, दूसरोंकी दृष्टिमें कैसासा लग सकता है। पर उनकी यही तो विशेषता थी। चाहे कोई बात छोटी हो या बड़ी हो, परन्तु उस पर पूरी सावधानीके साथ विचार करनेकी उनकी प्रकृति थी। जो काम करना उसको अच्छी तरह करना यह उनका सिद्धान्त था। पैसा खर्च करना दिल खोल कर करना, पर उसका कहीं दुरुपयोग न हो इसकी पहले यथेष्ट जांच कर लेनेका उनका पूरा लक्ष्य रहता था।

विद्यार्थियोंके उपयोगके लिये डेस्क, बुकसेल्फ, सोनेके पट्टे आदि सब चीजोंका माप और डिझाइन आदि अपने हाथसे बना कर फिर कारीगरको बुलाया गया और उसको उन चीजोंके बनानेका ऑर्डर दिया गया।

इस तरह ३-४ दिन उनके साथ रह कर मैं पुनः शान्तिनिकेतन चला गया और वहां अपना कार्य करने लगा। थोडे ही दिनमें कलकत्तेसे सामान तैयार हो कर शान्ति-निकेतन पहुंचने लगा। विद्यार्थी भी कुछ वहां पहुंच गये थे और उनको स्कूल वगैरहमें भर्ती करानेका कार्य आरंभ हो गया था। खान-पान आदिकी चीजोंकी भी ज्यों ज्यों जरूरत उपस्थित होती जाती थी त्यों त्यों वे कलकत्ते से ही पहुंचाई जाती थीं। शान्ति-निकेतनमें इन चीजोंके मिलनेकी कोई अच्छी सुविधा नहीं थी। सिंघीजी इस विषयमें बडे निपुण थे और स्वयं बडी दिलचस्पीसे सब बातोंका खयाल कर कर उनको वहां

पहुंचानेका प्रबन्ध कर रहे थे। इस विषयमें, समय समय पर उनके जो पत्र मेरे पास आये थे उनमेंसे एक-दोका कुछ अंश यहां दिया जाता है जिससे उनकी कार्यप्रवणताका और रसवृत्तिका खयाल आ सकेगा। ता. १०. ८. ३१ के पत्रमें वे लिखते हैं—

...प्रणाम। आपका पत्र ता. ४. ८. ३१ का मिला। वरतन टंकी वगैरह जो कुछ बाकी था आज रवाने कर दिया गया है। तख्तपोश १२ और बन गये हैं। जल वरस रहा है इसलिये रंग होनेमें देर हो रही है। तीन चार रोजमें रवाने हो जायंगें। डेस्क तो डजन भी उसीके साथ आ जायगा। सामानके लिये सेल्फ बनाने दे दिये हैं। बाकी फरनीचर (टेबिल, खुरशी आदि) तैयार ही खरीद लेंगे। रसोई घरके लिये दरवाजे और जंगले तैयार हो कर रंग हो चुका है। जो रसोई घर अभी अपनेको मिला है वह अगर छोडना न पडे और उसीमें अपना गुजारा हो जाय तो इन दरवाजे जंगलोंसे कोई दूसरा मकान छात्रोंके लिये या और किसी कामके लिये वन सकता है। अगर रसोई घर बनाना पडे तो उसके लिये तो ये वनवाये ही गये हैं। दाल, आटा वगैरह कल-परसो तक रवाना किया जायगा। चावल दो वोरी और सरसोंका तैल—दस सेरका एक टीन—अजीमगंजसे भेजनेको लिख दिया है। ये दो चीजें हमारे यहां भी वहींसे आती हैं। रेलका किराया भी वहांसे आनेमें कम लगेगा।

वोर्डिंग हाऊसका नाम "सिंघी जैन छात्रालय" आपने सोचा सो ठीक ही दिखता है। वरतनोंमें हमने J. B. (जैन वोर्डिंग) खुदवाया है उसमें कुछ हर्जा नहीं होगा। ठाकुर (रसोया) जो पहले सोच रखा था उसका दूसरा पत्र आया है। वह अजमेरमें नौकरी लगा हुआ है सो छोड कर आना नहीं चाहता है। दूसरा एक आदमी यहां मिला है। उमर तो ज्यादा नहीं हैं २५–३० के वीचमें होगा। मगर आदमी जाना हुआ है—अच्छा है। मीठाई वगैरह खानेकी चीजे सब बनाना जानता है। लेकिन उसकी जनानाको साथ लिये वगैर वह नहीं जायगा। अपनेको एक आदमीके खानेका खर्च वढेगा मगर एवजमें वह कुछ काम भी दे सकेगी। कमसे कम अगर कभी ठाकुर वीमार हो गया तो वह काम चला लेगी। इतना सुभीता भी है। हमने तो उसको रखना पसंद किया है। आपके या शान्तिनिकेतन Othorities को कोई आपत्ति न हो तो, आपका जवाव मिलने पर उन लोगोंको भेज देंगे। सीधा सामानकी फेहरीस्तमें आपने ½ टीन तिलका तैल मंगवाया है यह हम नहीं भेजते हैं। मुर्शिदावाद और कलकत्तेके लडके लोग तरकारी भाजी या और किसी चीजमें तिलका तैल खानेके आदी नहीं हैं, और खा भी नहीं सकेंगे। हमारी रायमें तरकारी दो या तीन हो, उसमेंसे एक सरसोके तैलकी हो और वाकी घीकी हो। हम लोगोंके यहां ऐसा ही होता है। इसलिये सरसोंका तैल दस सेरका एक टीन और घी दो टीन भिजवाया है।

आपका दूसरा पत्र ता. ८ का अभी मिला। 'केसरकुमारी जैन पुस्तकसंग्रह' के लिये पुस्तक वगैरह खरीद हुआ जिसकी किमतका चेक शंभुलाल और मगनलालको कल भेजेंगे और आपको सूचित करेंगे।

इस पुस्तकसंग्रहके पुस्तकोंमें लगानेके लिये आपने लेवलका लिखा मगर हमने तो फकत एक रब्बर स्टेम्पके लिये ही सोचा था जिसमें देवनागरी लिपि या देवनागरी व अंगरेजी

दोनों लिपियोंमें 'श्रीकेसरकुमारी जैन ग्रंथ(पुस्तक)संग्रह – शान्तिनिकेतन' इतना लिखा हो। आपकी रायमें यह ठीक नहीं जंचता हो और लेबल ही होना चाहिए, तो वो कैसा होगा इस बातका रूबरूमें ठीक विचार हो सकेगा। तख्तपोश दूसरे एक डज़न भी बन चुके हैं। इससे अब लंबाई बढ नही सकती। ६ फूट याने ४॥ हाथ लंबा है साधारण आदमियोंकी लंबाई ३॥ हाथ होती है बिस्तरके लिये क्या एक हाथ जगह काफी नहीं है?

पालीताणा गुरुकुलकी वार्षिक रीपोर्ट १ आपके पास इसलिये भेजते हैं कि अपने छात्रालयका हिसाब – किताब कैसे रखा जाना चाहिए इसका कोई idea इससे लेना हो तो लिया जा सकता है।"

इस तरह 'सिंघी जैन छात्रालय' का सब सामान स्वयं तैयार करवा कर सिंघीजीने कलकत्ते आदिसे शान्तिनिकेतन पहुंचाया और जब विद्यार्थी वहां पर व्यवस्थित हो गये तब उनके खान-पान आदिका भी कैसा प्रबन्ध रहना चाहिये और वह किस तरह दिया जाना चाहिये इस बारेमें भी उन्होंने एक पत्रमें विस्तारसे हमको लिख भेजा जो उनकी सब तरहकी सतर्कताका सूचक हो कर कर्तव्यनिष्ठाका द्योतक है। इस पत्रका वह अंश इस प्रकार है –

..."लडके लोगोंके कार्यक्रमका रुटीन (Routine) तैयार हो गया होगा। शान्तिनिकेतनके स्कूलमें attend करनेके सिवाय जैन धार्मिक पाठ, खान-पान वगैरह सब कामोंका टाईम निरूपण कर दिया होगा। एक कापी हमें भेज दीजियेगा, और वे लोग उसी माफीक नियमसे सब काम करते रहें इस बातका निगाह रखियेगा। हां, उन लोगोंके खुराकके बारेमें जो लीस्ट यहां आपकी उपस्थितिमें पहले तैयार किया गया था वो तो शायद कुछ ठाकुरकी वजहसे और कुछ अन्य कारणोंसे अभी निर्दिष्टरूपसे काममें नहीं आता होगा और जब तक एक अच्छा ठाकुर और एक योग्य सुपरिन्टेन्डेंट न आ जाय तब तक – हम जहां तक देखते हैं – काममे आ भी नहीं सकता। वर्तमान स्थितिमें जो कुछ खुराक उनके लिये बन सकता है उसे सोच कर हम एक लीस्ट तैयार करके भेजते हैं। आप इसे देख कर इसी सूरत उन सब लोगोंको खुराक दी जाय इसकी सबको ताकीद कर दीजियेगा। पूजाकी छुट्टियों तक तो यही चलेगा, बाद उसके जो इन्तजाम होगा सोच लिया जायगा।

सुबह पढने जानेके पहले –

दो दो नमकीन खाखरे, डेढपाव पक्का दूध। चाय किसी हालतमें इस वख्त न दी जाय और दूध डेढपावसे कम न हो।

रसोईके वख्त –

आटेका फुलका या टिकडा जिसको जितना रुचि हो, भात रुचि माफिक, दाल जितना रुचि हो। तरकारी सब्जीकी कमसे-कम दो होनी चाहिये। उसमें एक घीमें और एक तेलमें। अगर किसी कारणसे किसी रोज एक ही तरकारी हो तो घीमें हो। हफ्तामें दो रोज बोलपुरमें हाट लगता है उसमे तरकारी काफी तादादमें मिल सकती है, सो हाटसे मंगा लेनेसे तीन रोज चल सकेगा।

आधपाव दहीमें आधा पाव जल और थोडा नमक मिला कर मट्ठेके माफिक करके या आधपाव दहीमें चीनी मिला कर भात उसमे डाल कर दही भात।

टीफीनके वख्त –

मूडीके साथ चाय जिसमें **आधा पाव दूध** जरूर रहे।

शामके वख्त –

"आटेका टिकडा जितना जिसको भूख हो। दो तरकारी – उसमें एक घीकी और एक तैलकी – जितनी जरूरत हो। हलवा या दूसरी कोई मीठेकी चीज। शामके वख्त भातकी जरूरत नहीं। आटेकी पुरी, टिकडा कुछ होना चाहिये लेकिन पुरी अभी संभव नहीं है इसलिये हमेशां टिकडा हो।

सुबहको किसी दिन भी दूधके बदले चाय नही होना चाहिये, दूध ही हो।

आपको इस व्यवस्थामें कोई परिवर्तन करना जरूरत न मालूम पडे तो तुरन्त इसे काममें लानेका इन्तजाम कर दीजियेगा। परिवर्तनकी जरूरत हो तो हमें सूचित करियेगा, दूधका इन्तजाम पूरा कर लीजियेगा।"

इस पत्रकी बातोंसे पाठकोंको ज्ञात हो जायगा कि – लडकोंके स्वास्थ्य, खान-पान, रहन-सहन आदि सभी बातोंकी कितनी बारीकीके साथ सिंघीजीने विचारणा की थी और किस तरह मुझे शान्तिनिकेतनमें रहने और अपने कार्यमें प्रगति करनेके निमित्त उनका उत्साह काम करता था।

उस पहले ही वर्षमें 'सिंघी जैन छात्रालय' में कोई १५–१७ विद्यार्थी दाखल हो गये। जो सम्पन्न घरोंके लडके थे वे अपना बन्धा हुआ खर्चा देते थे। बाकीके कुछ विद्यार्थी छात्रालयके खर्चसे ही रहते थे। इन स्कूलके विद्यार्थियोंके अतिरिक्त कुछ, उच्च अभ्यासार्थी विद्यार्थी भी मेरे पास अध्ययनकी दृष्टिसे वहां पहुंचे जो यथानियम विश्वभारतीके विद्याभवनमें प्रविष्ट हुए और यथानियत उच्च प्रकारका विद्याध्ययन करने लगे।

शान्तिनिकेतनमें स्वतंत्र स्थान बनानेका विचार

उस पहले वर्षका वातावरण बहुत कुछ उत्साहवर्द्धक रहा। जो मकान हम लोगोंको मिले थे वे आरोग्यकी दृष्टिसे उपयुक्त नहीं थे। दूसरे मकान वहां उपलब्ध हो सके वैसी परिस्थिति नहीं थी और हम सबको मकानका कष्ट अनुभूत होने लगा। सिंघीजीसे इस विषयमें बातचीत होती रही तो फिर उन्होंने सोचा कि यदि ऐसा है तो क्यों नहीं फिर हम ही अपना स्वतंत्र एक अच्छासा मकान बना लें जिसमें 'सिंघी जैन ज्ञानपीठ' और 'सिंघी जैन छात्रालय' का समावेश हो जाय। इसके लिये कोई १०–१२ हजार रूपयेका खर्चा अंदाजा गया था। यदि शान्तिनिकेतनवाले इसके लिये कोई उपयुक्त अच्छी जमीन देना स्वीकार करें तो इस मकानको बनानेका सिंघीजीका संकल्प हो गया था। मैंने आश्रमके कार्यकर्ताओंसे इस विषयमें परामर्श किया और फिर स्वयं गुरुदेवसे चर्चा की। उन्होंने बहुत ही उत्साहके साथ मुझे कहा कि आश्रमके जिस भागमें जो खाली जमीन आपको पसन्द हो, आप उसे ले सकते हैं और वहां मकान बना सकते हैं। आश्रम सब प्रकारकी अपेक्षित सहायता करनेमें तत्पर रहेगा। तदनुसार एक अच्छा लंबा-चौडा जमीनका टुकडा मैंने पसन्द किया और उस पर पक्का मकान बनानेकी तैयारी की जाने लगी।

सबसे पहले एक छोटा स्वतंत्र मकान अलग बनाना सोचा जिसमें मैं रह सकूं और फिर बादमें दूसरे वर्ष छात्रालयका बडा मकान बनाया जाय। इसके लिये, पूजाकी छुट्टियोंके पहले ही एक छोटासा समारंभ किये जानेकी तरतीब सोची गई और इसीमें गुरुदेव रवीन्द्रनाथके हाथोंसे उस मकानका खातमुहूर्त कराये जानेकी भी योजना की गई। सिंघीजीको यह कार्यक्रम बहुत पसन्द आया और उसके लिये अपेक्षित सब सामग्रीकी उन्होंने तैयारी करवाई। निश्चित दिन पर वे वहां पहुंचे और स्वयं गुरुदेवके हाथोंसे वह खातमुहूर्त का काम सानन्द संपन्न हुआ। सिंघीजीकी ओरसे शान्तिनिकेतननिवासी सभी जनोंको चहापान आदि कराया गया।

इस तरह 'सिंघी जैन छात्रालय'का बडे उत्साहके साथ प्रारंभ हुआ और पूजाकी छुट्टियोंके बाद, सुप्रिन्टेन्डेन्ट वगैरहकी भी ठीक व्यवस्था कर ली गई। विद्यार्थियोंमेंसे बहुतसे सिंघीजीके निकटके कुटुम्बियोंमेंसे थे इसलिये कहीं उनके अभिभावक किसी प्रकारकी कोई त्रुटि आदिका बहाना न खोज सके और तदर्थ छात्रालयका कोई दोष न निकाल सके इसलिये खान-पान आदिकी बहुत ही उत्तम व्यवस्था रखने रखानेकी ओर उनका बहुत खयाल रहता था और उसके लिये यथेष्ट खर्च करनेकी उन्होंने स्वीकृति दे दी थी। यद्यपि मेरा इस विषयमें कुछ विरोध भी था। क्यों कि शान्तिनिकेतन जैसे स्थानमें, जहां अन्य सैंकडों विद्यार्थी आश्रमके सर्वसाधारण भोजनालयमें बहुत ही सादा और सस्ता भोजन करते हैं वहां हमारे जैन विद्यार्थी इस प्रकारके रोज गरिष्ठ पक्वान्न और माल-मलीदा उडाते रहें यह असमंजससा लगता है। पर सिंघीजीको अपने समाजके लोगोंकी क्षुद्र और दोषदर्शी मनोभावनाका बहुत अनुभव था। इस-लिये उनका कहना था कि—एक तो यों ही ये लडके आज तक कभी घरसे बाहर नहीं निकले और न किसी अच्छे संस्कारी वातावरणमें कभी हिले-मिले, इसलिये इनकी आदतें बहुत ही हलके प्रकारकी और तुच्छ भावसे भरी होती हैं। छोटी छोटी बातोंमें ये अपना मन बिगाडते रहेंगे और मां-बापोंसे अनेक प्रकारकी शिकायतें करते रहेंगे। और दूसरी बात, मां-बापोंकी मनोवृत्ति भी ऐसी ही ईर्ष्यादग्ध और दोष देखने-वाली है जो किसी न किसी तरह हमारी त्रुटिको खोज निकालनेमें तत्पर रहती है और हमारे अच्छे कामको भी, यदि बन सके तो बदनाम करनेमें मौज मानना चाहते हैं। सिंघीजीकी यह भविष्यदर्शिता बिल्कुल ठीक थी और इसका मुझे भी थोडे बहुत अंशमें, कामके आगे बढने पर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपमें कुछ अनुभव मिला था।

वह शीतकाल तो अच्छी तरहसे व्यतीत हुआ और परीक्षायें वगैरह दे कर, ग्रीष्मकी छुट्टियोंमें विद्यार्थी अपने अपने स्थान पर चले गये। मैं भी ग्रन्थमालाके कार्यके निमित्त गुजरातमें चला आया।

छात्रालयकी निष्फलता

मुझे एक वर्षके अनुभवसे ज्ञात हुआ की छात्रालयका जैसा चाहिए वैसा उपयोग नहीं हो रहा है और खर्च इसके पीछे बहुत अधिक उठाया जा रहा है। जो विद्यार्थी प्रविष्ट हुए हैं वे बहुत ही सामान्य कोटिके हैं और उनमेंसे आगे बढनेकी शायद ही कोई योग्यता रखता हो। इस विषयमें मैं कुछ विशिष्ट विचार कर ही रहा

था और अपना अभिप्राय सिंघीजीसे यथावसर विदित करना चाहता ही था, कि दूसरे वर्षके प्रारंभमें स्वयं छात्रालयके विद्यार्थियोंमें मन्दताका वातावरण दिखाई दिया। कुछ विद्यार्थियोंको तो शान्तिनिकेतनके जलवायु ठीक अनुकूल नहीं मालूम दिये और कुछको वहांका पठनक्रम एवं समूचा रहन-सहन ही माफक नहीं मालूम दिया। अतः आधेसे ज्यादह विद्यार्थी उपस्थित ही नहीं हुए।

छात्रालयके स्थापन करने-करानेमें मेरा मुख्य उद्देश था कि कुछ बुद्धिशाली और होनहार जैन विद्यार्थी शान्तिनिकेतनके विविध संस्कारपूर्ण वातावरणमें पलकर, उच्च शिक्षा संस्कार और जीवनोपयोगी ज्ञानसे परिचित बनें और समाजमें कुछ क्रियाशील व्यक्तिके रूपमें आगे आवें।

परन्तु जो विद्यार्थी वहां पर उपस्थित हुए उनके संस्कार और व्यवहार मेरी भावनाके प्रायः विपरीतसे निकले। न उनके माता-पिताओंके शिक्षाविषयक कोई अच्छे विचार थे, न उनके बच्चे कोई विशिष्ट संस्कारसंपन्न व्यक्ति बने ऐसी उनकी कोई भावना थी। उनका तो केवल यही खयाल था कि लडके शान्तिनिकेतनमें रह कर चाहे जिस तरह स्कूलके स्टांडर्ड जल्दी जल्दी पास कर लें। पर शान्तिनिकेतनका पठनक्रम इस भावनाके अनुकूल न था। केवल पुस्तकें रटानेकी अपेक्षा विद्यार्थियोंके संस्कार और आदर्शका उन्नयन करानेकी तरफ वहांके अध्यापकोंकी रुचि अधिक थी और इसी दृष्टिसे वहांका सारा पठनक्रम चलता था। साहित्य, संगीत, नृत्य और चित्रकलाके विशिष्ट अध्ययनका आकर्षण ही शान्तिनिकेतनकी विशेषता थी। पर, केवल द्रव्योपासक और अर्थपूजक वणिक्प्रकृतिके जैनियोंको इस प्रकारके सांस्कृतिक शिक्षणमें यत्किंचित् भी अनुराग होनेकी मुझे संभावना नहीं दिखाई दी। इसलिये मैंने सोचा कि 'जैन छात्रालय' के निमित्त वहां पर अधिक श्रम और अर्थव्यय करना-कराना कोई विशेष लाभदायक वस्तु नहीं होगी और इस विचारसे उसके निमित्त विशेष प्रवृत्ति करना-कराना स्थगित किया गया।

ग्रन्थमालाका पहला ग्रन्थ प्रकाशित हुआ

छात्रालयके उक्त प्रकारके स्कूलके विद्यार्थियोंके अतिरिक्त "सिंघी जैन ज्ञानपीठ" के उच्चकक्षाके अभ्यासी विद्यार्थी भी कुछ मेरे पास आ गये थे जो शास्त्रीय विषयोंका अध्ययन करते थे। इधर ग्रन्थमालाका कार्य चालू हो गया था और ४-५ ग्रन्थ एक साथ प्रेसमें छपने दे दिये गये थे। इनमें सबसे पहला ग्रन्थ 'प्रबन्धचिन्तामणि' मूल संस्कृत १९३३ के मई-जूनमें छप कर तैयार हुआ। ग्रन्थमालाका टाइटल पृष्ठ आदि कैसा बनाना और उसका बाइन्डींग आदि किस प्रकार करवाना, इस विषयमें सिंघीजी बडी दिलचस्पी रखते थे; अत. उसको अन्तिम स्वरूप देनेके पहले कई दफह उनसे मैंने परामर्श किया था। ग्रन्थमालाके मुखपृष्ठ पर जो सिंघीजीके पिता श्रीडालचन्दजीका रेखाचित्र अंकित रहता है उसकी डिझाइन भी सिंघीजीने स्वयं अपने पास अच्छे आर्टिस्टको बिठा कर तैयार करवाई थी। पहले उन्होंने एक दूसरे आर्टिस्टको अपनी कल्पना दे कर ब्लाक बनवाया जो उनको पसन्द नहीं आया और उसके विषयमें मुझे लिखा कि-

"पूज्य पिताजीका लाइन ब्लाक हमे पसन्द नही आया। काम बहुत भद्दा हुआ है। मगर देर बहुत हो गई है इसलिये इस दफे तो इसीसे काम चला लेना होगा। मगर हम दूसरा फिरसे बनवावेंगे सो उससे लिख दीजियेगा वो चित्र हमें वापस दे जाय।"

'प्रबन्धचिन्तामणि' की पुस्तक तैयार होते ही प्रेसमेंसे कुछ नकलें उनके अवलोकनके लिये भेजी गई जिसको देख कर वे बडे प्रसन्न हुए। ता. २९. ७. ३३ के पत्रमें उन्होंने इसकी सामान्य पहुंच लिखते हुए मुझे लिखा कि–

... "सविनय प्रणाम. आपके तीन पत्र मिले। आखिरी पत्र ता ८, जूनका मिला। उत्तरमें विलंबके लिये क्षमा करें। 'प्रबन्धचिन्तामणि' की चार पुस्तके दो पार्सलोंमे आई। प्रतियोंकी बाइंडींग व get up सबको पसन्द आई। एक दो बातें सूचित करनेकी हैं वे मुलाकातमें कहेंगें। विक्रयके लिये जितनी पुस्तके भाई शंभूके यहां रखनी हों वे वहां रख कर बाकी सब यहीं भिजवा दे। आपके यहां आने पर मुफ्तमें भेजनेकी पुस्तकोका लीस्ट तैयार करके यहींसे भेज दी जायगी। बंबईमे या और किसी जगह बेचनेके लिये रखवाना हो सो वहीं रखवा दें। प्रेसका बिल देख कर वापस भेजते हैं। मैनेजर निर्णय-सागर प्रेसके नामका चेक १ रु० १००० का भेजते हैं आप उन्हें दे दीजिए। दूसरे चालू ग्रंथोंके फरमे हमारे फाईलके लिये हो तो आप साथ लेते आइये। ... आपका शरीर अब पूर्णरूपसे स्वस्थ हो गया होगा। कृपया अब शीघ्र ही इधर आनेकी व्यवस्था करें। यहां भी दो रोजके लिये ठहरनेकी आवश्यकता है। सो या तो यहा हो कर शान्तिनिकेतन जांय या सीधा वहां पहुंच कर पीछे यहां आ जाय। जैसा आपको सुविधा हो वैसा कीजियेगा।"

सिंघी जैन ग्रन्थमालाका पहला ग्रन्थ प्रकाशित हुआ वह 'विश्वभारती-शान्तिनिकेतन' के नामसे अंकित हो कर प्रकट हुआ। इस ग्रन्थकी १ प्रति जब मैंने गुरुदेवको भेंट की तो उसे देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए और ग्रन्थमालाके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें पूछने लगे। इसके बाद जब कभी उनसे साक्षात्कार करनेका प्रसंग आता, तो सबसे पहले वे ग्रन्थमालाके कार्यके विषयमें ही प्रश्न करते। जैन साहित्य, भारतीय संस्कृतिके प्राचीन इतिहासका एक बहुत बडा साधन-भण्डार है और प्राकृत, अपभ्रंश तथा राजस्थानी आदि भाषासाहित्यका वह एक अद्वितीय खजाना है इस बातका जब जब मैं उनके आगे वर्णन करता तब तब वे बडी उत्सुकताके साथ मुझसे कहते कि– 'आप बहादुरसिंहजी सिंघी जैसे कोई और दो-चार धनिक जैन व्यापारियोंको प्रेरणा कीजिए, और मुझसे कहें तो मैं भी उन्हें लिखूं कि वे दो-चार लाख रूपये इकट्ठे करें और इस प्रकारके जैन साहित्यके उद्धारका कार्य बडे वेगसे प्रारम्भ करें, इत्यादि।

मेरे स्वास्थ्यकी शिथिलता

यद्यपि इस तरह 'सिंघी जैन ज्ञानपीठ' और 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' का कार्य शान्तिनिकेतनमें सुचारूरूपसे चल रहा था, पर धीरे धीरे मेरा स्वास्थ्य वहां पर बिगडता जा रहा था। बंगालके मेलेरियापूर्ण जल-वायुने मेरी प्रकृतिको शिथिल बना दिया और मुझे वारवार अस्वस्थताका अनुभव होने लगा। इसलिये शान्तिनिकेतनके स्थायी निवासकी जो भावना प्रारंभमें बलवती थी वह मन्द होती चली। सिंघीजीकी

इच्छा भी मेरे स्वास्थ्यको देख कर शान्तिनिकेतनके लिये उत्साहपूर्ण नहीं रही। तो भी ३ वर्ष इस तरह वहां पूरे व्यतीत हुए।

शान्तिनिकेतनमें रहते भी मेरा मुख्य लक्ष्य तो "सिंघी जैन ग्रन्थमाला" की प्रगति तरफ ही अधिक रहा करता था और उसीके संपादन-प्रकाशनमें मैं दिन प्रतिदिन व्यस्त रहता था। उस कार्यके लिये मुझे गुजरात ही सबसे अधिक अनुकूल था, इसलिये धीरे धीरे शान्तिनिकेतनसे अपना कार्य केन्द्र हठा कर अहमदाबाद या बम्बईमें रखनेका मैं सोचने लगा और तदनुसार कुछ व्यवस्था भी सोची जाने लगी।

केशरियाजी तीर्थके सम्बन्धमें श्रीशान्तिविजयजी महाराजका अनशन

इन दिनों उदयपुर राज्यमें आये हुए केशरिया नामक तीर्थस्थानके विषयमें एक तरफ श्वेतांबर-दिगम्बरोंमें और दूसरी तरफ उदयपुर राज्यके साथ, जैनियोंका स्वत्वाधिकारके विषयमें आपसी झगडा चल रहा था। आबू पहाड पर रहनेवाले और योगीराजके नामसे प्रसिद्ध श्रीशान्तिविजयजी महाराजने इस झगडेका निबटारा आपसी मेलमुलाकात द्वारा कराना चाहा और उसके निमित्त उन्होंने अनशन व्रत कर लिया। इससे जैन समाजमें – खास करके श्रीशान्तिविजयजी महाराजके भक्तोंमें – बडी हलचल मच गई और उनमेंसे कई एक प्रमुख गिनेजाने वाले व्यक्ति उदयपुर पहुँचे। सिंघीजी भी श्रीशान्तिविजयजी महाराजके भक्तोंमेंसे एक विशिष्ट व्यक्ति थे। बुद्धि, समझदारी, साधनसंपन्नता आदि सभी तरहसे सिंघीजीका स्थान उन सब भक्तोंमें अग्रणीके जैसा था। इससे उनको भी उस समय उदयपुर पहुँचना पडा। वहाँकी सब परिस्थितिका निरीक्षण करते हुए उनको मालूम हुआ कि – केशरियाजी तीर्थका प्राचीन इतिहास अन्धकारके पडलमें दबा हुआ है। किसीको उसके स्वरूपकी ठीक जानकारी नहीं है। अर्द्धदग्ध और अनधिकारी लोगोंने उसके विषयमें परस्पर विरोधी अनेक बातें प्रचलित कर रखी हैं और उससे समस्या अधिक जटिल हो रही है। सिंघीजीकी इच्छा हुई कि इस विषयमें वे मुझसे कुछ परामर्श करें और कुछ तथ्य ज्ञात करें। इस विचारसे ता. २२-३-३४ के दिन उदयपुरसे सिंघीजीने नीचे दिया हुआ पत्र मुझे लिखा और कुछ दिन उदयपुर आनेके लिये सूचित किया।

... "सविनय प्रणाम. श्रीकेशरियाजी तीर्थ व श्रीशान्तिविजयजी महाराजके अनशनके प्रसंग पर हमारा यहां आना हुआ। इसी प्रसग पर हमारा अहमदावाद जानेका भी था – और इसीलिये आपको तार भी किया था – मगर Circumstances change होने पर अहमदाबाद जाना बन्ध रखा। अब जैसा यहांका बनाव दिखता है उसमें इस तीर्थसंबन्धी कोई जांचकमिटी या Enquiry Commission मुकर्रर जरूर होगा और उसमे दोनों पार्टीको अपना अपना पुरावा दाखिल करना होगा। हमने सुना है कि श्रीकेशरियाजीके मन्दिर व उसके इर्दगिर्दमें कई लेख श्वेताम्बरी वा दिगम्बरियोंके हैं। कहा जाता है कि दिगम्बरियोंका लेख सबसे प्राचीन है। हमको यह निश्चय करना है कि हकीकतमें वे प्राचीन हैं या नहीं। सन तारीखसे वे प्राचीन हों भी तो लिपि प्राचीन है या नहीं। उनमें लिखित सन, तारीख, मिति, वार आपसमें मिलते हुए हैं या नहीं – याने जिस सन तारीखमें जो वार लिखा हुआ है, हकीकतमें उस रोज वही वार था या नहीं? उसमें

उल्लेखित व्यक्ति उसी वख्त थे या नहीं?......आपने कभी इस विषयकी कोई चर्चा की हो, या इन लेखोंका कोई impression लिया हो, या इनको पढा हो तो इन सब वातोंको भी जाननेकी जरूरत है। मुख्तसर यह है कि इस सम्बन्धी जो कुछ सामग्री आपके पास हो या उपर लिखी हुई वातोंको जाननेके लिये जो कुछ जरूरत हो, उसे साथ ले कर आप अगर कृपा करके यहां पधारें तो बहुत अच्छा हो। शिलालेखोंका impression लेनेके लिये जो सामान जरूरत हो उसे भी साथ लेते आवें। यहां करीब ४-५ रोज आपको लग जायंगे। बाबू रायकुमारसिंहजी, सेठ नरोत्तम जेठा, वावू ताजवहादुरसिंहजी वगैरह कई सज्जन यहां उपस्थित हैं। सब कोईका अत्यन्त आग्रह है कि आप एक दफह जरूर यहां आवें। आनेके पेस्तर हमको तार या चिट्ठीसे मालूम कर दें, ताकि स्टेशन पर आदमी चला आयगा। साथमें बिस्तर लेते आवें।

और शान्तिनिकेतन जैन चेयरके बारेमें भूरु बावूका एक पत्र आया है उस संवन्धी भी विशेष आवश्यक विचार करनेकी जरूरत है।

और यहां कुशल हैं आपका कुशल चाहते हैं।

सं० १९९० मि० चैतसु० ७ गुरुवार। विनीत बहादुरसिंह

मेरा उदयपुर जाना

उस समय सिंघीजीके आमंत्रणानुसार मैं उदयपुर गया। श्रीशान्तिविजयजी महाराज उदयपुरसे १०-१२ मील पर एक छोटेसे गांवमें ठहरे हुए थे। सिंघीजी उसी दिन मुझे उनसे मिलानेके लिये वहां ले गये। यद्यपि एकाध दफह, बहुत वर्षों पहले, आबूरोडकी जैन धर्मशालामें उनके दर्शन करनेका मुझे मौका मिला था पर विशेष परिचय नहीं था। मेरे संपादित 'जैन साहित्य संशोधक' त्रैमासिक पत्रके वे ग्राहक थे और उसे बराबर मंगवाया करते थे। जैन इतिहास विषयक लिखी हुई मेरी दूसरी-दूसरी पुस्तकें भी उन्होंने पढ़ी थी और मेरे साहित्यिक कार्यसे वे यथेष्ट परिचित थे एवं उसके प्रशंसक भी थे। इस बार जब उनसे मिलना हुआ तो वे बहुत प्रसन्न हुए और अपने पास पडा हुआ एक आसन उठा कर मेरे बैठनेके लिये स्वयं बिछाया और अपने समान पार्श्वमें, बडे आदरसे मुझे बिठा कर सुखसाता आदि प्रश्नसे मेरा अत्यधिक स्वागत किया। फिर एकान्तमें बैठ कर केशरियाजी तीर्थके विषयमें बहुतसी बातें उन्होंने जाननी चाही और मैंने उनको अपनी जानकारीके मुताबिक कितनीक ज्ञातव्य बातें निवेदन की। फिर तो प्रायः रोज ही ३-४ घंटे उनके पास बैठनेका प्रसङ्ग बना रहा। कुछ दिन बाद वे उस गॉवसे उदयपुर शहरमें आये और हाथीपोलके बहार बनी हुई जैन धर्मशालामें ठहरे। भक्त लोगोंने उनका बडा स्वागत किया। शहरमें प्रवेश करते समय उनकी खास इच्छा रही कि मैं भी उनके साथ साथ चलूं। यद्यपि मुझे ऐसी भीडमें और धांधलीमें चलना पसन्द नहीं था पर उनके आग्रहके वश वैसा करना पडा। धर्मशालामें प्रवेश करने पर उन्होंने लोगोंको थोडासा मांगलिक प्रवचन सुनाया। कुछ भक्तोंने उनको बहुमूल्य कंवल ओढ़ाये जिनमेंसे पहला कंबल उन्होंने अपने हाथोंसे मेरे कंधेपर रख दिया। उनके आशी-

चाँदके रूपमें उस कंवलको मैंने अपने सरपर चढ़ाया और बडे आदरसे उसको अपने पास रखा। आज भी वह कंवल उसी तरह सुरक्षित है और उन साधुपुरुषकी वह स्नेहपूर्ण स्मृतिकी मुझे वारंवार याद दिलाता रहता है।

उदयपुरमें उस सिलसिलेमें मुझे कोई महिना-डेढ महिना रहना पडा। वहाँसे फिर मुझे केशरियाजी जाना पडा और वहाँके शिलालेख आदि जितने ऐतिहासिक प्रमाण थे उन सबका संग्रह करना पडा। सिंघीजी और श्रीशान्तिविजयजी महाराज इस विषयमें बहुत रस लेते थे और केशरियाजी तीर्थकी प्राचीनता आदिके विषयमें वास्तविक जानकारी करनेके लिये बडे उत्सुक रहते थे। जब जब शान्तिविजयजी महाराजके पास जाना होता तब तब वे मेरी इतनी अधिक प्रशंसा करते थे कि जिसको सुनकर मुझे एक प्रकारसे संकोच ही नहीं पर अभाव तक भी हो जाता था। सिंघीजीको वारंवार कहते कि 'देखो जिनविजयजीको किसी तरहका कोई कष्ट न होने पावे। इनके जाने-आनेका मोटर वगैरहका बराबर इन्तजाम रखा जावे' इत्यादि। केशरियाजीके शिलालेख वगैरह जब सब मैंने ले लिये और उनका सब वर्णन और अवलोकन आदि लिखकर एक रीपोर्टके रूपमें मैंने उसे तैयार किया तो उसकी एक नकल शान्तिविजयजी महाराजने लेकर अपने व्याख्यानके पूठेमें रख ली। केशरियाजी तीर्थके मामलेके बारेमें जो कोई खास व्यक्ति उनके पास आता और कुछ बातें कहता तो उसे सुन कर वे पहले मुझसे बातचीत करते और उसका कैसा जवाब आदि देना चाहिये इस बारेमें पूछ लेते। इतनी गाढ उनकी मेरे पर श्रद्धा हो गई थी। फिर तो और भी उनका प्रेम मुझपर बढ़ गया था और बहुतसी अपने अंतरंगकी बाते भी प्रसङ्गोपात्त मुझसे किया करते थे। उदयपुरमें रहते समय उनका स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया था और केशरियाजीका मामला भी सहजमें सुलझने जैसा दिखाई नहीं देता था इसलिये उन्होंने वहाँसे विहार कर देनेका विचार किया। उनकी इच्छा रही कि मैं कुछ दिन उनके साथ रहूँ पर मुझे शान्तिनिकेतन जानेकी और वहाँ पर "सिंघी जैन छात्रालय" आदिकी व्यवस्था करनेकी अनिवार्य आवश्यकता थी; इससे मैंने उस समय तो अपनी अशक्ति प्रदर्शित कर कुछ समय बाद उनकी सेवामें उपस्थित होनेकी इच्छा प्रदर्शित की और उनकी अनुमति लेकर मैं अहमदाबाद गया।

वहाँसे फिर यथासमय जूनके महिनेमें शान्तिनिकेतन जाना हुआ और वहाँके कार्यकी व्यवस्थामें जुट जाना पडा। 'जैन छात्रालय'के बन्ध कर देनेका निर्णय कर लिया गया था, सो तदनुसार उसके व्यवहारको समेटनेकी व्यवस्था की जाने लगी। ग्रन्थमालाका काम चल ही रहा था। इस वर्ष 'विविधतीर्थकल्प ग्रंथ' छपकर तैयार हुआ और 'प्रबन्धकोष' समाप्तप्राय था। और कई नये ग्रंथोंकी प्रेसकापियां तैयार हो रही थीं।

मेरा कुछ समय बंबईमें निवास

दीवालीके अवसर पर मैं फिर अहमदाबाद चला आया और फिर वहांसे दो-तीन महिने बंबई आ कर रहा। ग्रंथमालाकी छपाईका काम बंबईके निर्णय-सागर प्रेसमें ही प्रधानतया चल रहा था और प्रुफ वगैरहके व्हारसे आने जानेमें बहुत

समय लगता था इसलिये मुझे देखना था कि बंबईमें रह कर ग्रंथमालाका कार्य कुछ शीघ्रताके साथ किया जा सकता है या नहीं।

मैं इस तरह जब बंबईमें कुछ दिन ठहरा हुआ था, तब जैन श्वेतांबर कॉन्फरन्सके सेक्रेटरी वगैरह सज्जन मेरे पास आये और केशरियाजी तीर्थका जो मामला चल रहा था उसके बारे में, परामर्श करना चाहा। उदयपुर स्टेटने अब उस कामकी कानूनी कार्रवाई करनेके लिये एक कमिशनकी नियुक्ति कर दी थी और उसके सामने श्वेतांबर और दिगंबर दोनों संप्रदायवालोंको अपने अपने प्रमाण उपस्थित करनेकी आज्ञा जारी की थी। सो इसके लिये दोनों पक्षवाले वकील-बेरिस्टरोंको तैयार करने लगे और अपने अपने केसका मसाला जुटाने लगे। श्वेतांबर पक्षकी ओरसे जैन कॉन्फरन्स और आणन्दजी कल्याणजीकी पेढी — इन दोनों ही संस्थाओंने संयुक्तभावसे इस केसमें सहयोग देनेका निर्णय किया था। पेढीने तो अपने प्रमुख प्रतिनिधि (स्वर्गस्थ) सेठ साराभाई डाह्याभाई तथा सेठ प्रतापसिंह मोहोलालको इस कामकी जिम्मेवारी सौंप दी थी और जैन श्वे० कॉन्फरन्सने, अपने एक भूतपूर्व अध्यक्ष श्रीबाबू बहादुर सिंहजी सिंघीकी प्रधानतामें इस कामको चलानेका निश्चय किया था। सिंघीजी पहले ही से इस काममें दिलचस्पी ले रहे थे और उनकी कार्य करनेकी कुशलता तथा बुद्धिमत्ताका परिचय सबको ठीक ठीक हो गया था, इसलिये उन्हींके जिम्मे यह काम सौंपा गया। मैं जब बंबईमें था तब उन्होंने जैन श्वेतांबर कॉन्फरन्सके सेक्रेटरीको सूचित किया कि वे इस कामके लिये मुझसे मिले और कुछ विचार-विनिमय करें। इसलिये वे सज्जन मेरे पास आये और केशरियाजीके मामलेके विषयमें परामर्श करने लगे। मेरे साथ की गई बातचीतसे उन सज्जनोंको प्रतीत हुआ कि — उदयपुरमें कमिशनके सामने जब कार्रवाई चालू हो तब मेरी उपस्थिति का वहां होना बहुत आवश्यक है। इससे उन्होंने सिंघीजीको लिखा कि — वे मुझसे उदयपुर आनेका अनुरोध करें इत्यादि। इस वृत्तांत को जान कर सिंघीजीने स्वयं बंबई आनेका निश्चय किया और इस विषयका ता. ४.२.३५ को कलकत्तेसे निम्न लिखित पत्र मुझको भेजा।

Registered

११६, लोअर सर्क्युलर रोड,
कलकत्ता, ४. २. ३५

श्रद्धेय श्रीजिनविजयजी,

सविनय प्रणाम आपके दो पत्र मिले। पुस्तकें भी मिलीं। आपके लिखे माफिक चेक १ रु० १५०० का निर्णयसागर प्रेसके नामका भेजते हैं।

और चीनुभाई सोलिसिटरके पत्रसे मालूम हुआ कि उन लोगोंने ध्वजादंड केस संबंधी आपसे परामर्श किया था। उन लोगोंका मत है कि बंबईमें बैरिस्टरके साथ परामर्श करनेके समय व उदयपुरमें सुनवाईके समय आपकी उपस्थिति अत्यावश्यक है। उन्हींके पत्रसे मालूम हुआ कि आप अहमदाबाद चले गये हैं इसलिये यह पत्र अहमदावादके पतेसे भेज रहे हैं। हम ता० १४ फरवरी सुवह ७ वजे बंबई पहुँचेंगे। चौपाटी नरोत्तमभाईके यहां

ठहरेंगे। चार रोज वहां रह कर ता. १७ रातकी गाडीसे रवाने हो कर ता. १८ रात उदयपुर पहुंचेंगे। ता. २० से सुनवाई आरंभ होगी। इसलिये हमारा अनुरोध है कि आप कृपया ता. १४ को बंबई पहुंच जांय व वहींसे हमारे साथ उदयपुर चलें। आपके रहनेसे लेख वगैरहके विषयमें हम लोगोंको विशेष सहायता मिलेगी और हमको बड़ी हिम्मत रहेगी। शेष मुलाकातमें। यहां सब कुशल आप सकुशल होंगे।

आपका विनीत
बहादुरसिंह

पु. नि. गये साल आप उदयपुर रहते हुए श्रीकेसरियाजीके मंदिरके लेखोंकी जो नकलें आपने ली थीं उनकी एक सेट नकल चीनुभाई सेठके मंगवाने पर हमने उनको बंबई भेज दिया है।"

सिंघीजीके साथ फिर उदयपुर जाना

सिंघीजीके इस पत्रकी सूचनानुसार यथासमय मैं बंबई पहुंचा। वहां वकील बेरिस्टरों आदिसे परामर्श कर और उनको साथ ले कर हम सब उदयपुर पहुँचे। चूं कि– उदयपुर स्टेटने इस केसकी सुनवाईके लिये एक विशिष्ट कमिशन बिठाया था और उसका प्रेसिडेन्ट एक अंग्रेज ऑफिसर मि. ट्रेंच था, इसलिये सेठ आणन्दजी कल्याणजीके प्रतिनिधियोंने सोचा कि केसकी कार्रवाई चलानेके लिये कोई अच्छा प्रसिद्ध कॉन्सल होना चाहिये। इससे उन लोगोंने सर् चिमनलाल सेतलवड जैसे सबसे बड़े प्रतिष्ठित और नामी बेरिस्टरको इस कामके लिये नियुक्त किया। इसके मुकाबिलेमें, दिगम्बर पार्टीको भी कोई ऐसा ही प्रसिद्ध बेरिस्टर अपनी ओरसे रखना आवश्यक हुआ और इसलिये उसने मि. महम्मद अली जिन्नाको बुलाया। उदयपुर जैसे स्टेटमें ऐसे बडे बडे बेरिस्टरोंका आना और उनके द्वारा केशरियाजी तीर्थका मामला चलाया जाना–बडी हलचल पैदा करनेवाली बात थी। सूरजपोलके बहार आए हुए, फ़तेह मेमोरियल नामक सरकारी मुसाफर खानेमें, ऊपरके सब कमरे रोक लिये गये जिनमेंका आधा हिस्सा श्वेताम्बर पार्टीने और आधा हिस्सा दिगम्बर पार्टीने कब्जे किया। इधर श्वेताम्बर पार्टीने सर् सेतलवडको अपना केस तैयार करनेके लिये मददके रूपमें कुछ दो-तीन और वकील-बेरिस्टरोंको नियुक्त किया और उसी तरह दिगम्बर पार्टीने भी मि. जिन्नाको मदद करनेके लिये कुछ अन्य वकीलोंको नियुक्त किया। इस प्रकार बड़ी भारी तैयारीके साथ, उदयपुरके सरकारी बगीचेमें स्थित विक्टोरिया मेमोरियल हॉलमें केसकी कार्रवाई शुरू हुई। स्टेटकी ओरसे नियुक्त कमिशनमें, मि. ट्रेंचके अतिरिक्त राजाधिराज बनेडा, मि. रतिलाल अंताणी और एक और सज्जन थे।

केसके स्वरूपका परिज्ञान

जब तक केसकी वास्तविक कार्रवाई शुरू नहीं हुई तब तक यह किसीको पता नहीं था कि केसका स्वरूप क्या है और उसमें किसको क्या साबित करना है? दोनों पक्षवालोंने सोचा था कि ज्यादहसे ज्यादह ५-६ दिन केस चलेगा और एक सप्ताहके

भीतर-भीतर सब कार्रवाई पूरी हो जायगी। इसी गिनतीसे दोनों पार्टियोंने सर् सेतलवड और मि. जिन्ना जैसे बडे कॉन्सलोंको, बडी भारी फीस पर, वहां बुलाया था। पर तीन-चार दिनकी कार्रवाईके बाद तो कुछ पता चला कि केसका स्वरूप क्या है और उसके लिये किस किस प्रकारके सबूत पेश किये जाने चाहिये और किस तरह उनका परीक्षण होना चाहिये। पहले सबकी यह कल्पना थी कि केशरियाजीमें जो पूजापद्धति, अधिकारव्यवस्था और आय-व्ययव्यवहारके संबंधमें परंपरागत रूढ़ि प्रचलित है उसीके विषयमें विचार होगा और उस परसे किस पक्षका वहां पर कितना अधिकार साबित होता है यह निर्णय किया जायगा। पर केसकी सुनवाईके आरंभ होने पर सबसे पहले यह प्रश्न खडा हो गया कि वास्तवमें यह मन्दिर किसका बनाया हुआ है, कब बना है, इसमें जो मूर्ति प्रतिष्ठित है वह किस पक्षकी है? इस प्रश्नका जवाब तो एक प्रकारसे खूब गहरे ऐतिहासिक संशोधनका विषय था। उसके लिये वहांके सब शिलालेखोंकी जांच होनी चाहिये, जितने पुराने कागजपत्र हैं उनकी जांच होनी चाहिये, जितने भी साहित्यगत उल्लेख उस तीर्थके बारेमें प्राप्त होते हैं उनकी आलोचना होनी चाहिये, मन्दिरकी स्थापत्य रचनाके विषयमें वास्तुशास्त्रोंका अवलोकन होना चाहिये, पूजा और प्रतिष्ठापद्धतिके लिये प्रतिष्ठाकल्पोंपरसे परीक्षण होना चाहिये, मन्दिरमें स्थापित अन्यान्य देव-देवियोंकी मूर्तियोंका स्वरूप जाननेके लिये रूपमण्डन आदि शास्त्रोंका विधान विचारना चाहिये–इत्यादि अनेक प्रकारके प्रश्न इस विषयमें उपस्थित हो गये और विना इन प्रश्नोंका उत्तर मिले केसका कोई स्वरूप निश्चित होना संभव नहीं था। यह समस्या देख कर सब कोई विलक्षितसे हो गये। न इसके लिये श्वेताम्बरोंकी कोई तैयारी थी न दिगम्बरोंकी। ५–७ दिनकी कार्रवाईके बाद फिर इसकी तैयारी होने लगी। इससे मालूम हुआ कि केस कम-से-कम ५-६ सप्ताह तक चलेगा और उसके लिये बहुत कुछ खर्चा करना पडेगा।

केसकी कार्रवाईका सारा भार सिंघीजी पर

केसने जो स्वरूप पकडा, वह एक प्रकारसे मेरा तो अभ्यस्त विषय था पर और सबके लिये घोर अन्धकारसा था। सिंघीजी इस विषयके निष्णात तो नहीं थे पर उनकी समझमें सारी बातें बडी आसानीसे आ जाती थीं। उस केसका सारा मसाला तैयार करनेका भार, एक तरहसे हम दोनोंके सर पर आ पडा था। और सिंघीजीको तो आर्थिक भार भी अपने सरपर वैसा ही बडा और उठाना पडा। खाने-पीने, रहने करनेका सब इन्तजाम उन्होंने अपनी जेबसे किया था। १५–२० आदमी रोज उनके रसोडेमें जीमते थे। चाय, दूध, मिठाई, मेवा और फल आदि सबके लिये सदा उपस्थित रहते थे। दो-दो चार-चार दिन केसकी सुनवाई हो कर फिर बीचमें कुछ दिन कार्रवाई बन्ध रहती थी और कॉन्सल वगैरह आते जाते रहते थे।

एक दिन सबके सब केशरियाजीका मन्दिर प्रत्यक्ष देखनेके लिये भी वहां पहुंचे। जिन्ना साहब भी उसमें शामिल थे। सर् सेतलवड मूल मन्दिरके गर्भागारमें गये और उन्होंने मूर्ति वगैरहको ध्यानसे देखा। मन्दिरके अन्दरके भागमें जो दो-एक शिलालेख थे और जिनके विषयमें आगे चल कर बहुत कुछ वाद-विवाद हुआ, उनको

भी उन्होंने देखा और मैंने उन्हें पढ कर, और साथमें उनका अर्थ भी करके सुनाया। बाहर निकल कर सर् सेतलवडने मि. जिन्नाको कहा कि अन्दर कुछ कामके शिलालेख हैं जिनको मैंने गौर करके देखा है। इस पर जनाब जिन्नाने कहा कि चूंकि मैं अन्दर नहीं जा सकता और उनको देख नहीं सकता, इसलिये मैं उनके बारेमें कुछ नोट नहीं लेना चाहता। ऐसी और भी बहुतसी बातें वहां देखी-सुनी गई जिनके विषयमें जिन्ना साहबकी समझमें कुछ नहीं आया और वे विमनस्कसे हो गये। उसके दूसरे दिन हम सब लोग उदयपुर राज्यकी सबसे बडी झील जयसमुद्र-जो उदयपुरसे कोई ३०-४० मीलकी दूरी पर है-देखने गये। झीलमें इधर उधर घूम आनेके लिये एक छोटीसी नौका रखी हुई थी, जिसमें सर् सेतलवड, मि. जिन्ना तथा उनकी बहन, सिंघीजी, मैं और कुछ दो-एक और सज्जन सवार हुए। सिंघीजीने मुझसे धीरेसे कहा कि 'यह खूब मौका आया है जिसमें सर् सेतलवड और मि. जिन्ना जैसे दोनों परस्पर विरोधी राजकीय दलके नेता एक साथ एक नैयामें बैठे हुए हैं।' पर वे दोनों परस्पर चूप थे। कोई बातचीत करना पसन्द नहीं करते थे। मैंने यों ही मखौल करते हुए कहा कि 'जिन्ना साहब! यह क्या ही अच्छा हो, यदि आप और सर् सेतलवड दोनों इस एकान्त और प्रशान्त स्थानमें हिंदुस्थानकी राजकीय आजादीका कोई अच्छा रास्ता ढूंढ निकालनेका तरीका सोचें और देशकी राजकीय नैयाको दोनों परस्पर विरुद्ध दिशामें धकेलते रहनेकी कोशीशके बदले, अपनी इस नैयाको चला-नेवाले आगे और पीछेके दोनों मल्लाहोंकी तरह, एक ही दिशामें उसे चला कर किनारे पहुंचानेका सत् प्रयत्न करें।' मि. जिन्नाने हँसते हुए कहा-'उस नावमें हम अकेले दो ही तो नहीं है. बीचमें (मुझे लक्ष्य कर कहा) आपके जैसे खद्दरधारी भी तो बहुत बैठे हैं जिनको कहां जाना है इसका कोई पता ही नहीं है और मौका मिल जाय तो हम दोनोंको उठा कर झीलके बीचमें डूबो देना चाहते हैं। इसलिये किसी किनारे पहुंचनेकी अपेक्षा अभी तो हमको अपनी जान ही बचानेकी फिक्रमें मशगूल रहना पडता है। Is'nt true sir Chimanlal? (क्या यह सच नहीं है सर् चिमनलाल?) ऐसा कह कर उन्होंने सर् सेतलवडको सम्बोधित किया। मैं और सिंघीजी दोनों हंस पडे। इतने ही में नाव तालावके किनारे पहुंच गई और हम सब उसमेंसे उतर कर, अपनी अपनी मोटरोंमें बैठ, रास्ते पडे।

कॉन्सलोंका बदलना

जैसा कि मैंने उपर सूचित किया केशरियाजीके केसकी सुनवाई बहुत दिनतक होती रही और उसमें अनेक तरहके ऐतिहासिक और सांप्रदायिक प्रश्न उपस्थित होते रहे। मि. जिन्नाने फिर आनेसे इन्कार कर दिया और इधर सर् सेतलवड भी उकता गये। इसलिये उन्होंने भी अपनी ब्रीफ अपने पुत्र श्रीमोतीलालजी सेतलवडको देनेका अपना अभिप्राय हम लोगोंसे प्रकट किया और यदि श्रीमोतीलाल न आ सकें तो फिर श्रीमुंशीजीको बुलानेका अभिप्राय दिया। हम लोगोंने अनुभव किया कि केसको चलानेमें सर् सेतलवडको बहुत कष्ट हो रहा है और जिस प्रकारके पुरावों और प्रमाणोंकी वहां उपस्थिति होती रहती हैं वे बहुत ही पारिभाषिक और सांप्रदायिक

अर्थवाले होनेसे उनका हार्द और भावार्थ समझने-समझाने में उनको बहुत त्रास होता है। इसलिये किसी अधिक उत्साही कॉन्सलको बुलाया जाय तो ठीक हो। सर् सेतलवडको सब प्रमाण समझानेका काम मेरे पर था। कोर्टमें उनके बराबरमें मेरी कुर्सी लगी रहती थी और बादमें हमारे पक्षके अन्य बेरिस्टर वगैरह की। सन्ध्याको भोजन वगैरह करके रातको ८ बजे हम सर् सेतलवडके डेरे पर जाते और उपस्थित प्रमाणोंके पक्ष-विपक्षमें अगले दिनके लिये प्रश्नावलि आदि तैयार करते। इस तरह रोज रातके बारह बजते। सर् सेतलवड बराबर सब प्रमाणोंको सुनते, उनके अर्थ वगैरह पूछते और फिर अपने लिये नोटस् आदि तैयार करते। उतनी वृद्ध उम्रमें भी, उस प्रकार उनका वैसा परिश्रम देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। भारतवर्षके एक लब्धप्रतिष्ठ और बहुत बडे बेरिस्टरके साथ बैठ कर इस प्रकार काम करनेका, अपने जीवनमें अकल्पित प्रसंग मिलनेसे मुझे तो एक प्रकारका कौतूहलसा होता था और कोर्टमें सुनवाईके समय बेरिष्टरों का परस्पर वाग्युद्ध होता देख मनमें कुछ आनन्दसा आता था।

सर् सेतलवडने जब आनेकी अनिच्छा प्रदर्शित की तो मेरी और सिंघीजीकी इच्छा हुई कि हमें अब श्रीमुंशीजीको बुलाना चाहिये। उनके आनेसे केसके कामकी गति बढ़ेगी और उसका जल्दी निकाल होगा। सिवाय ये स्वयं संस्कृत भाषा आदि अच्छी जानते हैं और ऐतिहासिक संशोधनका भी इनको उत्कृष्ट ज्ञान है इसलिये इनकी उपस्थितिसे विषयका गोलमालपन भी बहुतसा मिट जायगा और क्लियर आर्ग्युमेंटका रास्ता साफ हो जायगा। पर, आणन्दजी कल्याणजीके प्रमुख प्रतिनिधि स्व० सेठ साराभाई डाह्याभाईका—जिनका सम्बन्ध सर् सेतलवडके साथ और और कारणोंसे भी बहुत घनिष्ठ था—आग्रह था कि जब तक श्रीमोतीलाल सेतलवड उपलब्ध हों तब तक अन्य किसीको नहीं बुलाना चाहिये। पर सिंघीजीकी आग्रह पूर्ण इच्छा रही कि यदि श्रीमुंशीजी मिल जाय तो पहले उन्हींको निश्चित करना ठीक होगा और इसके लिये मुझसे उन्होंने अनुरोध किया कि मैं खुद बंबई जाऊ और श्रीमुशीजीको उदयपुर ले आऊं। तदनुसार, आणन्दजी कल्याणजीके मैनेजरको साथ लेकर मैं बंबई आया और सर् सेतलवडकी ऑफिसमें बैठ कर उनसे परामर्श किया। उनकी इच्छा हुई कि पहले श्रीमोतीलालसे पूछ लिया जाय, क्यों कि उनसे इसबारेमें पहले कुछ बात चीत हो चुकी है। यदि वे न आ सकें तो फिर श्रीमुंशीजीको पूछना चाहिये। उन्होंने उसी समय श्रीमोतीलालको टेलीफोन किया और उनसे उदयपुर जानेके विषयमें बात चीत की। श्रीमोतीलालने जाना स्वीकार कर लिया। उस रातको सर् चिमनलालके मकान पर हम लोगोंकी मीटींग हुई और श्रीमोतीलालको उन्होने केसका सारा हाल समझाया और कहा की 'मुनिजी इस विषयमें बहुत "एक्सपर्ट" हैं सो तुमको सब बातोंमें इनसे बहुत कुछ सहायता मिलती रहेगी' इत्यादि। उसी दिन मुझे बंबईमें खबर मिली कि—दिगम्बर पार्टीने श्रीमुंशीजीको उदयपुर लाना निश्चित कर लिया है! अतः इनसे मिलना भी अब निरर्थक था।

उदयपुरमें श्रीमोतीलालजी सेतलवड

दूसरे दिन फ्रंटियरमेलसे हम श्रीमोतीलालजीको साथ लेकर उदयपुरके लिये रवाना हुए। सिंघीजीने जब यह सुना कि – श्रीमुंशीजीको हम अपने पक्षकी ओरसे ला न सके इतना ही नहीं वरन् वे सामनेवाली पार्टीकी ओरसे वहां आ रहे हैं, तब उनको बहुत बुरा लगा और वे हतोत्साहसे हो गये। एक तो यों ही बहुत दिनोंसे मामला अस्तव्यस्तसा चल रहा था और उसके लिये व्यर्थका ही बहुतसा खर्च हो रहा था, जिससे सिंघीजी उकता रहे थे। इसमें फिर उनकी इच्छानुसार कॉन्सल वगैरहका प्रबन्ध नहीं हो रहा था इससे उनकी बेचैनी और भी अधिक बढ़ी। मैंने उन्हें बहुतसी बातें समझाई और उनको कहा कि 'श्रीमोतीलालजी भी वैसे ही बडे बुद्धिमान् प्रसिद्ध वकील और बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं एवं सब बातोंमें बडे कुशल हैं; इसलिये हमारे केसमें कोई त्रुटि न आने पावेगी। और सामनेकी पार्टीकी ओरसे जो श्रीमुंशीजी आ रहे हैं वह भी एक प्रकारसे हमारे हकमें अच्छा ही है। क्यों कि वे स्वयं विद्वान् और इतिहासज्ञ हैं इसलिये फिजूलकी कोई बातोंमें वे अपना समय नष्ट न करेंगे, और हमारी दलीलोंको समझनेकी और उनका वास्तविक उत्तर देनेकी कोशीश करेंगे जिससे हमारा रास्ता जल्दी साफ हो जायगा और हमें उनके साथ झग-डनेमें एक प्रकारका आनन्दसा आयगा' इत्यादि।

रातको हम श्रीमोतीलालजीके साथ बैठे और करीब दो बजे तक केसकी बातोंका पुनरावलोकन करते रहे तथा उनको सब प्रमाण समझाये गये। वे बडी शीघ्रतासे अपने नोटस् तैयार करते गये और अनेक नये नये प्रश्न पूछते गये। दूसरे ही दिन कोर्टमें जब सुनवाई शुरू हुई तो श्रीमोतीलालजीने नये ही ढंगसे काम लेना शुरू किया और कमिशनको भी कई नये मुद्दे विचारनेकी सूचना दी। बंबई हाईकोर्टके एक बडे नामी वकील होनेसे तथा कानूनके पारगामी विद्वान् होनेसे उन्होंने कमिश-नकी कार्रवाईकी भी कडी समालोचना करनी शुरू की और कई अवास्तविक और अप्रासंगिक प्रमाणोंको उपस्थित करनेकी इजाजत देकर केसको किस तरह अनावश्यक लंबा चौडा बना दिया गया है इस विषयमें उन्होंने कोई दो घंटे बहस की, जिससे कमिशनके मेंबरोंको भी अपनी कुछ लघुतासी प्रतीत हुई। उन्होंने उस दिन कमि-शनको अपने केसके कुछ महत्त्वके मुद्दे सूचित कर दिये जिसमें उन्होंने कह दिया कि हमको अपने केसमें सिर्फ इन्हीं मुद्दोंके विषयमें कहना है और विचार करना है। कार्रवाईके खत्म होने पर शामको जब मकान पर हम लोग आये तो सिंघीजी ठीक प्रसन्नसे मालूम दिये और बोले कि – 'नहीं आदमी तो अच्छा होशियार मालूम देता है और मामलेको ठीक तरह संभाल लेगा ऐसी आशा होती है।' उस दिन रातको फिर हमारी मीटींग हुई जो दो बजे तक चलती रही। श्रीमोतीलालजीने कुछ नये मुद्दे उपस्थित किये जिनके विषयमें कुछ ग्रन्थोंमेंसे प्रमाण खोज निकालनेकी जरूरत थी। दूसरे दिन तो उनको पेश करना था। इसके लिये मुझे सारी रात जगना पडा। मैं अपने कमरेमें उन पुस्तकोंको टटोल रहा था और प्रमाणोंको इकट्ठा कर रहा था। मका-नमें मच्छड बहुत हो गये थे और वे बडे परेशान कर रहे थे। सिंघीजी तीन बजे उठ

फिर मेरे कमरेमें आये तो उन्होंने देखा कि मैं काम कर रहा हूं और मच्छड़ मुझे बुरी तरह सता रहे हैं। उसी समय अपने कमरेमें जा कर वे ५-७ अगरबत्ती ले आये और उनको सुलगा कर सारे कमरेमें खडे खडे इधर उधर उनको घुमाते रहें। कोई घंटे डेढ घंटे तक वे इस तरह करते रहें और मेरे पाससे मच्छडोंको दूर भगाते रहें। मैंने कहा 'बाबूजी, आप क्यों इतना कष्ट उठा रहे हैं? जाइये और सोइये। हमको तो ऐसी बातोंकी आदत पडी हुई है। हम तो सारी रात इसी तरह बैठ कर अपना काम करते रहेंगे।' उन्होंने कहा-'हम तो ३-४ घंटे खूब मजेमें सो लिये हैं और आप तो सारी रात इसी तरह बैठे बैठे काम कर रहे हैं। हमसे और कुछ नहीं बने तो हम इतनी सेवा तो करें' इत्यादि। सिंघीजीकी उस रातकी वह शुश्रूषा-वृत्ति और कार्यकी उत्सुकता मुझसे कभी न भूली जाय वैसी मेरे हृदयमें जमी हुई है। उनके जैसे धनिक, सुखशील और राजसी स्वभाववाले व्यक्तिके दिलमें ऐसी ज्ञानभक्ति और सेवावृत्ति हो सकती है, इसकी मुझे कभी कल्पना नहीं हुई थी। मैं उनके कथनको सुन कर मुग्धसा हो गया-और बहुत देर तक उनकी तरफ देखता रहा। मैंने देखा कि उनके मुखपर एक प्रकारकी प्रसन्नता और नम्रताकी प्रभा फैली हुई है और वे शान्त एवं सहज सन्तोषमें निमग्न है।

श्रीमुन्शीजीका उदयपुर आना

दूसरे दिन श्रीमुंशीजी भी दिगम्बर पार्टीके कॉन्सलके तौर पर वहां आ पहुंचे। उन्होंने भी आते ही कोर्टके काममें बडी चपलता पैदा कर दी और अपने पक्षके जो मुद्दे साबीत करने थे उनके विषयमें स्पष्ट निर्देश कर दिया। अभी तक जितने प्रमाण और पुरावे दाखिल किये गये थे और जिस ढंगसे उन पर विचार हुआ था उन सबको उन्होंने काट-छांट कर उनमेंसे कुछ महत्त्वके प्रमाणों पर ही विचार करना आवश्यक बतलाया और बाकी सबको निकाल अलग किया। इधर श्रीमोतीलालजी और उधर श्रीमुंशीजी जैसे बंबई हाईकोर्टके सबसे बडे प्रसिद्ध और अखिल भारतीय प्रतिष्ठावाले कानूनके पारगामी विद्वान् वहां उपस्थित होनेसे, स्टेटके सारे वातावरणमें और खास कर उस कमिशनके काममें बडी सजीवता और तत्परता उत्पन्न हो गई।

श्रीमोतीलालजी और श्रीमुंशीजी दोनों स्टेट-गेस्ट थे और स्टेटके गेस्ट हाउसमें ही वे ठहरे थे। दोनोंके कमरे पास-पासमें थे। हम लोग रातको ८ बजे अपने कॉन्सल श्रीमोतीलालजीसे परामर्श करनेके लिये और अगले दिनके प्रमाणों और दलीलोंकी चर्चाके लिये मीटींगके रूपमें वहां गेस्ट हाउसमें इकट्ठे होते। सामनेकी पार्टीवाले सज्जन भी उसी तरह श्रीमुंशीजीके साथ परामर्श करने एकत्र होते। व्यावसायिक कामकाजके खत्म होने पर, पहले ही दिन मैं श्रीमुंशीजीकी रूममें मिलने गया, तो देखा कि वे अकेले बैठे हुए अपने केसके ५००-६०० पेज उथला रहे है और उनमें कुछ तथ्य है या नहीं इसकी खोज कर रहे हैं। बोले-'मुझे तो इस केसके बारेमें इसके पहले एक अक्षरका भी पता नहीं था। बंबईसे आते गाडीमें कल रातको जो कुछ इन कागजोंमेंसे सार निकाल सका उसके कुछ फुटकर नोटस् कर लिये हैं और इसी परसे

मैंने अपनी आजवाली दलीलें तैयार की थीं। कागजोंके देखनेसे पता चलता है कि इसके पहले जो कारवाई हो गई है वह सब विना मतलवकी थी और केसका उपस्थापन ठीक ढंगसे नहीं किया गया है। हमारे पण्डितोंको (अर्थात् दिगम्बर पक्षवालोंको) अपने प्रमाणों आदिके विषयमें कोई ठीक जानकारी नहीं है और उनसे जो कुछ सवाल करता हूँ उसका वे ठीक उत्तर नहीं दे सकते।' मैंने श्रीमुंशीजीसे कहा—'मैं तो सिंघीजीके आग्रहसे बंबई खुद आपको अपने पक्षकी ओरसे बुलाने आया था पर सर् चिमनलालने श्रीमोतीलालजीको तय कर लिया इससे फिर मैं मिलने नहीं आया। परन्तु विधाताका योग देखिये कि आपका यहाँ आना निश्चित था इसलिये उसने हमारे सामनेकी पार्टीकी ओरसे आपको यहाँ उपस्थित कर दिया।' इत्यादि प्रकारकी गपशप कर हम अपने अपने स्थान पर पहुंचे।

दूसरे दिन कोर्टमें जब काम शुरू हुआ तो एक शिलालेखके वारेमें चर्चा चल पडी। यह लेख दिगम्बर पक्षकी ओरसे एक मुख्य प्रमाणरूपमें पेश किया गया था, पर लेखमें एक जगह ऐसी भद्दी गलती खुदी हुई थी जिससे लेखका हार्द कुछ भी समझमें नहीं आता था। मुझे तो उसकी चावी मालूम थी पर सामनेवालोंको उसकी कुछ कल्पना नहीं थी। इससे गलतीका लाभ उठा कर हमारे पक्षके कॉन्सलने उस पर खूब अपना बौद्धिक जोर वतलाया और श्रीमुंशीजीके संस्कृत ज्ञानकी खूब परीक्षा ली गई। उनके पण्डितोंकी बुद्धि तो कुण्ठितसी हो गई थी और मुंशीजी खूब ऊपर नीचे देख देख कर अपना पेलियोग्राफिकल (प्राचीन लिपिविषयक) ज्ञान रिवाइज कर रहे थे और मन ही मन हंस रहे थे। मुंशीजीके पास ही कमिशनके एक मेंवर (स्व०) श्री रतिलाल अंताणी वैठे हुए थे, जो अपने आपको प्राचीन लिपिका अच्छा ज्ञाता समझते थे। उन्होंने लेखके उस अंशको विल्कुल और ही ढंगसे पढा और कहा कि—'इसमें तो कोई महादेवके मन्दिरका उल्लेख मालूम देता है।' मुंशीजीसे रहा नहीं गया और वे मुझको लक्ष्य कर वोले कि—'मुनिजी! वताओ न यह क्या शब्द है? यों ही निकम्मा सर खराव कर रहा है।' इस पर श्रीमोतीलालजीने मुझे हाथसे दवा कर चुप रहनेका इशारा किया और वोले कि 'यहां पर नहीं बंबई जा कर पूछना, वहां बतावेंगे!' सुन कर सब हंस पडे।

श्रीमुंशीजीसे जेलमेंसे निकले वाद फिर मेरी कोई मुलाकात नहीं हुई थी सो इस प्रकार उदयपुरमें एक साथ रहनेका मौका मिल जानेसे हम दोनोंको बडा आनन्द आया और उसमें फिर सिंघीजीका मेल हुआ। इससे इतने दिन पहले जो उदयपुरमें खूब परेशानी उठानी पड़ी और मनको ग्लानि हुई वह दूर हो गई और हमारा समय एक प्रकारसे वडे आनन्दमें वीतने लगा। प्रायः रोज शामको एक साथ घूमने जाते और जेल-निवासके सह-स्मरण तथा भविष्यमें किसी साहित्यिक संगठनके विचार आदिमें अपना समय व्यतीत करते थे। कभी कभी सिंघीजी भी साथ हो लेते। उसी प्रसङ्गमेंसे सिंघीजीका भी श्रीमुंशीजीके साथ निकट मैत्रीका सूत्रपात हुआ जो आगे जा कर 'भारतीय विद्या भवन' को इस प्रकार अनन्य सहकार देनेके रूपमें परिणत हुआ।

केसके कामके समाप्ति

श्री मुंशीजीके आये बाद केशरियाजीके केसमें खूब तेजी आई और कोई ९-१० दिनमें ही सारी कार्रवाई खत्म हो गई। कोई ढाई-तीन महिने उदयपुरमें पडे रहनेसे बडी बे चैनी हो रही थी सो दूर हुई और केसका मामला पूरा होते ही वहाँसे रवाना होनेका प्रोग्राम तय हुआ।

सिंघीजीको भी कलकत्ते जानेकी बड़ी उतावली थी और उनको अपने कारोबारकी कितनी ही महत्त्वकी समस्यायें उन्हें विवश कर रही थीं। पर केशरियाजीका यह मामला एक प्रकारसे उन्हींके सर पर पड गया था, इसलिये इसका अन्त हुए विना वे वहाँसे खिसकना नहीं चाहते थे। इस मामलेमें जितना श्रम सिंघीजीने उठाया उतना और किसीने नहीं उठाया। बहुत कुछ समय और शक्तिके व्ययके उपरान्त उन्होंने आर्थिक व्यय भी काफी किया। कोई १० हजारके लगभग उनका वहाँ पर खर्च हुआ होगा। यदि सिंघीजी न होते तो न मालूम केशरियाजीका वह मामला किस तरह चलता और कैसा उसका स्वरूप होता।

इसका मतलब यह नहीं समझना चाहिये कि सिंघीजी तीर्थोंके झघडेके बारेमें कोई खास दिलचस्पी रखते थे या अन्यान्य सांप्रदायिक सेठोंकी तरह दिगम्बर-श्वेताम्बरकी पक्षापक्षीमें उनको आनन्द आता था। वे इस विषयमें बहुत निष्पक्ष थे और ऐसे झघडोंसे तो उन्हें एक प्रकारकी नफरत थी। केशरियाजीके मामलेमें वे इस तरह फँस गये उसका कारण खास शान्तिविजयजी महाराज थे। उन्होंने इस तीर्थके निबटारेके लिये उक्त रीतिसे जब अनशन कर लिया और इस मामलेको वैसा रूप दे दिया, तब उनकी तरफ विशिष्ट भक्ति होनेके कारण सिंघीजीको उस प्रवृत्तिमें योग देना पडा और फिर धीरे धीरे इस प्रकार केसका सारा मामला संभालनेका उनको फर्ज पडा। यह तो उनका खास स्वभावगत लक्षण था कि जिस कामको वे अपने हाथमें लेते उसको अपनी पूरी शक्ति लगा कर पूरा करते। जैसे वैसे काम करना या बीचमें ही उसे छोड देना यह उनकी प्रकृतिके सर्वथा विरुद्ध था।

उदयपुरके कुछ स्थानोंका निरीक्षण

उदयपुरमें रहते हुए हम दोनों आसपासके ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थानोंको प्रायः देखने जाया करते थे। एक दिन एकलिंगजीका स्थान देखने गये। आते हुए जरा देर हो गई थी और नागदाके पासकी घाटी पार करते अंधेरा हो गया था। घाटी चढ़ते चढ़ते मोटरमें कुछ खरावी हो गई और इसलिये वहां कुछ रुक जाना पडा। हम दोनों मोटरमें बैठे थे और ड्राइवर इन्जीनकी खरावी सुधार रहा था। इतने ही में बगलकी झाड़ीमेंसे एक बडासा शेर निकल आया और वह हमारे रास्तेमें कोई २०-२५ फुटके फासले पर सडकके वीचमें खडा हो कर, हमारी ओर टकटकी लगा कर देखने लगा। ड्राइवर बडा होंशियार था। वह एकदम कूद कर अपनी सीट पर बैठ गया और तेजदार बत्ती बना कर खूब जोरोंसे होर्न बजाने लगा। नशीवसे चक्करके घुमाते ही मोटर भी स्टार्ट हो गई। उसने बड़ी तेजीसे मोटर छोड दी। जैसी मोटर

शेरके नजदीक पहुंची कि शेरने लंबी छलांग मारी और वह हमारी मोटरके ऊपर हो कर पीछे की ओर कूद पडा। इतनेमें तो मोटर पूरी तेजीके साथ आगे बढ़ गई और शेर झाडीमें घुस गया। हम अपनी खुशनशीबी मनाते हुए और ड्राइवरकी होशियारीकी प्रशंसा करते हुए मकान पर पहुंचे। सिंघीजीने ड्राइवरको ऊपर बुलाकर उसे मिठाई वगैरह खानेको दी और फिर २१ रूपये बक्षीसके दिये।

वहां उदयपुरमें इस तरह केशरियाजीके मामलेमें उलझे रहने पर भी, उनका जो निजी शोख प्राचीन सिक्के, चित्र, शिल्पके नमूने–इत्यादिकका संग्रह करनेका था वह चालू था। नाथद्वारे आदिसे कई लोग पुराने चित्र आदि ले आते थे और यदि उपयोगी मालूम दिया तो सिंघीजी उनको योग्य मूल्य दे कर तुरन्त खरीद लेते थे।

मैं एक दिन घूमनेके लिये अकेला यों ही शहरसे ४–५ मीलके फासले पर बहुत ही एकान्त प्रदेशमें चला गया। वहां जंगलमें एक पहाडीकी खीणमें एक छोटासा शिवालय देखा जो बिल्कुल टूटा हुआ था पर उसके मण्डपका एक तोरण अखंड रूपसे खड़ा था। छोटासा नाजूक तोरण था जो सिर्फ ४ ही अखण्ड शिलाखण्डोंसे बनाया गया था पर उसका शिल्पकाम बहुत ही सुन्दर, आकर्षक और प्रमाणोपेत था। मैंने सिंघीजीसे आ कर उसका जिक्र किया तो वे उसे देखनेके लिये बडे उत्सुक हुए। पर मैंने कहा वहां जानेका मोटर आदिका कोई रास्ता नहीं मालूम देता और ४–५ मील पैदल जाना और फिर आना आपके लिये शक्य नहीं मालूम देता। तब वे बोले 'क्या आप हमको इतने कमजोर और अपंग समझते हैं? देखिये हमारी परीक्षा कर लीजिये हम चल सकते हैं या नहीं।' दूसरे ही दिन सवेरे नास्ता-पाणी कर हम दोनों उस जगहको देखने चल पडे। पथरीले और ऊंचेनीचे पहाडी भागको पार करते हुए हम वहां पहुंचे। सिंघीजीने मन्दिरके उस भग्नावशेष तोरणको बडे ध्यानसे देखा और वे बडे प्रसन्न हुए। बोले–'हमारा चलना बिल्कुल सार्थक हो गया। इस तोरणको देख कर तो मन होता है कि यदि हम इसे उठा कर कलकत्ता ले जा सकें तो उसके लिये हजार–दो हजार रूपया भी खर्चनेको हम तैयार हो जांय।' मैंने कहा–'यह तो इस मेवाड राज्यमें शक्य नहीं है; और ऐसे तो इस दरिद्र मेवाडमें हजारों मन्दिर जहां वहां टूटे फूटे पडे हैं जिनकी तरफ कभी कोई देखनेवाला भी नहीं है और जिनके उत्कृष्ट शिल्पका ग्रामीणोंके लडके पत्थर मार मार कर प्रतिदिन नाश करते रहते हैं।' इस तरहकी बातेंचीतें करते कोई १२ बजे हम वापस मकान पर पहुंचे और नहा-धो कर भोजन करने साथ बैठे। तब बोले कि 'कहिये हम चलनेकी परीक्षामें पास हुए या नहीं!' मैंने सचमुच ही देखा कि सिंघीजीको उसका कोई वैसा थाक नहीं मालूम दिया और रोजकी तरह अपना काम करते रहे।

सिंघीजीकी उदयपुरमें आर्थिक उदारता

सिंघीजीने उस तीर्थके मामलेमें जितना खर्चा वहां पर उठाया था उसका जिक्र तो ऊपर किया ही है। उसके उपरान्त भी संस्थाओं आदिको उन्होंने वहां कितना ही दान दिया था। उदयपुरकी सार्वजनिक शिक्षाविषयक सुप्रसिद्ध संस्था 'विद्या भवन' (डॉ॰ श्रीमोहनसिंहजी महेता द्वारा स्थापित) को एक हजारका दान दिया।

जैन बोर्डिंग हाउसको शायद दो-ढाई हजारका दान किया। महिला विद्यालयवालोंने, यहां पर मेरे हाथसे 'कलाभवन' का खातमुहूर्त कराया, जिसमें ५०० रूपये दिये। इस प्रकार और भी कितनी ही फुटकर रक़में उन्होंने यथायोग्य स्थानोंमें दानके रूपमें दीं। सिंघीजीका दान करनेका और खर्च करनेका दिल बहुत बड़ा था, पर वे सदा अपनी प्रसिद्धिसे प्रायः दूर रहते थे। किसीको जो कुछ देते थे उसका जिक्र प्रायः वे किसीसे नहीं करते थे। कोई खास प्रसङ्ग आ जाने पर ही उस बातका उल्लेख हो जाता था।

उस मामलेमें वहां पर, और भी कोई दो-चार बडे कहलानेवाले सेठ आते जाते रहते थे और उनमेंसे एक तो अपने आपको शान्तिविजयजी महाराजके वैसे ही भक्त मानते-मनाते थे। रसोडाका जो भारी खर्च सिंघीजीने वहां उठाया उसमें वे सेठ भी बराबर अपने नोकरोंके साथ खानापीना करते थे और सिंघीजीसे शुरूमें आग्रह भी करते थे कि-'आपको इस रसोडेके खर्चेमें हमको भी आधा हिस्सा लेने देना होगा' इत्यादि। सेठजीने सोचा होगा कोई दो सौ चार सौ रुपये खर्च आवेंगे सो हम भी उसमें नाम कमा लेंगे। पर जब देखा कि खर्चेकी तादाद तो बहुत बडी हो गई है- दो सौ चार सौकी जगह कई हजारने ले ली है; तब वे फिर कभी भूल कर भी इस बातको न निकालते थे और सिंघीजीको आतिथ्यका पुण्य बराबर देते रहते थे। उदयपुरसे चलते समय सिंघीजीने इस बातका यों ही मजाकमें मुझसे जिक्र कर दिया था।

उदयपुरसे चित्तोडको प्रस्थान

ज्यों ही कोर्टका मामला खत्म हुआ, हम सब वहांसे उसी दिन रवाना होनेको तैयार हुए। पर उदयपुरके जैनसमाजने कमिशनके मेंबरों एवं बाहरसे आये हुए वकीलों इत्यादिके साथ सिंघीजी आदिको एक चायपार्टी दी जिसमें श्रीमुंशीजी, श्रीमोतीलालजी आदि सब सम्मीलित हुए। दूसरे ही दिन हम वहांसे सब साथमें रवाना हुए। रातभर चित्तोडके स्टेशन पर ठहर कर, दूसरे दिन सवेरे चाय-दूध ले कर मैं, श्रीमुंशीजी और सिंघीजी तीनों जन इक्के कर चित्तोडका किला देखने गये। मैंने और सिंघीजीने तो पहले भी उस किलेको देखा था पर श्रीमुंशीजी साथमें थे इसलिये फिरसे देखनेमें और अधिक आनन्द आया। राणा कुंभाका कीर्तिस्तंभ देख कर हम लोगोंने परमार नृपति भोजदेवका वह शिवमन्दिर विशेष ध्यानसे देखा जिसमें अणहिलपुरके चौलुक्य नृपति कुमारपालका वि० सं० १२०७ का लेख खुदा हुआ है। पर उस मन्दिरके गर्भागारमें लकडी और बांस भरे पडे थे और कचरेका ढेर लगा हुआ था जिसको देख कर हमको बडी ग्लानि हुई। आगे चलते हुए चामुंडा-कालीका मन्दिर देख कर पद्मिनीके महल वगैरह देखे और फिर वहांसे जैन कीर्तिस्तंभको देख कर तथा ध्वंसावशिष्ट कुछ पुराने जैन मन्दिरोंको देख कर हम यथासमय स्थान पर पहुंचे।

नगरी नामक प्राचीन स्थानका निरीक्षण

मुंशीजी तो दोपहरकी गाडीसे बंबईके लिये रवाना हो गये पर मैं और सिंघीजी चित्तोडके पास ६-७ मीलके फासले पर 'नगरी' नामका एक पुराना स्थान है उसे देखने गये। मैंने ही सिंघीजीसे उस स्थान का परिचय दिया था और बताया था कि यह 'नगरी' वही इतिहास प्रसिद्ध 'माध्यमिका नगरी' है जिसका-

उल्लेख 'अरुणद् यवनो माध्यमिकाम्' इत्यादि उक्तिके रूपमें पातञ्जल महाभाष्यमें मिलता है और जो शिबिजनपदकी राजधानी थी। इसी माध्यमिकाके नाम परसे जैन श्वेतांवर संप्रदायके एक मुनिसंघकी पुरातन कालमें एक शाखा प्रसिद्ध हुई थी जिसका उल्लेख कल्पसूत्रकी स्थविरावलीमें 'मज्झिमा साहा' (माध्यमिका शाखा)के रूपमें किया हुआ मिलता है। इस स्थानमेंसे बहुत प्राचीन शिक्के भी मिले हैं जो इतिहासकी दृष्टिसे बडे महत्त्वके हैं' इत्यादि। इस कथनको सुन कर, सिंघीजी उस स्थानको देखनेके लिये बहुत उत्सुक हुए और बोले कि 'उसे देखे विना हम यहांसे नहीं जॉयगें।' मैंने भी उस स्थानको कभी आंखोंसे तो देखा नहीं था, सो मैं भी उसे देखनेके लिये वैसा ही उत्सुक था। पर वहां जाना बडा कठिन मामला था। मोटर वगैरहका कोई अच्छा साधन वहां उपलब्ध नहीं था। एक तांगावाला मिला जो बड़ी हिचकिचाहटके साथ बहुतसा किराया देने पर चलनेको राजी हुआ।

बात यह थी, कि वहां जानेका रास्ता बहुत ही खराब और भयंकर पथरीला था। तांगावालोंको भी जानेमें बडा कष्ट होता था और घोडेको एवं तांगेको–दोनोंको चोटें लगनेका खतरा था। पर हमको किसी तरह जाना था इसलिये उसे मुंहमांगा किराया दे कर हम दोपहरके दो-ढाई बजे चित्तोडके स्टेशनसे रवाना हुए। फ़ासला तो ६–७ मील ही का था पर वहां पहुंचनेमें हमें पूरे ढाई घंटे लगे। रास्तेमें तांगा उछल उछल कर चलता जाता था और हमारी कमर और कुल्होंकी हड्डियोंकी ठीक मरम्मत होती जाती थी। हरएक उछल-कूद पर हम दोनों तांगेके गद्दे परसे (जो कि नामका ही गद्दा था और हमारे नितंबकी चमडीको यों ही वह छील छील कर- मुलायम कर रहा था) एक वेंत उछल कर फिर उस पर जमते थे। सिंघीजीका अपनी जिंदगीमें ऐसे तांगे पर सफर करनेका यह शायद पहला ही मौका था। मैं उनकी ओर टकटकी लगा कर देखा करता था और वे मेरी ओर। जहाँ कहीं ऐसी खास उछल-कूदकी जगह आती तो तांगावाला बड़ी रहमदिलीके साथ कहता 'बाबूसाहब, जरा संभल कर बैठना। साला रास्ता बहुत ही खराब है। इस रास्ते तो आपके जैसा आदमी कभी कोई नहीं आया गया। यह तो जंगली भील लोगोंके आने-जानेका रास्ता है। वहां तो आप जैसे बडे आदमियोंके देखनेकी कोई चीज नहीं है। नाहक यों ही आप इतना कष्ट उठा कर वहां जा रहे हैं। यह तो आपकेसे शरीफ आदमीको देख कर मैं चला आया, नहीं तो कोई २५ रूपये भी दे तो मैं नहीं आता। कहीं घोडेका पैर टूट गया या तांगाका पैया टूट गया तो कितनी मुशीबत हो, इसका आप ही खयाल कर लीजिये'–इत्यादि कितनी ही बातें तांगेवाला करता जाता था और हम सुनते जाते थे। जहाँ कहीं बहुत ही खराब जगह आती तो वहां तांगावाला हमको नीचे उतरनेकी सलाह देता और हम उसका तत्काल अमल करते; इतना ही नहीं पर बहुत दूर तक पैदल ही चलना पसन्द करते। क्यों कि उससे कुछ हमको आराम ही मिलता था। तांगावाला भी हमको बहुत भले आदमी समझ कर हमारी प्रशंसाके फूल बिखेरे जाता था।

इस तरह हम नगरी पहुंचे। वहां जो कुछ दो-तीन पुरातनकालीन ध्वंसावशेष थे उनको देखा। हाथीवाडेके नामसे प्रसिद्ध खण्डहरके भीमकाय शिलाखण्डोंको देख कर

बहुत चकित हुए। 'आर्कियोलॉजिकल सर्वे' की रीपोर्टोंमें मैंने उस पुरातन स्थानका बहुत कुछ वर्णन पढा था इसलिये उन खण्डहरों आदिका दर्शन मुझे बहुत ही आल्हादक हुआ। सिंघीजीको भी उनको देख कर प्रसन्नता हुई और बोले कि 'आप यदि न होते तो यह स्थान देखनेका हमको कभी अवसर नहीं आता।' नगरीके खण्डहर बडी दूर दूर तक फैले हुए थे। समय होता तो हम इधर उधर सब जगह घूमते, पर सन्ध्याकाल निकट आ रहा था और उसी रास्तेसे हो कर फिर गुजरना था, इसलिये बडी शीघ्रताके साथ कुछ देख-दाख कर हम वापस फिरे। जगह जगह पर पुराने शिल्पके पत्थर और प्राचीन कालीन वडे आकारकी ईंटें दिखाई पडती थीं, जिनको देख कर सिंघीजीका मन उनकी तरफ आकृष्ट होता था और इच्छा हो जाती थी कि यदि इनमेंसे कुछ उठा कर ले जा सकें तो ले जांय। पर वैसी पत्थरकी चीजें कोई थोडी उठाई जा सकती थीं। तो भी वहांकी स्मृतिके लिये ३-४ वडे आकारकी पुरानी ईंटें जो एक जगह अखण्ड रूपसे हमारे देखनेमें आ गईं, हमने उनको उठा लीं और तांगेमें रख लीं। तांगावाला भी कहने लगा-'हजूर, ये बडी जूनी ईंटें हैं। पांडवोंके जमानेकी हैं। वह हाथीवाडा जो आपने देखा वह भी पांडवोंका बनाया हुआ है। पांडवोंके हाथी वहां पर बान्धे जाते थे और जो बड़े बड़े पत्थर आपने वहां देखे, वे रामचन्द्रजीने जो लंका जानेके समय समुद्रका पुल बान्धा था उसके हैं। पाण्डवोंने इस जगह एक राक्षसको अपने कब्जेमें किया था और उसने ये सब पत्थर लंकाके समुद्रसे यहां ला कर यह हाथीवाडा बनाया था' इत्यादि। वापस लौटते समय हम दोनों प्रायः आधेसे अधिक रास्ता पैदल ही चल कर आये। क्यों कि तांगेका मजा हम खूब चख चुके थे और उससे हमारी हड्डियोंकी अच्छी कसरत हो चुकी थी। परंतु एक अपूर्व एवं ऐतिहासिक स्थानके देखनेका अनपेक्षित मौका मिला जिसके आनन्दमें उस कष्टने हमको अधिक व्यथित नहीं होने दिया।

चित्तोडसे बामणवाडा तीर्थको

रातकी गाडीसे चितोडसे रवाना हो कर हम अजमेरकी ओर चले। प्रातःकाल सूर्योदयके करीब गाडी रूपाहेलीके स्टेशन पर पहुंची, जो मेरी जन्मभूमि है। मैं तो बहुत देरसे जग चुका था और रूपाहेलीके नजदीक आने पर, खिडकीमेंसे मुंह बाहर निकाल कर, इधर उधर उत्सुकभावसे देख रहा था। बचपनकी स्मृतिके कई धुंधले, चित्र सिनेमाकी फिलमकी तरह, आंखोंके सामनेसे गुजर रहे थे। मेरा भावुक हृदय, अपनी जननीका कुछ दुःखद स्मरण कर विह्वलसा हो गया और मेरी आंखोंमेंसे आंसूकी दो-चार बूंदें टपक पडीं। इतने ही में सिंघीजीकी भी नींद खुल गई और मेरी ओर देख कर वे जरा चिंतितसे हो गये। पूछा-'आप कुछ खिन्नसे क्यों दिखाई दे रहे हैं? क्या बात है?' मैं संभल गया। बोला-'कुछ नहीं'। उन्होंने खिडकीमेंसे मुंह निकाल कर बहार देखा; छोटासा स्टेशन है "रूपाहेली" नाम है। बडी उत्सुकतासे पूछा-'क्या यह वही रूपाहेली है जो आपकी जन्मभूमि है?' मैंने कहा-'हां वही।' वे बडी तेजीसे सीट परसे उठ खडे हुए और डिब्बेका दरवाजा खोल स्टेशनकी ओर गोरसे देखने लगे। बोले-'गांव किधर आया?' मैंने कहा 'वह तो पीछे रह गया

है–कोई २–३ मीलके फासले पर है।' कहने लगे 'हमको आपने जगाया क्यों नहीं? हम भी आपकी जन्मभूमिके, दूरसे ही सही, दर्शन तो कर लेते।' गाड़ीने सीटी दे दी और वह चल पडी। उनकी इच्छा तो हुई कि मुझसे अपने बचपनकी कुछ बातें पूछें, पर मेरा मन वैसा न देख कर वे शान्त रहे और अपने मुंह पर कपडा डाल कर बनावटी नींदसे कुछ फिर सो गये। आध घंटे बाद फिर बैठ खडे हुए। मैं भी हाथ मुंह धो कर स्वस्थ हो गया था और वे भी बाथरूममें जा कर तैयार हुए। इतनेमें हम अजमेर पहुंच गये।

अजमेरसे गाड़ी बदल कर हम अहमदाबाद जानेवाली गाडीमें बैठे और दोपहरको सज्जनरोड स्टेशन (सीरोही स्टेट) पर उतर गये। वहांसे बामणवाडा तीर्थस्थान पहुंचे, जहां पर श्रीशान्तिविजयजी महाराज विराजमान थे और सिंघीजीकी पूजनीया माताजी भी उस समय वहीं उन महाराजकी सेवामें थीं।

श्रीशान्तिविजयजी महाराजकी सेवामें

यथासमय हम दोनों मुनिमहाराजकी सेवामें उपस्थित हुए। महाराजने मेरा उसी उदयपुरकी तरह, बडा आदर किया और अपने हाथसे आसन बिछा कर मुझे पासमें बिठाया। सुखसाता विषयक बडे प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछा और बोले–'बहुत अच्छा हुआ आप आ गये। मैं उदयपुर जाने आनेवालोंसे हमेशां आपके कुशल समाचार पूछता रहता था और आपने उदयपुरमें जो शासनकी सेवा की है उसकी मैं रोज़ अनुमोदना करता था' इत्यादि। फिर सिंघीजीने उदयपुरका सारा किस्सा संक्षेपमें कह सुनाया और मेरे विषयमें कहा कि 'वहां जो कुछ हम काम कर सके और अपने पक्षको अच्छी तरह उपस्थित कर सके उसका सारा श्रेय मुनिजीको है। अगर ये न होते तो हमारा केस बिल्कुल फैल होता'–इत्यादि। सुन कर शांतिविजयजी महाराज और भी अधिक प्रसन्न हुए और पासमें जो भक्त लोग बैठे थे उनके सामने मेरी अत्यधिक प्रशंसा करने लगे। यद्यपि उनकी प्रशंसाकी कोई सीमा न थी; पर उसे सुन कर मैं तो मन-ही-मन उद्विग्न हो रहा था। क्यों कि मैं जानता था कि वे जो प्रशंसा कर रहे हैं वह सिर्फ उनके सौजन्य और सरल स्वभावकी सूचक है। उनकी प्रशंसाके पीछे मेरी कार्यशक्तिका कोई वास्तविक ज्ञान तो था नहीं और अज्ञानमूलक प्रशंसासे प्रफुल्लित होनेवाला मैं वैसा बुद्धु जीव हूं नहीं। उनकी देखा-देखी और उन्हींके शब्दोंको ईश्वरीय वाक्य माननेवाले कई बनिये भी उसी तरह कहने लगे। तब तो मुझे कुछ क्रोधसा भी आने लगा। परन्तु क्या किया जाय–योगीराजके सामने बैठे थे। उनकी आज्ञाके विना उठ कर चलना भी असंभव था और फिर वे बेचारे भोलेभावसे और बडे प्रेमसे ऐसा कर रहे थे, इसलिये उसकी अवज्ञा करना भी अविनय था। सो मैं नीचा मुंह करके विना कुछ बोले चाले आधे घंटे तक वह सब सुनता रहा। आखिरमें, जब वहां कुछ ५–१० और भक्तजन गुरुदेवकी जय बुलाते हुए पहुंच गये और कौओंकी तरह चारों तरफ कॉ कॉ शुरू हुई, तब मैं धीरेसे उनकी आज्ञा ले कर और फिर पीछेसे सेवामें उपस्थित होनेकी इच्छा प्रदर्शित कर, उठ खडा हुआ। महाराजने तो

फिर उन नवागंतुक भक्तोंको मेरा परिचय देना शुरू किया और कहने लगे 'जानते हो ये कौन हैं? बडे भारी विद्वान् हैं, जैन इतिहासका जाननेवाला इनके जैसा और कोई नहीं है' इत्यादि। पर मैं वहांसे एकदम सटक कर अपने डेरे पर आ पहुंचा।

कुछ देर बाद सिंघीजी भी आ गये। मैंने कहा 'गुरुमहाराज बहुत ही प्रशंसा करते हैं, जिसे सुन कर मैं तो एक प्रकारसे मनमें त्रस्तसा हो जाता हूँ; और फिर इन मूर्ख बनियोंके सामने, जिनको न गुरुमहाराजके कथनका ही कोई रहस्य समझमें आता है और जो न बेचारे मुझको ही कुछ समझ सकते हैं। खैर, यदि आप इजाजत दें तो मैं तो आज ही रातकी गाडीसे अहमदाबाद चला जाना चाहता हूं। गुरुमहाराजसे मिलना हो ही गया है और आप जा कर उनसे कह दीजिये कि वे मुझे जानेकी आज्ञा दे दें।' इस पर सिंघीजी बोले कि—'आपके चले आने बाद गुरुमहाराजने हमसे तो एक और आज्ञा की है, कि यहां पर एक सभा बुला कर, आपको मानपत्र दिया जाय और साथमें ५-१० हजारकी थेली भी समर्पित की जाय। आज रातको और भी दो-चार मुख्य मुख्य व्यक्तियोंको बुलानेको और इस बातका खास विचार करनेको कहा है। सो हमको तो गुरुमहाराजकी आज्ञाके अनुसार चलना होगा।' इत्यादि। सुन कर मैं तो और भी अधिक हैरान हो गया। मैंने सिंघीजीसे कहा—"आप मेरा स्वभाव जानते हैं। गुरुमहाराज तो बेचारे भोले हैं। उनकी तो भावना रहती है कि हम जिन-विजयजीका कुछ सत्कार करावें जिससे इनका मन प्रसन्न हो। पर मेरा मन ऐसी बातोंसे प्रसन्न नहीं होता। मैं केशरियाजीके इस अप्रिय झमेलेमें पडा वह केवल आपके कारण। नहीं तो मुझे इन तीर्थोंके झगडोंसे क्या मतलब। फिजूल ही समाजके हजारों रूपये वकील-बेरिस्टरोंको लुटाये गये, और इसका नतीजा तो कुछ आनेवाला है ही नहीं। गुरुमहाराजके दबाव और प्रभावके वश हो कर ये बनिये यों चाहे हजारों रूपये खर्च करनेको तैयार हो जांय, पर इनसे वास्तविक समाजोपयोगी और ज्ञानोपयोगी कार्यके लिये कुछ खर्च करनेको कहा जाय तो ये एक पाई भी देनेको राजी नहीं। उदयपुरमें ही पिछले साल गुरुमहाराजने, प्रसङ्गवश मेरी उपस्थितिको लक्ष्य कर, लोकोंसे कहा था कि 'जैन धर्मके प्राचीन इतिहासके शिलालेख आदि जो साधन हैं उनका संग्रह करानेका और छपवाने आदिका काम कराना चाहिये।' तब मैंने कहा था कि—'उदयपुरके यतिवर्य श्री अनुपचन्दजीने मेवाडके ऐसे बहुतसे जैन शिलालेख इकट्ठे किये हैं; यदि उनको कुछ मदद दे कर यह काम कराया जाय तो बहुत अच्छा काम हो सकता है' इत्यादि। पर किसीने उसके लिये एक पैसा भी देनेकी इच्छा प्रदर्शित नहीं की और फिर गुरुमहाराज चुप हो गये। यह है इनकी गुरुमहाराजके विचारोंके समझनेकी शक्ति। सो मेहरबानी करके आप इस झंझटमें बिल्कुल न पडें; और मैं तो आज ही रातकी गाडीसे अहमदाबाद जाऊंगा, इसलिये स्टेशन पर जानेके लिये वाहनकी व्यवस्था कीजिये।" सिंघीजी मेरे स्वभावसे परिचित थे, वे कुछ न बोले और नौकरको गाडीके लिये तजवीज करनेको कहा। मैं झटपट संध्याकालका भोजन कर, सिंघीजीसे बिदा ले गाडीमें बैठा और स्टेशन पर पहुंचा। दूसरे दिन प्रातःकाल अहमदाबाद, अपने स्थान पर उपस्थित हुआ।

सिंघीजी कुछ दिन वहीं रहे और फिर श्री शान्तिविजयजी महाराजकी आज्ञा मिलने पर वे कलकत्ता गये।

मेरा शान्तिनिकेतन छोडना

उदयपुरमें रहते हुए ही शान्तिनिकेतनके निवास आदिके विषयमें हमने निर्णय कर लिया था कि ग्रन्थमालाके कार्यकी दृष्टिसे और मेरे निजके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी वह स्थान उपयुक्त नहीं है, इसलिये अब उसे सर्वथा छोड कर ग्रन्थमालाका कार्यालय अहमदावाद ही में स्थिर करना ठीक होगा।

तदनुसार मैं सन् ३५ के जुलाईमें, शान्तिनिकेतनका सब सामान उठा देने और उसकी उचित व्यवस्था करनेके निमित्त आखिरी वार वहां पर गया। पिछले ४ वर्षके निवासके कारण एवं छात्रावासके निमित्तसे वहां पर बहुत कुछ सामान जमा हो गया था। वासन-वर्तन आदि छोटी छोटी चीजोंके अतिरिक्त, लकडीके तख्तपोश, रेकस्, डेस्क और अनाज भरनेके बडे बडे टीन आदि सैंकडों ही रूपयोंका ओर ओर भी भारी सामान था, जिसकी क्या गति की जाय? क्या उसे कलकत्ता भेज दिया जाय? या और कुछ व्यवस्था की जाय? – इसके बारेमें मैने सिंघीजीसे पत्र लिख कर पूछा तो उन्होंने जवाबमें (ता. २९-७-३५ को) लिखा कि –

... "सविनय प्रणाम आपका कृपापत्र आज मिला, हाल मालूम हुआ। बोर्डिंगका कोई सामान कलकत्तेमे काम आने जैसा नहीं है। फिजुल खर्चा करके यहां भेजनेमें कोई फायदा नहीं है। बनारस पंडितजीके उपयोगमें आने लायक कोई चीज हो तो उसे वहां भेज दें। बाकी सब वहीं 'शान्तिनिकेतन' को या किसी खास व्यक्तिको आवश्यक हो तो उन्हें दे कर खत्म कर दें।"

सिंघीजीकी इस सूचनानुसार, जो सामान शान्तिनिकेतन आश्रमको देने लायक था वह तो उसे दे दिया और बाकी का अन्यान्य व्यक्तियोंको – जिनमें आचार्य श्रीक्षिति-मोहन सेन आदि कई सज्जन सम्मीलित थे – समर्पित कर दिया। इस तरह वहांका सब काम समाप्त कर फिर मैं कलकत्ते गया।

सिंघीजीके निवासस्थानका परिवर्तन

सिंघीजीने भी प्रायः इसी समय अपना निवास स्थान बदला। कई वर्षोंसे वे लोअर सर्क्युलर रोड पर किरायेकी कोठीमें रहते थे। अब वे बालीगंजमें अपनी निजकी बडी भारी विशाल वाडीमें रहनेको आये। इस बाडीमें उन्होंने अपने परिवारके रहनेके लिये जुदा जुदा मकान बनानेकी दृष्टिसे वर्षोंसे प्लान बना रखे थे। परंतु तुरन्त वे सब मकान तैयार हो सके वैसा नहीं था और उनकी इच्छा अब उसी वाडीमें आ कर रहनेकी तीव्र हो गई थी – सो एक काम चलाउ मकान अपने तीनों पुत्रोंके रहनेकी दृष्टिसे, बडी शीघ्रतासे नया बनवा लिया; और दूसरा जो एक पुराना बडा मकान उस बगीचेमें था उसको सुधरवा कर, और उसके आगेको हिस्सेको, नये ढंगसे, आधुनिक डिझाइनका आकार दे कर, अपने रहने लायक करवा लिया। मैं जब उक्त रीतिसे शान्तिनिकेतनके सामानकी व्यवस्था कर रहा था, तब मुझे मालूम हुआ कि

सिंघीजी आज कल इस नये मकानकी फेरबदलीमें व्यस्त हैं। पर मुझे शान्तिनिकेतनको आखिरी सलाम किये बाद उनसे मिलना जरूरी था और एक खास विशेष बात उनको प्रत्यक्षमें कहने लायक थी, इससे मैंने पत्र लिख कर समयकी सुविधाके विषयमें पूछा और नये स्थानका पता आदि मंगवाया। उत्तरमें उन्होंने लिखा कि–

"आपके आनेके लिये हमारा समय सदा ही अनुकूल है। वहांकी व्यवस्था करके आप यहां आ जॉय। स्थानकी संकीर्णता अब तक जरूर है। परन्तु दो चार दिन किसी सुरत चला लिया जायगा। यहांका पोस्टल एड्रेस ऊपर लिखा है। टेलीग्राफिक एड्रेस वही Dalbahadur है। टेलीफोन नं. "पार्क ८६" है। आपके आनेकी सूचना मिलने पर मोटर हवड़ा स्टेशन पर भेज देंगे। किसी कारण मोटर न पहुंच सका या आप सूचना न दे सकें, तो हवड़ा स्टेशन पर ९ या १० नम्बर BUS में बैठ कर बालीगंजका टिकट लेनेसे वगैर बदली किये वही BUS आपको इस मकानके दरवाजे पर उतार देगा। और यहा सब कुशल हैं, आपका कुशल लिखियेगा।"

मेरा कलकत्ता जाना

मैं जब कलकत्ते गया तो देखा कि सचमुच ही मकानकी संकीर्णता है। मकानमें चारों ओर अभी काम चल रहा है और कोई चीज ठीकसे जमाई नहीं गई है। तो भी मेरे ठहरनेके लिये एक थोडीसी जगह ठीक कर रखी थी। सारा दिन तो प्रायः सिंघीजीके कमरे ही में रहना होता था और हम आपसमें अपनी तरह तरहकी बातें चीतें किया करते थे। पहले तो उहोंने वह सारी बाडी जो करीब कितने ही एकर जितनी जमीन घेरे हुई थी और जिसकी किंमत उस समय भी ५–७ लाख रूपयेकी होती थी, घूम फिर कर बताई। फिर उसमें किस जगह क्या क्या बनवानेका इरादा है उसका प्लान दिखाया। फिर उन मकानोंके वे विस्तृत प्लान भी यथावकाश खोल खोल कर दिखाते रहे जो उन्होंने वर्षोंसे सोच सोच कर बनवाये थे। उन्हींमें उस मकानका प्लान भी शामिल था जिसमें उन्होंने अपने जीवनमें संग्रह की हुई वे सारी पुरानी चीजें म्युजियमके रूपमें स्थापित करनेका उनका ध्येय था। मकान सब भारतीय स्थापत्यके नमूनेके रूपमें बनवानेका संकल्प था।

फिर एक दिन बोले–'हमारी इच्छा तो यह है कि आप भी यहीं आ कर रहें और यहीं बैठ कर 'सिंघी जैन ग्रन्थ माला' का कार्य किया करें। हम आपके लिये भी अलग स्वतंत्र छोटासा मकान बना देंगे जिसमें आप, और जब पण्डितजी आवें तब वे भी, अपनी एकान्त साधना किया करें और हमारी जब इच्छा हो तब हम भी आ कर आपके पास बैठ जाया करें।' फिर उठ कर वह मकान कहां पर, किस ढंगसे बनाया जाय, इसका भी दिग्दर्शन करानेके लिये, उस विशाल बाडीका वह हिस्सा मुझे प्रत्यक्ष बतलाया।

खैर, इस प्रकारकी अनेक बातें हमारी रोज होती ही रहती थीं, पर इस बार एक विशेष बात करनेका भी प्रसंग मुझे प्राप्त हुआ था, जो सिंघीजीके कुटुम्बमें सामाजिक दृष्टिसे सुधारवादकी भावनाका अंकुरोद्गम करनेवाला बना। इस प्रसङ्गने मुझे सिंघी-जीके कुटुम्बमें और भी विशेष निकटताका स्थान प्राप्त कराया।

श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीके विवाह-सम्बन्धका प्रस्ताव

इस प्रसङ्गकी अन्यान्य सब बातें तो व्यक्तिगत हो कर, सिंघीजीकी अपेक्षा, उनके ज्येष्ठ सत्पुत्र श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजी और मेरे बीचके स्नेहसम्बन्धके साथ घनिष्ठता रखती हैं। पर सिंघीजी सामाजिक विचारोंमें कैसे प्रगतिशील भावनावाले थे और उधर बंगालमें वसनेवाले जैनसमाजमें वे एक कैसे सुधारप्रिय व्यक्ति थे इसका विशिष्ट परिचय इस प्रसङ्ग परसे मिलता है। इसलिये इसका उल्लेख यहां पर किये विना सिंघीजीके साथके मेरे ये स्मरण संपूर्ण नहीं बन सकते।

प्रसङ्ग यह था – सिंघीजीके बडे चिरंजीव श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीकी धर्मपत्नीका कुछ महिनों पहले स्वर्गवास हो गया था। इससे उनका पुनः विवाह-सम्बन्ध कहीं होना निश्चित था। हम लोग जब उक्त प्रकारसे केशरियाजीके मामलेमें उदयपुरमें थे तब आणन्दजी कल्याणजीकी पेढीके एक प्रमुख प्रतिनिधि सेठ प्रतापसिंह मोहोलाल भाई भी प्रसङ्गोपात्त वहां आते जाते रहते थे। उन्होंने श्री राजेन्द्रसिंहजीकी धर्मपत्नीके स्वर्गवासके समाचार वहां किसीसे सुने, इसलिये उनके मनमें स्वभावतः ही यह इच्छा हुई, कि यदि संभव हो सके तो, वे अपनी एक पुत्री बहन सुशीलाका – जो उस समय विवाह योग्य हो रही थी और जिसके सम्बन्धके विषयमें सेठ प्रतापसिंह भाई प्रयत्नशील थे – श्रीराजेन्द्रसिंहजीसे सम्बन्ध करनेका प्रस्ताव करें। प्रतापसिंह भाईको मालूम था कि मेरा स्नेहसम्बन्ध सिंघीजीके साथ बहुत घनिष्ठ है, इससे उन्होंने मेरे द्वारा यह प्रस्ताव उपस्थित करनेका मनमें सोचा। उदयपुरसे मैं जब अहमदाबाद पहुंचा तो एक दिन सेठ प्रतापसिंह भाई मेरे पास आये और उन्होंने अपने ये विचार प्रकट किये। पहले तो मैं सुन कर बडे विचारमें पड गया। क्यों कि ऐसी बातोंसे मेरा कभी कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। मैंने कभी किसीके व्यावहारिक जीवनकी कोई बातमें रस नहीं लिया। सिंघीजीके साथ मेरा जो स्नेहसंबन्ध था वह केवल साहित्य विषयको ले कर था। इसके अतिरिक्त उनके या उनके कुटुबके व्यावहारिक जीवनका मुझे कुछ भी पता नहीं था। मैं यह सामान्य ढंगसे जानता था कि बंगालमें वसनेवाले – खास कर मुर्शिदाबादी कहलानेवाले – जैन कुटुंब, सामाजिक व्यवहारमें बहुत ही संकीर्ण होते हैं। गुजरातके जैन समाजकी तरह वहां पर, अभी तक सामाजिक सुधारकी कोई हवा नहीं पहुंची है। मुर्शिदाबादवाले सिवा अपने समाजके अथवा मारवाडी समाजके, कहीं विवाह-सम्बन्ध करते हों या कर सकते हों, इसकी मुझे पूरी शंका थी। सो श्रीप्रतापसिंह भाईका उक्त प्रस्ताव सुन कर पहले तो मैंने उनसे यों ही कह दिया कि 'इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता और मेरा उनके साथ इस प्रकारका कोई सम्बन्ध नहीं है।' पर सेठ नो बहुत अनुभवी, बडे व्यवहारचतुर और दुनियादारीके पूरे निष्णात रहे, सो कहने लगे कि – 'आप यों ही सिंघीजीको लिखिये तो सही। लिखनेमें क्या हर्ज है। यह तो एक गृहस्थके सामान्य व्यवहारकी बात है। हम लोग तो ऐसी बातें सदा ही किया करते है। अपनी सन्तानके विवाह-सम्बन्धमें हमको तो बीसों जगह प्रयत्न करना पडता है। यदि उनको पसन्द नहीं होगा तो वे ना लिख देंगे। इससे हमको कुछ बुरा थोडा ही लगनेवाला है। हमारा और उनका वैसा कोई सम्बन्ध नहीं है

जिससे हम सीधा ही उनको लिखे सकें' इत्यादि। इस पर मैंने प्रतापसिंह भाईको कहा कि–'पत्रमें तो मैं ऐसी कोई बात लिखना उचित नहीं समझता, पर कुछ दिन बाद कलकत्ते मुझे जाना है, सो मिलने पर प्रत्यक्षमें मैं आपका सन्देशा उनसे कह दूंगा।' वही यह खास बात थी जो इस समय मुझे सिंघीजीसे कहनी थी। अवसर पा कर मैंने उनको उपर्युक्त सब बात कह सुनाई।

सिंघीजी इस प्रस्तावको सुन कर एकदम विस्मितसे हो गये। चि० श्रीराजेन्द्रसिंहजीके विवाहका प्रश्न तो उनके मनमें घुल ही रहा था और शायद बंगाल तथा मारवाडमेंसे कुछ जगहोंसे कन्याके बारेमें पूछ-ताछ भी चल रही थी। परन्तु गुजरातमेंसे और वह भी अहमदाबाद जैसे जैन समाजके सबसे बडे केन्द्रस्थानमेंसे, और फिर उसमें भी सेठ प्रतापसिंह जैसेके बहुत बडे प्रतिष्ठित घरानेकी ओरसे, कन्या देनेके बारेमें प्रस्ताव हो, यह तो उनके स्वप्नमें भी कभी आने जैसी कल्पना नहीं थी। इसके पहले, एकाध अपवादके सिवा, ऐसा कोई वैवाहिक सम्बन्ध गुजरातके और बंगालके प्रतिष्ठित जैन कुटुम्बोंके बीचमें कभी हुआ ही नहीं था। सिंघीजी इस विचारमें बहुत देर तक निमग्न रहे। बोले–'हम मांसे जा कर एक दफह इसका जिक्र करेंगे फिर आगे कुछ सोचेंगे।'

सिंघीजी अपनी मांके बहुत ही भक्त पुत्र थे। उनके जैसे मातृभक्त मैंने बहुत कम देखे। उनकी मां भी वैसी ही पुत्रवत्सल एवं बडी चतुर, धर्मनिष्ठ और कार्यनिपुण बुद्धिमती सन्नारी थी। सारे कुटुम्ब पर उनका बडा प्रभाव था। उनकी इच्छाके विरुद्ध एक पैर भी कोई खिसक नहीं सकता था। सब कुटुंबी जन उनकी अनुमति ले कर ही वैसा कोई विशिष्ट काम करते थे। एक राजराणीकी तरह उनका कुटुंब पर तेज छाया हुआ था। सिंघीजी जैसे सर्व कर्ताधर्ता भी मांको सूचित किये विना किसी महत्त्वके कामको नहीं करते थे। छोटीसे छोटी बात भी वे मांके आगे जा कर कहते थे और जिसमें मांकी सम्मतिकी अपेक्षा हो उसे जाननेकी इच्छा व्यक्त करते थे। उन्होंने यथावसर मांके पास जा कर यह बात की। मां भी इस अकल्पित प्रस्तावको सुन कर विस्मयमें गर्क हो गई। बोली–'गंभीर प्रस्ताव है, बहुत गहराईके साथ, सभी तरहसे इसका विचार करना चाहिये।' दो-तीन दिन तक उन मां बेटेका इस पर विचार होता रहा। कुटुंबके बहुत निकटके और भी बहन-बहनोई आदि जो स्वजन थे उनसे भी कितनीक चर्चा की गई। कौटुंबिक प्रश्न था और बहुत नाजूक प्रश्न था। समाजके साथ भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध था। समाजमें ऐसा विवाहसम्बन्ध रूढ नहीं था। कुछ भी अनुचित न होने पर भी, रूढिप्रिय समाजके अगुआ इसका विरोध कर सकते हैं और समाजमें किसी प्रकारका बखेडा खडा कर सकते हैं। ऐसे शंकास्पद बखेडेके काममें पडना ठीक है या नहीं, एक तो यह प्रश्न उनके सामने था। दूसरा प्रश्न था गुजरातके और बगालके रीतरीवाजोंमें कुछ अन्तर होनेका। बंगालके खानदान कुटुंबोंमें स्त्रियोंके लिये पडदेका बडा कडा रीवाज अभीतक प्रायः वैसा ही चला आ रहा है। पर गुजरातमें पडदेकी अब किसीको कल्पना भी नहीं है। गुजरातका स्त्रीसमाज बहुत कुछ प्रगतिशील है और गुजरातकी लडकियां मारवाड-बंगालकी अपेक्षा बहुत ही बन्धनमुक्त हैं। ऐसी परिस्थितिमें गुजरातकी कन्याका बंगालके

कुटुंबमें मेल मिलना संभव है या नहीं ? अगर वैसा मेल नहीं मिला, तो पीछेसे कुटुंबमें क्लेश पैदा होनेकी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है। तो जान बूझ कर ऐसी परिस्थितिकी आशंकाके कारणमें पैर रखना उचित है क्या ?

सिंघीजीने इस परिस्थितिका विचार मेरे सामने भी प्रदर्शित किया और बोले – 'हमारा निजका विचार तो इसमें कोई प्रतिकूल जैसा नहीं है। न हम इस रूढ मतके पक्षपाती हैं कि गुजरातके साथ ऐसा कोई विवाह सम्बन्ध अभी तक नहीं हुआ इसलिये हमें भी नहीं करना चाहिये; और न हम व्यक्तिगत रूपसे पडदेके ही पक्षमें हैं। परन्तु हम सामाजिक बखेडेसे दूर रहना चाहते हैं और इसमें हमें कुछ उस बखेडेके होनेकी आशंका है' इत्यादि।

इस पर मैंने उनसे कहा कि – 'यदि और सब तरहसे यह सम्बन्ध करना आपको उचित जंचता हो, तो केवल रूढ मतके भयसे ही आप वैसा न करना चाहें, तो वह एक प्रकारकी आपकी बडी भारी कमजोरी कहलायगी। आप तो सुधारप्रिय व्यक्ति हैं। समाजमें बहुतसी रूढियां ऐसी चल रही हैं जिनसे समाजको कोई लाभ नहीं प्रत्युत बहुत कुछ हानि है। उनको दूर करनेका प्रयत्न करना विचारशील व्यक्तियोंका कर्तव्य है। आप तो जैन श्वेतांबर कॉन्फरन्सके अध्यक्ष भी बन चुके हैं और उस कॉन्फरन्सने कई दफह ऐसे प्रस्ताव किये हैं, जिसमें सूचित किया गया है कि – जैन समाजमें एकता और विशालता स्थापित करनेके निमित्त, जहां पर धर्मकी दृष्टिसे कोई बाधा न आती हो, वहां पर परस्पर वैवाहिक और भोजन व्यवहारका सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये – इत्यादि। यदि आपके सम्मुख ऐसा प्रसंग उपस्थित है और आप उसमें किसी प्रकारका अनौचित्य नहीं समझते, पर उलटा अच्छा समझते हैं, तब आपका तो कर्तव्य हो जाता है कि समाजके रूढिप्रिय कुछ लोग विरोध भी करें तो उस विरोधकी उपेक्षा कर, सुधारके मार्गमें एक पैर आगे बढावें। आपके जैसे समर्थ व्यक्तिके ऐसा करने पर समाजके अन्य सामान्य स्थितिके सुधारप्रिय जन भी कुछ कदम आगे बढनेकी हिम्मत कर सकते हैं।' इस प्रकारका बहुतसा विचार-विनिमय दो-एक दिन तक होता रहा।

आखिरमें फिर उन्होंने अपना निश्चित अभिप्राय देते हुए कहा कि – 'इस बातका विशेष विचार आप खुद चि० राजेन्द्रसिंहसे करें, यह मुझे अच्छा मालूम देता है। क्यों कि वे अब अपना हिताहित समझने और उसके मुताबिक काम करनेके लिये पूर्ण स्वतंत्र हैं। पहली शादीका सब व्यवहार करना हमारा कर्तव्य था। परंतु अब तो उन्हींको सब अधिकार प्राप्त होने चाहिये। हम तो सलाह मात्र देनेके अधिकारी हो सकते हैं। आप स्वयं उनके स्वभाव, शील, व्यक्तित्व आदिसे अच्छी तरह परिचित हैं ही। आप उनको उचित परामर्श भी दे सकते हैं और वे भी आपके आगे हमसे कहीं अधिक दिल खोल कर बातें कर सकते है। हमारा निजका उस कुटुंबके साथ कोई परिचय नहीं है और नाही हमें वहांके व्यवहारका कुछ ज्ञान है। यदि चि० राजेन्द्रसिंहको कुटुंब, कन्या आदि सब बातें पसन्द होंगीं और उनको यह सम्बन्ध अभीष्ट होगा, तो हमको उसमें कोई आपत्ति नहीं होगी। फिर इधरका समाज कुछ कहेगा-करेगा तो उसको हम संभाल लेंगे।'

इधर मेरा और श्रीराजेन्द्रसिंहजीका भी परस्पर यथोचित वार्तालाप होता ही रहता था। उन्होंने इस विषयमें सब प्रकारका ठीक विचार कर, पीछेसे कुछ सूचित करनेका मुझसे कहा। मैं सिंघीजीके साथ ग्रन्थमाला आदिके वारेमें विचार-विनिमय करके वहांसे बनारस हिंदुयुनिवर्सिटीमें पण्डितजीसे मिलता हुआ, अहमदाबाद पहुंचा।

*

शान्तिनिकेतनसे ग्रन्थमालाका कार्यालय उठा कर अब अहमदाबादमें उसे रखनेका निश्चय हुआ। अभी तक १ प्रबन्धचिन्तामणि (मूल), २ पुरातनप्रबन्धसंग्रह, ३ प्रबन्धकोष, ४ विविधतीर्थकल्प और ५ लाईफ ऑफ हेमचन्द्राचार्य ये पांच ग्रन्थ छप कर प्रकाशित हुए थे और दूसरे ५–६ ग्रन्थ छप रहे थे। बनारसमें भी पण्डितजीके तत्त्वावधानमें कुछ ग्रन्थोंके तैयार करने–करवानेकी व्यवस्था की गई।

प्रायः दो-एक महिने बाद ता. २२. १०. ३५ का लिखा हुआ सिंघीजीका नीचे मुआफिकका पत्र मुझे मिला–

"सविनय प्रणाम. आपका पत्र नहीं सो दीजियेगा और सेठ प्रतापसिंह भाईकी लडकीके साथ चि० राजेन्द्रसिंहके सम्बन्धके वारेमें, ये उस लडकीको देखने अहमदाबाद आवेंगे। आपका अभी वहां रहना होगा या नहीं, सो इस चिट्ठीके मिलने पर कृपा करके तार द्वारा समाचार लिखियेगा। आपका तार मिलने पर ये यहासे रवाना होंगे।

और हम कल सुवह चार वजे पावापुरीके लिये मोटरसे रवाना होंगे, मगसर वदि ३ तक वापस आ जायेंगे।

और पूज्य माजीकी तबियत कुछ नरम है. ओर सव कुशल है, आपका कुशल लिखियेगा।

मि. कार्तिक वदी ११ रातको १० वजे।   आपका विनीत

बहादुरसिंह

इस पत्रकी सूचनानुसार मेरा तार मिलने पर, चि० राजेन्द्रसिंहजी अहमदाबाद आये। उनके साथ सिंघीजीका यह छोटासा पत्र था–

... "सविनय प्रणाम. चि० राजेन्द्रसिंह आते हैं, इनके वारेमें आपको पहले सव लिख चुके हैं। और इनके साथ हस्तलिखित 'शालिभद्रचरित्र' व Mathura की किताव जरूर भेज दीजियेगा। यहा हमेशा लोग देखनेको चाहते हैं। और आपका कुशल लिखें।"

श्री राजेन्द्रसिंहजी कुछ दिन अहमदाबाद रह कर, फिर बामणवाडामें श्रीशान्तिविजयजी महाराजके दर्शन कर, वे वापस कलकत्ते गये। सिंघीजीका उनके पहुंचने पर ता. ११. १२. ३५ का लिखा मुझे यह पत्र मिला–

"सविनय प्रणाम. चि० राजेन्द्रसिंह यहा राजीखुशीसे पहुंचे जिसका समाचार आपको मिल गया है। उनके साथ हस्तलिखित पुस्तक १ व छपी हुई पुस्तक १ पहुंची।

सम्बन्धके वावदमे सव वातें माल्रम हुई। वाद उसके आपका पत्र उनके नामका आया वो भी देखा।

आप कृपा करके सेठ प्रतापसिंह भाईसे कह दें कि–हम लोग आपसमें यहा सलाह ठीक करके जो कुछ तै होगा, उनको final कह देगे। ज्यादह देर नहीं करेंगे। आपका कुशल लिखियेगा और यहा योग्य कार्यसेवा लिखियेगा।"

इसी बीचमें श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीका विवाह-सम्बन्ध वहां होना निश्चित हुआ और ता. १ फेब्रुआरी इ. स. १९३६, के मंगलमय मुहूर्तमें, सेठ प्रतापसिंह भाईकी सुशील पुत्री बहन सुशीलाके साथ अहमदाबादमें, योग्य समारंभपूर्वक, विवाह कार्य सानन्द संपन्न हुआ।

सिंघीजीको हृदयकी बिमारी

जनवरी ही में सिंघीजीको हृदयकी वडी सख्त बिमारी हो गई और बडी मुश्किलसे वे उस बिमारीमेंसे पार हुए। इसके कारण वे अपने पुत्रके विवाहकार्यमें भी यत्किंचित् योग न दे सके। इस बिमारीने उनकी जीवनीशक्तिको बहुत ही दुर्बल बना दिया और एक प्रकारसे वे सदाके लिये अस्वस्थसे बन गये।

मैं अहमदाबादमें रह कर ग्रन्थमालाका काम किये जाता था। इसी बीचमें देवानन्दाभ्युदय, प्रभावकचरित्र, भानुचन्द्रचरित्र, जैन तर्कभाषा आदि ग्रन्थ मुद्रित हो कर प्रकाशित हुए और कई नये ग्रन्थोंकी प्रेस कापी आदिका काम होता रहा। दो तीन वर्ष तक सिंघीजीसे मिलना तक न हुआ। पत्रव्यवहार भी ४ – ६ महिनोंमें एकाध बार होता था।

सन् १९३८ के जूनमें पण्डितजी श्री सुखलालजीको एपेन्डीसाईटका कठिन रोग हो गया जिसके लिये मेरा बम्बई आना हुआ और सर हरकिसनदास हॉस्पिटलमें उनका ऑपरेशन कराया गया। शुभोदयसे पण्डितजीको आराम हो गया। इसके समाचार सिंघीजीको जब मैंने लिखे तो वे बडे सचिन्त हुए और पण्डितजीकी पूरी तरहसे परिचर्या आदि करानेका उन्होंने मुझसे बडे सद्भावके साथ बहुत ही अनुरोध पूर्वक लिखा।

मेरा पुनः बम्बई निवास और भारतीय विद्याभवनकी स्थापना

मैं इस तरह पण्डितजीकी परिचर्याके निमित्त, उक्त हॉस्पिटलमें था, तब एक दिन श्रीमुंशीजी – जब कि ये बम्बईकी कॉंग्रेस गवर्नमेंटके होम मिनिस्टरके माननीय पद पर आरूढ थे – हॉस्पिटलकी विजीटके लिये शायद चले आये। पण्डितजीके कमरेमें जाने पर इन्हें मालूम हुआ, कि मैं आज कल यही बम्बईमें हू, तो इन्होंने मिलनेकी इच्छा प्रदर्शित की। दूसरे दिन (जुलाई ता. १८को) सवेरे इन्होंने अपनी मोटर भेजी और मैं इनसे मिलने गया। सेठ मुंगालालजीने दो लाख रूपये, किसी एक विशिष्ट और उच्च प्रकारके विद्याध्ययनके निमित्त, दान किये हैं और उसके लिये कोई 'पुरातत्त्वमन्दिर'के ढंगकी संस्था स्थापित करनेकी योजना ये सोच रहे हैं एवं उसमें मेरे संपूर्ण सहकार की ये आशा रखते हैं – इस विषयकी बातें-चीतें हुई। नासिक सेंट्रल जेलमें जब हम साथमें रहते थे तब, बम्बईमें एक ऐसी ही कोई संस्था स्थापित करनेके मनोरथ कभी कभी जो किया करते थे, उसकी याद भी इन्होंने दिलाई और अनपेक्षित रीतिसे अब उसके लिये ऐसा सुयोग उपस्थित हो गया है तो उसको सफल करनेकी कोई स्थायी योजना हमें बनानी चाहिये और एक साथ रह कर अब कुछ काम करना चाहिये – इत्यादि प्रकारके विचार इन्होंने प्रदर्शित किये।

श्री मुंशीजीके ये विचार सुन कर मुझे बडा अकल्पित आनन्द हुआ। इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा, सर्वविद्यास्पर्शिनी विद्वत्ता, अद्भुत कार्यप्रवणता, समर्थ संयोजनाशक्ति, सतत साहित्यानुराग और अपने साथियोंके साथ तादात्म्य साधनेकी अकृत्रिम तत्परता – आदि गुणोंको लक्ष्य कर मेरे मनमें विश्वास हुआ कि यदि ये इस तरह इस कार्यमें दत्तचित्त हो गये तो ऐसी संस्थाके निर्माणमें जरूर बहुत अच्छी सफलता मिल सकती है।

परन्तु, मैं तो अपना लक्ष्य 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के पीछे स्थिर कर चुका था, इसलिये इस संस्थाके निर्माणमें श्री मुंशीजीको मैं अपनी कितनी सेवा दे सकूंगा इसका मुझे उस समय कोई खयाल नहीं था। सो मैंने उस समय तो कुछ सामान्य रूपसे अपनी परिस्थिति विदित कर, जिस तरह हो सकेगा उस तरह अपना यथा-योग्य सहयोग देते रहनेकी इच्छा प्रदर्शित की। पण्डितजीको ठीक होने पर मैं इनको अहमदाबाद ले गया। वहां कुछ समय रह कर वे फिर बनारस हिंदु युनिवर्सिटीमें, अपने कार्यस्थान पर गये। श्री मुंशीजीके इस बीचमें मुझ पर कई पत्र आ चुके और शीघ्र ही मुझे बंबई आनेका इन्होंने आग्रह किया। चूंकि ग्रंथ मालाका कार्य भी बंबईमें रहनेसे अधिक वेगसे होता रहेगा और साथमें श्री मुंशीजीको भी, नई संस्थाके निर्माणमें यथायोग्य अपना सहयोग दे सकूंगा, इस विचारसे मैंने बंबईको अपना मुख्य निवासस्थान बनानेका विचार किया।

अगष्ट ता. ३ को मैं बंबई पहुंचा और माटुंगामें किंग सर्कल पर एक मकान किरा-ये पर रख कर, वहां रहना निश्चय किया। श्री मुंशीजीके साथ बैठ कर 'भारतीय विद्या भवन' की योजना तैयार की गई और उसका कार्यालय भी प्रारंभमें माटुंगा ही में खालसा कालेजमें स्थापित करना निर्णीत हुआ। मैंने यह सब अपनी प्रवृत्ति सिंघी-जीको ता. ६ सप्टेम्बरको एक विस्तृत पत्र लिख कर ज्ञात की। इसके उत्तरमें ता. १५. ९. ३८ को उन्होंने नीचे दिया हुआ वैसा ही विस्तृत पत्र मुझे लिखा।

Calcutta 15. 9. 38

श्रद्धेय श्री जिनविजयजी,

सविनय प्रणाम. आपका पत्र ता. ६ का यथासमय मिला. पढ कर आनन्दित हुवे। सिरीजके प्रकाशनके बारेमें पहले बनारसमें और अब बम्बईमे जो व्यवस्था आपने की और जिसका पूरा विवरण आपने लिखा सो मालूम हुवा। ठीक है. खर्च एक मुस्त कुछ ज्यादे भी लग जायगा मगर कुछ पुस्तकें जल्दी निकल जायगी तो अच्छा होगा। यहां भी कई स्कॉलर पूछते रहते हैं, कि और और पुस्तकें कब निकलेंगी ?

और माननीय मि मुंशीजीकी सस्थाविषयक स्कीमकी पुस्तिका मिली। आपके पत्रसे भी पूरा विवरण ज्ञात हुवा। यह स्कीम बहुत ही सराहनीय है। ऐसे कामोंमें तो दिल तोड कर काम करनेवालोंकी आवश्यकता है। स्कीमकी योजना करना idialistic आदमीयोंके लिये कोई मुश्किल नहीं। रूपये भी प्राय. मिल जाया करते हैं। मगर कभी असफलता देखनेमे आती है तो एक तो उसमें काम करनेवालोंमें "प्राण" का अभाव और दूसरे ऐसे कामोंसे लाभ लेनेवालोंका अभाव। लेकिन इसमें आप और मुंशीजी जैसे उत्साही पुरुष जुट गये है इससे इसमें सफलता प्राप्त होना अवश्य है।

हमको इस बातका तो पूरा भरोसा है कि आप इस प्रवृत्तिमें सहयोग देने पर भी ग्रंथ-मालाके काममें किसी प्रकारकी शिथिलता नहीं आने देंगे। परन्तु उत्साहके वश सिर पर कार्य भार ज्यादह ले कर स्वास्थ्यभंग न हो जाय इस बातका हमेशां खयाल रखनेके लिये हमारा अनुरोध है।

मुंशीजी हमें याद करते हैं और मिलनेकी इच्छा रखते हैं – जान कर खुशी हुई। उनसे मेरा प्रणाम कहियेगा। मिलना तो कभी सयोगवश होगा तब ही होगा। कारण उनका कलकत्तेसे और हमारा बम्बईसे विशेष सम्बन्ध न होनेसे ज्यादा आने जानेका मौका नहीं आता।

श्रद्धेय पण्डितजीकी तबियत अब ठीक है और दो-तीन दिनमें अहमदावादसे बनारस जायंगे जान कर बडी प्रसन्नता हुई। एकाएक उनके बीमारीकी खबर पा कर हम लोगोंको इतनी अधिक चिन्ता हुई थी कि कुछ लिख नहीं सकते। यह तो हम लोगोंका, जैन समाजका और देशका सौभाग्य कहना होगा कि इस दफे इस असाधारण विपत्तिसे उनकी प्राणरक्षा हुई।

और पूज्य माताजी और हम ता. २१ को यहांसे निकल कर मांडोली जा रहे हैं। जाना तो सीधे रास्ते देहली हो कर ही होगा। बम्बई होते हुए जाना तो तब ही बन सकता था जब हम अकेले होते। वहां दो-तीन महिने रहनेका प्रोग्राम है। मगर हम अकेले दिवाली पर १० – १५ रोजके लिये कलकत्ता आनेका इरादा करते हैं। आपसे मिले बहुत दिन हो गये इसलिये मिलनेको दिल चाह रहा है। इसके अलावा आगमादि तथा कथा-वार्तादिक ग्रन्थ इस ग्रन्थमालामें निकालना या नहीं आदि आवश्यक बातें भी करनेकी है। मौसम भी उस वक्त अच्छा है। यदि आपको किसी प्रकारकी असुविधा न हो तो उस वक्त एक दफे आप कलकत्ते आ जांय तो अच्छा होगा।

और हमारा स्वास्थ्य श्रीगुरुदेवकी कृपासे अब प्रायः पूर्ववत् ठीक हो गया है, परन्तु सतर्क रहना पडता है। आपके स्वास्थ्यके तर्फ हमेशां ध्यान रखते रहियेगा जिससे साहित्यकी, समाजकी और देशकी सेवा ज्यादेसे ज्यादे बन पडे।

चि. राजेन्द्रसिंह हमारे साथ जा रहे हैं। माडोलीमें २ – ३ रोज ठहर कर अहमदावाद जा कर अपनी स्त्री और लडकेको ले कर कलकत्ते जायंगे। चि. वीरेन्द्रसिंह और उनकी बहु मांडोलीमे करीब १॥ महीनासे हैं और अभी कुछ रोज वहीं रहेंगे। सं० १९९५, आश्विन वदि ६

आपका विनीत

बहादुरसिंह

इस पत्रके पढनेसे मालुम होगा कि 'भारतीय विद्या भवन' की योजना और स्थापना का सिर्फ प्रारंभिक परिचय ही मैंने जब सिंघीजीको लिख भेजा तो उसे देख कर वे इसके प्रति कैसे सहानुभूतिवाले और इसकी सफलताके लिये कैसे आशावाले हो गये थे। उनकी इच्छानुसार उस वर्षके डीसेम्बर (सन् १९३८) में मैं कलकत्ते गया और कुछ दिन तक उनके साथ रहा। इस समय उनके संग्रहमें जो मुगल, राजपूत और कांगरा स्कूलके सैंकडों ही फुटकर चित्र थे उनको मैंने ठीक व्यवस्थित करनेका प्रयत्न किया और आल्बमके रूपमें उन्हें सजाया। सिंघीजी भी इस काममें बराबर

अपना योग देते थे और चित्रोंके विषय और परीक्षण आदिमें अपनी प्रवीणताका परिचय कराते थे। इस संग्रहको ठीक करते समय यह भी निर्णय किया गया कि इनमें जो उत्तम और विशिष्ट प्रकारके चित्र हैं, उनके कुछ संग्रह, क्रमशः सिंघी जैन ग्रन्थमालामें प्रकाशित किये जांय। ऐसा ही विचार शिक्कोंके संग्रहके केटेलॉगके बारेमें भी किया गया।

ग्रन्थमालाके स्टॉकको कलकत्तेसे हटानेका निर्णय

ग्रन्थमालाकी छपी हुई पुस्तकोंका जो स्टॉक अभी तक कलकत्तेमें सिंघीजीके वहां रखा जाता था उसे अब वहां न रख कर अहमदाबाद भेज देना निश्चित हुआ। कलकत्तेमें उन पुस्तकोंके रखने की कोई अच्छी व्यवस्था न थी और वहां रखनेका कोई अर्थ भी न था। पुस्तकोंके विक्रय वगैरहकी सब व्यवस्था करना मेरे ही जिम्मे थी इसलिये सिंघीजीकी इच्छा हुई कि जहां मेरा रहना हो और जहां पर मैं सरलताके साथ उनकी व्यवस्था कर सकूं, वहीं वह स्टॉक रखा जाय। पर इसके साथ ही मेरे आगे यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि–अहमदाबादमें भी इन सब पुस्तकोंको कहां पर रखा जाय। मेरा रहनेका जो स्थान है वह छोटासा है और अपनी आवश्यकताके अनुरूप है। ग्रन्थमालाके ग्रन्थ ज्यों ज्यों छपते जांयगें त्यों त्यों उनका स्टॉक बढता जायगा। उसके लिये पर्याप्त जगह कैसे प्राप्त करनी होगी? इसके समाधानके लिये सिंघीजीने कहा–'आप ५–७ हजार रूपये खर्च कर कोई दो-एक बडे कमरे अपने मकानमें और नये बना लीजिये। क्यों कि जब हमें ग्रन्थमालाका काम केवल चालू ही नहीं रखना है पर इससे भी अधिक बढाना है, तो फिर इसके रखनेकी व्यवस्था आदि तो अवश्य करना ही होगा।' कितनी उदारता, कितनी विशाल दृष्टि और कितना साहित्यानुराग! सिंघीजीका यह कथन सुन कर कुछ देर तक तो मैं मौन रहा और फिर बोला–'अभी फिलहाल इस स्टॉकके रखने जितनी जगह तो मकानमें हैं। आगे स्टॉकके बढने पर देखा जायगा।'

बम्बईमें नवीन स्थापित 'भारतीय विद्या भवन'के विषयमें भी बहुतसी बातें हुई और उसमें मेरा सहयोग किस प्रकारका है और वह सहयोग 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'के कार्यमें बाधक न हो कर उलटा किस तरह साधक हो सकता है इस बारेमें जो मेरी कल्पना थी वह उनको दी गई। क्यों कि सिंघीजीको भय था कि कहीं मैं इस नूतन संस्थाके कार्यभारमें फंस कर ग्रन्थमालाके कार्यमें मन्दगति न हो जाऊं। उन्होंने मेरी कल्पनाका प्रोत्साहन किया और मैं सन्तुष्ट हो कर उनसे विदा हुआ।

इसके बाद ग्रन्थमालाकी दो-एक पुस्तकें और तैयार हुई तो उनके पुट्ठेपर जिस प्रकारका पीला–केशरिया रंगका कागज लगाना, प्रारंभ ही से निश्चित किया था वह युद्धके कारण बाजारमें मिलना कठिन हो गया। तब मैंने अगर उसीके रंग-ढंगका मिलता-जुलता कोई कागज न मिले तो फिर दूसरी जातिका कागज लगाना ठीक होगा या नहीं इस विषयमें उनसे पत्र लिख कर पूछा। क्यों कि उनका इस विषयमें बहुत ध्यान रहता था और पुस्तकोंके गेट-अप इत्यादिके बारेमें वे खास दिलचस्पी लेते थे, यह मैंने ऊपर पहले ही सूचित किया है। इसके उत्तरमें ता. ३.३.३९ का लिखा हुआ उनका नीचे मुआफिक पत्र मिला।

"सविनय प्रणाम. आपका पत्र ता. २६. २. ३९ का मिला। पुस्तकका पार्सल भी मिला। 'साहित्य संशोधक' में हरिगुप्तका उल्लेख देखा। वह अंक रख लिया है। गुप्त शिक्कोंके बारेमें हमारा Catalogue तैयार करेंगे तव काम आयगा। ग्रन्थमालाका काम अच्छी तरह चल रहा है यह जान कर पूर्ण सन्तोष हुवा। यहां रखी हुई पुस्तकोंके अहमदावाद भेजनेका प्रवन्ध शीघ्र करा देंगे।

सिरीझके कवरपेजके कागजका रंग वदलनेके पक्षपाती हम नहीं है। हमें केशरिया रंगसे कोई मोह नहीं है। मगर जो रंग पहलेसे व्यवहार करने लग गये हैं उसीको कायम रखनेसे उसकी एक विशिष्टता रहेगी। दूरसे देख कर ही लोक पहचान जायंगें कि यह "सिंघी सिरीझ" है। और इन्हीं वातोंको सोच विचार कर अपने केशरिया रंग पसन्द किया था। उस वक्त भी दूसरे दूसरे फेशनेवल रंग मिलते थे परन्तु कई बातोंको ध्यानमें रखते हुए पुराने फेशनका "केशरिया बागा" ही इसके लिये पसन्द किया गया था। हां रंग यही या इससे मिलता जुलता रख कर जात या quality वदल दिया जाय तो कोई हर्ज नहीं। यह सव जिल्दके कागजके लिये है, अन्दरके मेटरके लिये तो जिस ग्रन्थमें जैसा अच्छा हो वैसा दिया जा सकता है।

पू० माजीकी तबियत वैसी ही है। सारे शरीरमें दर्द रहता है। उन्होंने आपको प्रणाम लिखनेको कहा है। हमारी तबियत ठीक ही चल रही है। और सब अच्छे हैं। चि. राजेन्द्र-सिंह त्रिपुरी कॉंग्रेसमें जायंगें वहांसे शायद वंवई जाय। आप अगर त्रिपुरी आये तो वहां, नहीं तो बंवईमें वे आपसे मिलेंगे। और आपकी तबियत ठीक रहती होगी, लिखियेगा।"

आपका विनीत–**बहादुरसिंह**

इसके बाद, ता. २९.४.३९का लिखा हुआ उनका निम्नगत पत्र मिला, जिसमें कलकत्तेसे ग्रन्थमालाका जो सारा स्टॉक अहमदाबाद भेजना निश्चित हुआ था उसके विषयके समाचार थे।

"सविनय प्रणाम. आपका कृपापत्र अक्षयतृतीयाका यथासमय मिला।

ग्रन्थमालाकी सब पुस्तकें आपके पास भेज देनेके लिये चि. राजेन्द्रसिंहसे कहा हुआ था, मगर इन दिनोंमें उनको कई दफे बहार जानेके कारण तथा और और कामोंमें व्यस्त रहनेके सबब वो इस कामको करा नहीं सके। आज हम खुद सब पुस्तकें निकलवा कर धूपमें दिलवा कर साईझ माफिक पेकिंग केसका आर्डर दे दिया है। पेकिंग केस आ जानेसे अपने सामने पेक करवा कर तीन–चार रोजके अन्दर रवाने करा देंगे। आपका रहना तव तक वहां हो जव तो ठीक है, नहीं तो हम अहमदावाद रेल्वे स्टेशनका बुक करके रेल्वे रसीद आपको वम्वई भेज देंगे। आप फिर अहमदावादमें जिनको भेजना हो भेज कर पुस्तकें रखनेकी व्यवस्था करवा दीजियेगा। हमने यहां हरेक पुस्तककी पचास-पचास कापियां रख ली हैं। अव जो जो पुस्तकें तैयार होती जांय उनकी ५०–५० कापी यहां भेजनेकी कृपा कीजियेगा।

कवरके लिये केशरिया कागज नये जातका आपने भेजा वो बिल्कुल ठीक है। Stiff Cover के उपर चिपकानेके लिये तो इतने मोटे कागजकी जरूरत नहीं इससे पतला ही शायद ठीक रहेगा। Paper Cover वालेमें यह ठीक रहेगा–फिर जैसा आप उचित समझें।

पंडितजीके यहां आनेकी बात तो Middle of March से चल रही है, न मालूम कब आवेंगे।

पू० माजीने प्रणाम लिखवाया है। कुटुंबके और सब भी सविनय प्रणाम कहलाते हैं। हमलोग मजेमें हैं आपका कुशल समाचार बीच बीचमें देते रहियेगा। यहां योग्य कार्य-सेवा लिखियेगा।"

आपका विनीत—बहादुरसिंह

मेरे स्वास्थ्यकी शिथिलता

बम्बईमें रहनेसे ग्रन्थमालाके कार्यमें अधिक प्रगति होने लगी। प्रेस वहीं होनेसे प्रुफोंका आना-जाना अधिक शीघ्रतासे होने लगा और इससे ग्रन्थोंकी छपाई-का काम पहलेकी अपेक्षा अधिक वेगसे चलने लगा। इधर 'भारतीय विद्या भवन'-का कार्य भी यथेष्ट प्रगति कर रहा था। यद्यपि मैंने उसके बाह्य कार्यकी कोई विशिष्ट जिम्मेवारी अपने ऊपर नहीं ली थी, तो भी उसके अन्तरंग काममें तथा ग्रन्थोंके संपादन आदिके काममें, मुझे यथेष्ट योग देना पडता ही था। 'भारतीय विद्या' नामक संशोधनात्मक हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिकाके संपादनका सब काम प्रारंभसे मुझे ही अपने हाथमें लेना पडा था। तदुपरान्त 'भारतीय विद्या ग्रन्थावली' अन्तर्गत कुछ ग्रन्थोंका संपादन भी मैंने शुरू किया था। अधिकारके रूपमें नहीं पर सहकारके रूपमें भवनकी और और सब बातोंका भी मुझे प्रतिदिन खयाल रखना पडता था।

इसी बीचमें, उदयपुरमें होनेवाले 'राजस्थान साहित्य सम्मेलन'के प्रथम अधिवेशनके अध्यक्षके रूपमें, और पीछेसे उसकी समितियोंमें भाग लेनेके निमित्त, वारंवार राजस्थानमें जाने-आनेके कारण एवं अन्य साहित्यिक अन्वेषणके निमित्त समय समय पर होनेवाले प्रवासादिके कारण, मेरे स्वास्थ्यमें बहुत कुछ शिथिलता दिखलाई देने लगी। बीच-बीचमें कुछ बीमारियां भी सताने लगीं। निरंतर एक जैसा वर्षोंसे बैठे बैठे काम करनेके सबबसे कमर भी बेचारी बेकारसी होने लगी। इससे अब ये सब काम मन ऊपर अपना भारभूत प्रभाव बताने लगे। इधर ज्यों ज्यों ग्रन्थमालाका काम बढता जाता था और उसके ग्रन्थ छप छप कर जमा होते जाते थे त्यों त्यों उनको संभालना, उनकी रक्षाका प्रबन्ध करना, उनकी विक्री आदिकी व्यवस्था करना और उसके आयव्ययका हिसाब रखना इत्यादि प्रकारके कामका बोझ भी मन पर बढता जाता था। सिंघीजीने यह सब जिम्मेवारी, मेरे ही ऊपर छोड रखी थी। वे तो सिर्फ ग्रन्थमालाके कार्य निमित्त जितना भी खर्चा हो उसके भेज देनेके सिवा और ग्रन्थोंकी अधिकाधिक प्रसिद्धिके सिवा और किसी बातमें हस्तक्षेप करना नहीं चाहते थे। इधर उनका भी शरीर शिथिलसा रहा करता था और बीच-बीचमें हृदयकी बीमारी आदिका प्रकोप होता रहता था। इससे ग्रन्थमालाकी भावी व्यवस्थाका खयाल मुझे सदा चिन्तित रखने लगा। जब कभी मेरा स्वास्थ्य कुछ अधिक खराब हो जाता, तो बन्धुवर पण्डितजीका यही आग्रह हुआ करता कि अब किसी तरह ग्रन्थमालाके कामको समेट लो और जो ग्रन्थ छप रहे हैं उन्हें पूरे कर आगेका काम बन्ध कर दो। (पण्डितजीका यह आग्रह तो आज भी वैसा ही चालू है।)

इन सब कारणोंसे बीचमें मैंने बहुत बडे अर्से तक सिंघीजीको कोई पत्र तक नहीं लिखा और अपनी प्रवृत्तिके विषयमें उन्हें कुछ भी ज्ञात नहीं किया।

भारतीय विद्या भवनके साथ ग्रन्थमाला संलग्न कर देनेका विचार

'भारतीय विद्या भवन'की प्रवृत्ति और स्थिति श्री मुंशीजीके सतत प्रयास और विशिष्ट प्रभावके कारण दिन प्रतिदिन उन्नति करती जाती थी और पिछले तीन-चार वर्षोंमें आर्थिक एवं संगठनकी दृष्टिसे उसने अच्छी दृढभूमि प्राप्त कर ली थी। मुंशीजी कभी कभी मुझसे प्रेरणा किया करते थे कि 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'को यदि भवनके साथ संलग्न कर देनेका आप प्रयत्न करें तो इससे भवनकी प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठा और भी अधिक बढेगी और आपको भी कुछ भावी निश्चिंतता प्राप्त होगी। मेरे दिलमें भी कभी कभी ऐसा विचार आता रहता था। कोई वर्ष डेढ-वर्ष इस विचार-मन्थनमें व्यतीत हो गया। फिर जब मेरा निश्चय हो गया कि ग्रन्थमालाको भवनके साथ संलग्न करनेसे इसका भविष्य अधिक स्थिर और कार्यशील बना रहेगा; तब मैंने, सिंघीजीको बडे अर्सेबाद, एक विस्तृत पत्र (ता. १२.३.४२ को) लिखा और उसमें अपने ये सब विचार संक्षेपमें सूचित कर, इस विषयमें प्रत्यक्ष विचार करनेकी दृष्टिसे उनसे मिलनेकी इच्छा प्रदर्शित की।

सिंघीजी भी इस बीचमें मेरा कोई पत्रादि न प्राप्त कर कुछ विचार निमग्न हो रहे थे। उनको भी शायद ग्रन्थमालाके भविष्यकी अनिश्चितताका कुछ आभास हो रहा था। इसलिये मेरा उक्त पत्र प्राप्त कर उन्होंने भी वैसा ही एक विस्तृत पत्र मुझे लिखा और उसमें अपना मनोगत भाव, बडे सौजन्यके साथ, पर कुछ उपालंभके रूपमें, व्यक्त किया। सिंघीजीका यह पत्र मेरे लिये एक ऐतिहासिक पत्र है। इसने ग्रन्थमालाके भविष्यको नया रूप देनेके लिये भूमि तैयार की और मेरे मनको उसके लिये अधिक उत्सुक बनाया। सिंघीजीका कलकत्तेसे ता. २४.३.४२ का लिखा हुआ यह पत्र इस प्रकार है—

श्रद्धेय श्री जिनविजयजी,

सविनय प्रणाम. आपका कृपापत्र ता. १२. ३. ४२ का अजीमगंज हो कर यहां मिला। हम कार्यवश यहां ४।५ रोजके लिये आये थे परन्तु १० रोज हो गया। अब शायद ४।५ रोज और भी ठहरना पड़े। बाकी परिवारके सब अजीमगंजमें हैं, यह तो आपको मालूम ही है।

अहोभाग्य कि इतने दिनों बाद आपने मेरेको प्रत्यक्ष रूपसे याद किया और सिंघी ग्रन्थमालाके कार्यकी प्रगतिकी कुछ रूपरेखा सामान्य रूपसे अपने पत्रके द्वारा सूचित की। ग्रन्थमालाका कार्य प्रारम्भ हुआ था उस वक्त तो हरेक फर्मा छपने पर एक कापी मेरे पास आ जाया करती थी। इससे मालुम हो जाता था कि प्रेसमें क्या काम चालू है, और आपके पत्रोंसे यह विदित हो जाता था कि आगेके प्रकाशनके लिये कौन कौनसे पुस्तक पसन्द किये गये हैं और उस पर काम कितना आगे बढ रहा है। अब अवस्थाका इतना परिवर्तन हो गया है कि पुस्तकें छप कर बाईंडींग हो कर बाहर आ जाती हैं और मेरेको पता भी नहीं रहता है। मालुम तब पडता है जब या तो उसकी मांग मेरे पास आती है

या उसकी समालोचना कभी कभी पेपरोंमें, कभी पत्र द्वारा मेरे पास आती है, और दोनों हालतमें हमें मौन रहनेको बाध्य होना पडता है।

उदाहरणके लिये **"भानुचन्द्रगणिचरित"** को लीजिये। उसके छप जानेकी मेरेको कोई सूचना नहीं मिली – पुस्तकको आंखोंसे देखी भी नहीं। देहलीवाले पनालालजी नामके कोई व्यक्ति (नाम और पता हम भूलते न हों तो) ने उसके विरुद्धमें कुछ समालोचना पेपरोंमें निकाली उसका कोई उत्तर न मिल्ने पर मेरेको सीधा पत्र लिखा कि उस पुस्तकमें कई बातें भ्रमपूर्ण हैं। अवश्य उनके भ्रमका निराकरण करना मेरे शक्तिसाध्य बात न थी, परन्तु जिस पुस्तकको अपनी नजरोंसे भी नहीं देखा उसके विषयमें कुछ भी जवाब देना असम्भव था इसलिये "चुप" रहना पडा। उस पुस्तककी कई कॉपी बादमें मिली।

पहले जब पुस्तकें छप कर तैयार होती थीं तो सब कापियां यानि १०००/५०० यहीं आ जाती थीं। जब पुस्तकें बहुत इकट्ठी हो गई, रखनेके स्थानका अभाव हुआ तब आपके साथ यही तय हुआ कि हरेक पुस्तककी ५०/५० कापियां यहा रख कर बाकीकी सब अहमदाबाद भेज दी जाय। वैसा ही किया गया। अब वे पुस्तकें बक्सोंमें बन्द अहमदाबादमें रखी होंगी। हमने आपसे गत ७/८ वर्षोंमें कई दफे विनती की होगी कि जिस उद्देश्यको ले कर ये पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं, उसको सफल करनेके लिये, भारतवर्षमें और यूरोपमें इन्हें वितरण कर दी जाय। ताकि विद्वद्वर्ग हमारी और आपकी हयातीमें देखें तो सही कि किसने क्या और कैसा काम किया है और कर रहे हैं। हां, आपसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले दस-बीस मित्रोंने इन्हें देखा और प्रशंसा जरूर की, परन्तु मेरा और आपका उद्देश्य क्या इतने ही से सिद्ध हो गया? आप हमारी प्रसिद्धिके लिये नई नई योजना सोच रहे हैं। क्या भारतवर्ष, यूरोप और अमरिकाकी विख्यात विख्यात लाईब्रेरियोंमे और विद्वद्वर्गके हाथमें ये पुस्तकें पहुंच जातीं तो कम-से-कम उस श्रेणिके लोगोंमे, आपके साथ साथ मेरी भी कुछ-न-कुछ ख्याती नहीं होती? एक विद्वान् और पण्डितके रूपसे नहीं परन्तु ऐसे कामोंमें दिलचस्पी रखनेवाले और इस कामको करनेवाले विद्वद्वर्गको उत्साहित रखनेवालेके रूपमें तो सही। इस कामके यानि वितरणकार्यको करनेके लिये अलग स्टाफकी जरूरत हो तो उसके लिये भी हमने मंजुरी दे दी थी। मगर किसी न किसी कारणवश वह बात अब तक नहीं बनी। आज तो युद्धकी परिस्थिति ऐसी आ खडी हुई है कि इरादा करने पर भी नहीं हो सकता। एक दिन ऐसा भी आयेगा कि जिस रोज पं० सुखलालजी, आप और हम इस ससारमें न रहेंगे† और परस्परके महाप्रस्थानका अन्तर भी

---

† दैवयोगसे आज, यह ता. ७. ७. ४५ का दिन है, जब कि मैं सिंघीजीके पत्रमेकी इन पंक्तियोंकी प्रतिलिपि कर रहा हूं। यह ठीक आज सिंघीजीके स्वर्गमनकी पहली वार्षिक तारीख है। भवनका सब कार्य आज बन्ध रखा गया है और मैं उनके स्मरणका यह अंश बैठा बैठा लिख रहा हूं। सिंघीजीका फोटू मेरे सामने रखा हुआ है जिसकी ओर मैं इन पंक्तियोंको लिखता हुआ बीच-बीचमें टकटकी लगा कर कुछ देर तक देखता रहता हूं। मुझे कुछ आभास हो आता है कि सिंघीजीकी यह प्रतिकृति मानों मुझसे कह रही है कि 'देखो, मैंने १९४२ मे आपको लिखा न था कि एक दिन ऐसा भी आयेगा कि जिस रोज हम संसारमें न होंगे, सो आज हम ससारमें नहीं है। हमें तो ससारसे विदा हुए भी आज

ज्यादा नहीं होगा। क्यों कि हम तीनों करीव करीव एक ही उम्रके हैं और स्वास्थ्य भी शिथिलसा हो गया है। पूर्ववत् न तो मनोवल है और न शरीरवल। हम तीनोंके अभावमें इन पुस्तकोंके समूहका क्या होगा? आपने शायद नहीं सोचा होगा। क्यों कि आप तो अभी उसके निर्माणकार्यमें व्यस्त हैं। हमने सोच लिया है और वह यह कि या तो दीमकके पेटमें या वजनके दरोंसे वुकसेलरोंके पेटमें।

जव हमने सव पुस्तके अहमदावाद भेजी थीं उस वक्त जो जो पुस्तकें थी उनकी ५०/५० कापियां हमने यहा रख ली थीं। वादमें जो पुस्तकें प्रकाशित हुई उसकी भी ५०/५० कापी मेरे पास आनी चाहिये थीं मगर नहीं आई। ३-३ या ४-४ कापियां आई उसका नतीजा यह हुआ कि **'देवानन्दमहाकाव्य'** और **'तर्कभाषा'** की एक भी कापी मेरे पास नही है। मुझे ठीक याद नहीं कि ये पुस्तकें मेरे पास आई थी या नहीं? अगर दो-दो तीन-तीन कापी करके आई भी हों तो किसी किसीको दे देनेमें चली गई होंगी। मेरे पास अव नहीं है। दूसरे पिछले प्रकाशित पुस्तकोंकी एक-एक दो-दो कापी हैं।

ये सव वातें यों ही प्रसङ्गोपात मनमें आ गई सो लिख दीं। आप इन वातों पर विशेष ऊहापोह न करें। इन वातोंका मनमें आते हुए भी हमको सवसे ज्यादह संतोष इस वातका है कि काम ठोस, अच्छा, और वहुत अच्छा हो रहा है; और वह भी ऐसे सुयोग्य सज्जनोंके द्वारा कि जो अपने अपने विषयमें भारतवर्षमे अपनी जोड नहीं रखते। यह हम दर असलमें अपना अहोभाग्य मानते हैं—और इसमे कोई खुशामदकी वात नहीं। आप मेरे आग्रहसे इस कामको करनेके लिये तत्पर हुए और काम चल पड़ा। 'सिंघी ग्रन्थमाला' ने विद्वज्जनोंमे ख्याति प्राप्त की। नही तो, न तो मेरे मन पसन्द माफिक इसको करनेवाले ही कोई मिलते और न इस ग्रन्थमालाका जन्म ही होता। अस्तु। हमारा रहना अप्रेल-मईमें अजीमगंजमे होना ही संभव है। कार्यवश कभी कभी २।४ दिनके लिये कलकत्त आते रहते हैं। आप अपनी इच्छानुसार इधर आवें तो वडी खुशी होगी। मिलनेको वहुत अर्सा हो गया है।

आपके पत्रमें और और विषयकी जो चर्चा है मिलने पर ही वे वातें होंगी, पत्रके द्वारा संभव नहीं।

एक पूरा वर्ष व्यतीत हो गया है।' हमारा व्यथित मन, इस अप्रिय आभासका चिन्तन करना पसन्द नहीं करता, पर कालके वलके आगे बिचारे दुर्वल मनका क्या जोर। काल कहता है सिंघीजी सचमुच ही आज संसारमें नहीं है। सिंघीजीके इस पत्रमें जो भविष्य-कथन किया गया है उसका उनके अपने विषयका कथन तो सिद्ध हो गया है, देखें हमारे विषयका कथन कव सिद्ध होता है और हमारे भी महाप्रस्थानका दिन कव आता है। हमें आभास होता रहता है कि हमारे उस परम आत्मीय वन्धुजनके सूचनके अनुसार, उनके और हमारे महाप्रस्थानके वीचमे कोई ज्यादह अन्तर तो नहीं होगा। परन्तु खेद इतना ही है कि सिंघीजी ही हमसे पहले प्रस्थान कर गये और ग्रन्थमालाके जितने ग्रन्थ पिछले १२ वर्षोंमे प्रकाशित हुए वे देख गये उनसे कहीं अधिक ग्रन्थ, जो हम अपने शरीरकी स्वस्थता और आयुष्यकी क्षीणताकी अवगणना करके भी, केवल उन्हींके सन्तोषके खातिर, संपादित कर प्रकाशित करनेका परिश्रम उठा रहे हैं उनको देखनेके लिये कुछ वर्ष क्यों न ठहरे!

श्रीयुक्त मुंशीजीसे मेरा सादर प्रणाम कहियेगा। अपनी बहुमुखी कार्यावलीमें भी उन्होंने मेरेको याद किया इसलिये मुझ पर उनका स्नेह है यह प्रत्यक्ष है। वे पिछली दफे जब कलकत्ते पधारे थे तब कई दफे उनसे मिलना हुआ था। एक दफे मेरे यहां भोजनकी भी कृपा की थी। बम्बई जानेका दिलमें लगा हुआ है, मगर लड़ाईके जमानेमें जाना बन पड़े ऐसी आशा नही।

अजीमगंज जाने पर पू० माजीको आपका प्रणाम जरूर कहेंगे। उनके सारे शरीरमें दर्द दिन-पर-दिन बढता ही जाता है। अब तो हिलने-डोलनेकी भी शक्ति नहीं रही। कोई इलाज काम नही देता। अशाता वेदनीयका पूर्ण उदय है। उनको तो इस पर भी संतोष है कि मेरा बान्धा हुआ निकाचित कर्म इसी भवमें बहुतसा इस रूपमें क्षय हो रहा है।

हमारी तबियत कभी ठीक, कभी बे-ठीक ऐसी ही चल रही है। आप अपने स्वास्थ्यका संभाल रखें। कृपया पत्रोत्तर अजीमगंज दें। आपका स्नेही

बहादुरसिंह।

मेरा सिंघीजीसे अजीमगंज मिलने जाना

सिंघीजीका यह पत्र मिले बाद मैं तुरन्त ही उन्हें मिलनेके लिये जानेको उत्सुक हुआ पर कुछ कारण वश जा न सका। आखिरमें जुलाई (१९४२) के तीसरे सप्ताहमें मैं बंबईसे अजीमगंज जानेको रवाना हुआ। रास्तेमें कुछ ३-४ रोज बनारस, हिंदु युनिवर्सिटीमें पंडितजीसे मिलनेको उतर गया। वहां पर पण्डितजीसे भी, ग्रन्थ-मालाके भविष्यके प्रबन्धके विषयमें, यथेष्ट विचार-विनिमय किया और फिर वहांसे (ता. २३ जुलाईको) अजीमगंज पहुंचा।

अजीमगंज सिंघीजीका मूल निवास स्थान है। बंगालमें बसने वाले जैनियोंका वह एक छोटासा केन्द्रस्थान है। मुर्शिदाबादके नवाबोंके जमानेसे अनेक जैन कुटुम्ब, राजपूतानासे वहां जा कर, बसे हुए हैं और वहांके जगप्रख्यात जगत्सेठ तथा अन्यान्य कई धनाढ्य जैन कुटुम्ब, कोई दो-ढाई सौ वर्षोंसे सारे हिंदुस्थानमें, अच्छे प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। सिंघीजीका खानदान भी उन्हीं कुटुम्बोंमेंसे एक है। विद्यमान जगत्सेठकी माता और सिंघीजीका माता दोनों सगी बहने थीं। सिंघीजीका जन्म वहीं हुआ और बचपन भी वहीं बीता। पिछली लडाईके समयमें उनका सारा कुटुम्ब कलकत्ते आ कर बसने लग गया। इस लडाईके समय, जब कलकत्तेमें जापानके आक्रमणकी आशंका खडी हुई, तो वे अपने सारे कुटुम्बको ले कर फिर अजीमगंज रहने चले गये और जब तक लडाईका आतंक दूर न हो जाय तब तक वहीं-स्थायी रहनेका निश्चय किया। मैं जब इस वार उनसे मिलने गया तो सारा कुटुम्ब वहीं था इसलिये मुझे भी वहीं जाना पडा।

अजीमगंजमें, भागीरथीके बिल्कुल किनारे उनकी सुन्दर कोठी बनी हुई है। ठीक दरवाजेके सामने ही भव्य नदी बह रही है। कोठीमेंसे देखने पर, नदीके उस पारका बडा ही सुन्दर दृश्य, दिन-रात आँखोंको आनन्दित करता रहता है। उन्होंने अपनी

सुरुचिके मुताबिक नदीके कांठेको एक अच्छा आकर्षक आकार दे कर उसे बहुत ही स्वच्छ और सुन्दर बना दिया है। दरवाजेके सामने ही एक नौका लगी रहती है जिसमें बैठ कर उस पार आना जाना होता रहता है। सिंघीजीने अपने मकानमें बीजली और पानीके नलका भी स्वतंत्र प्रबन्ध कर लिया और इस तरह संपूर्ण आधुनिक आवश्यकताके अनुकूल उस कोठीको सजा लिया। पास ही में एक और अच्छा नया मकान भी बिल्कुल आधुनिक ढंगके आकारका, बनाना प्रारंभ कर दिया। मैं जब मकान पर पहुंचा तो वे नदीके किनारे खडे खडे उस मकानके कामको देख रहे थे और काम करनेवालोंको कुछ सूचना दे रहे थे।

इस वार बहुत दिन बाद हम दोनोंका मिलना हुआ इससे एक दूसरेके प्रति मनमें बडा उत्सुक भाव जग रहा था। पर मैंने देखा कि सिंघीजीका शरीर बहुत कुछ दुर्बल हो गया है और उनके खान पानकी मात्रा भी बहुत ही घट गई है। रातको नींद ठीक नहीं आती है और मनमें सदा ग्लानिसी बनी रहती है। परिवारके साथ बोलने चालनेमें भी वैसी कोई प्रसन्नता नहीं दिखाई दी। बोले—'मेरी तबियत इन दिनों कुछ नरमसी रहती है। कोई कार्य करनेकी इच्छा नहीं होती और मन भी प्रसन्न नहीं रहता है। इसीसे आपको पत्र वगैरह लिखनेमें उत्साह नहीं आता और पिछले दो तीन पत्रोंका ठीक उत्तर नहीं दिया गया। पण्डितजीके भी कई दिन हुए दो—एक पत्र आये पडे हैं, परन्तु उनका भी जवाब अभी तक नहीं दे पाया' इत्यादि।

अजीमगंजमें किया गया ग्रन्थमालाका भावी निर्णय

पूरे पन्दरह दिन मैं उस समय सिघीजीके साथ अजीमगंजमें रहा। वर्षाऋतु अपने पूरे जोशमें थी और खूब वारीस हो रही थी। नदीका पानी काफी चढा हुआ था और वह मानों सिंघीजीके द्वारकी सीढियोंको आलिंगन करनेकी उत्सुकता बता रहा था। सिंघीजीके बैठनेके कमरेमेंसे पश्चिमकी ओर कोई डेढ-दो-मील तकका नदीका स्थिर परन्तु समुन्नत एवं विशाल जलप्रवाह तथा उसके दोनों किनारोंपर सटी हुई सघन वृक्षघटा और झाडीका अत्यन्त मनोरम दृश्य, एक प्रकारका बहुत ही भव्य और रम्य चित्रसा लगता था और आँखोंको अनिमेषभावसे देखनेको आकृष्ट करता था। मेरे प्रकृतिप्रिय चित्तको यह दृश्य बडा सुहावना मालूम देता था और मैं घंटों खडा खडा इसकी ओर देखते हुए तृप्त ही नहीं होता था। रातको भी मैं जग जग कर मकानकी खुली छतमें जा कर खडा हो जाता था और घंटों उस एकान्त नीरव रात्रिकी अनन्य सुषमाका संवेदन कर आल्हादित होता था। दिनमें कभी सिंघीजीके साथमें और कभी श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजी आदिके साथमें, नावमें बैठ कर आसपासके स्थानोंको देख आया करते थे। एक सन्ध्याको, अजीमगंजसे दो-एक मीलके फासले पर राणी भवानीका बनाया हुआ जो ऐतिहासिक मन्दिर है, उसको बतानेके लिये खास तौरसे सिंघीजी मुझे ले गये। उन्होंने वहांका सब इतिहास बतलाया और उस मन्दिरकी कारीगिरी आदिका परिचय कराया। सिंघीजीको इतिहास और स्थापत्य दोनों विषयोंका बडा शौक था और उस विषयकी चर्चामें वे जब तल्लीन हो जाते तब घंटों बातें करते नहीं थकते। मुर्शिदाबादके प्राचीन इतिहासकी तथा वहांके नवाबों एवं अन्यान्य प्रसिद्ध व्यक्तियोंके विषयकी उनकी जानकारी खूब गहरी थी। प्रसङ्गोपात्त इस जानकारीका

उन्होंने मुझे बहुत कुछ परिज्ञान कराया। जगत्सेठके घरानेकी जितनी बातें उनको ज्ञात थीं उतनी शायद आज तक अन्य किसीको ज्ञात नहीं हुई होंगीं। उनके पास ये सब बातें सुन कर मैंने उनसे कहा, कि–'बाबूजी, आपके पीछे इन सब बातोंका जाननेवाला शायद और कोई नहीं रहेगा। इसलिये अच्छा हो यदि आप अपनी इस जानकारीके नोटस् करके या किसीसे करवा करके कहीं छपवा दें। अथवा मुझे दें दें तो मैं उन्हें छपवानेकी व्यवस्था कर दूं।' इस पर वे बोले 'हमसे खुदसे तो कुछ लिखा जा नहीं सकता। वैसा मानसिक स्वास्थ्य भी हमारा अब है नहीं। और कोई दूसरा हमारे मनके मुताबिक लिखनेवाला हमको मिलता नहीं।' इत्यादि अनेक प्रकारकी चर्चा उनसे सतत होती रहती थी।

फिर एक रातको जब उनका मन ठीक स्वस्थ था, तब हम दोनों शान्तिसे बैठे और 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'के विषयमें विचार-विनिमय करने लगे। मैंने ग्रन्थमालाके तब तकके कामका उन्हें सिंहावलोकन करा कर भविष्यका विचार उपस्थित किया। मैंने कहा–'ग्रन्थमालाके संचालनका समग्र भार, अब तक मेरे अकेलेके व्यक्तित्व ऊपर ही निर्भर रहा है। स्टॉक सब अहमदाबादमें रहता है, जहां अब उसके रखनेकी विशेष जगहका अभाव है। मेरा रहना अधिक बम्बई होता है और शरीर भी न मालुम किस दिन जवाब दे सकता है। ऐसी हालतमें ग्रन्थमालाकी स्थिति क्या हो? इसलिये मैंने सोचा है कि उसका संयोजन 'भारतीय विद्या भवन' के साथ कर दिया जाय तो सब तरहसे उचित होगा।' फिर 'भवन'की स्थिति और श्रीमुंशीजीकी अभिलाषा आदिका भी मैंने उनको यथायोग्य परिचय दिया। बनारसमें पण्डितजीके साथ जो कुछ परामर्श हुआ उसका भी जिक्र किया। सब बातोंको शान्तिके साथ सुन कर वे बोले–'इस बारेमें तो हमारे लिये आप ही सर्वथा प्रमाणभूत हैं। आपको अगर इस प्रकार भवनके साथ इसका संबन्ध जोड देना लाभदायक प्रतीत होता हो, तो हमको उसमें कोई आपत्ति नहीं है। आप अपनी सुविधा और सुव्यवस्थाकी दृष्टिसे जो कोई भी योजना हमें सूचित करेंगे वह हमको मंजूर होगी। हमारी तो एकमात्र अभिलाषा आपकी और हमारी हयातीमें जितने भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित किये जा सकें उतने प्रकट हुए देखनेकी है। और फिर यदि बादमें भी इस ग्रन्थमालाका काम ठीक ढंगसे चलता रहे तो वह अभीष्ट ही है। हमने अपने जीवनका सबसे बडा स्मारक इसी ग्रन्थमालाको माना है। और इसकी प्रगतिके लिये जो भी योग्य योजना या व्यवस्था आप सूचित या निर्धारित करेंगे वह हमें स्वीकार्य होगी' इत्यादि।

फिर भवनके साथ किस ढंगसे इस ग्रन्थमालाका सम्बन्ध जोडा जाय इसकी रूपरेखा सोची गई। साथमें, अबसे इसके प्रकाशनात्मक कामको और भी अधिक वेग देनेके लिये कुछ सहायक आदिका विशिष्ट प्रबन्ध करनेकी और उसके लिये यथेष्ट खर्च करनेकी भी उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की। सिंघीजीका इस समयका उत्साह मेरे लिये अतीव उत्तेजनात्मक था और उनके वैसे उत्साहको देख कर स्वयं मैं भी अधिक उत्साहित हो रहा था। कोई वार्षिक २० हजार तकका बजट अंकित किया गया।

'भारतीय विद्या भवन'के अन्धेरीवाले विशाल मकानमें (जिसको पीछेसे मिलीटरीने युद्धविषयक परिस्थितिके कारण अपने लिये मांग लिया), सबसे ऊपर एक बडा हॉल बनानेकी हमारी कल्पना थी जिसमें प्राचीन वस्तुओंका म्युजियमके रूपमें संग्रह करनेका मेरा लक्ष्य था। उसके लिये मैंने उनसे १० हजार रूपयोंकी याचना की तो उसका उन्होंने बडी प्रसन्नताके साथ स्वीकार किया।

बनारसमें पण्डितजीका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था और मेरी इच्छा हो रही थी कि पण्डितजी अब बनारस छोडकर बंबई या अहमदाबाद ही में आ कर रहें। सो सिंघीजीने पण्डितजीके लेखक-वाचकके खर्चके लिये भी, सदाके लिये, अपनी ओरसे आवश्यक सहायता देनेका पूर्ण उत्साह प्रदर्शित किया और उसके लिये मेरा जितना अन्दाज़ा था उससे कहीं अधिक ही देनेका उन्होंने निर्णय किया।

इस प्रकार वहांका सब काम समाप्त होने पर, मैं सिंघीजीकी अनुमति लेकर, ता. ७ ऑगष्टको अजीमगंजसे बनारसके लिये रवाना हुआ। उसके दूसरे ही दिन बंबईमें कॉंग्रेसकी वह ऐतिहासिक महासमितिकी बैठक होनेवाली थी और उसमें देशके भाविके विषयमें कोई महत्त्वका निर्णय होनेवाला था। इससे सारे देशका वातावरण एक प्रकारसे क्षुब्धसा हो रहा था। सरकार सब जगह अपनी दमन-नीतिकी पूरी तैयारी कर रही थी। जानकार लोगोंने अनुमान कर लिया था कि सरकार कॉंग्रेसके सभी छोटे-बडे कार्यकर्ताओंको जेलमें ठूंसनेका इन्तजाम कर रही है। सिंघीजी जानते थे कि श्रीमुंशीजीका और मेरा भी सरकारके केदखानेके दफ्तरोंमें नाम दर्ज हुआ पडा है, इसलिये संभव है कि उस पुराने लीष्टके मुताबिक हमको भी वह अपना महमान बनावे। 'विना ही कुछ उपयुक्त काम किये यदि वह ऐसा करे तो उसके लिये कोई ननु-नच करनेका अवकाश नहीं है, पर यदि काम करनेवालोंही को वह अपनी महमानगिरिका सम्मान देना चाहती हो, तो उस हालतमें हमें उस सम्मानके लिये उत्सुक नहीं होना चाहिये'—ऐसा सिंघीजीका मुझसे अनुरोध था। क्यों कि वैसा होने पर, यह जो ग्रन्थमालाका भावी आयोजन सोचा गया है वह सब 'उलट-पुलट' हो जायगा। इसकी उनको बडी आशंका थी। इसलिये उनसे बिदा होते समय भी उन्होंने आखिरमें इस बातकी ओर पूरा लक्ष्य रखनेकी मुझसे विज्ञप्ति की।

ता. ८ ऑगष्टको मैं बनारस पहुंचा और पण्डितजीसे वहांका सब हाल सुनाया। ग्रन्थमालाके विषयमें जो विचार तय हुआ वह भी उनको विदित किया। सिंघीजीने मेरे साथ ही पण्डितजीको देनेका पत्र भेजा था सो भी उनको दिया गया। पण्डितजीके प्रति सिंघीजीकी कितनी उच्च श्रद्धा और समादर बुद्धि थी वह इस छोटेसे पत्रसे अच्छी तरह ज्ञात हो जाती है।

अजीमगंज, ७. ८. ४२

श्रद्धेय श्रीपण्डितजी

सविनय प्रणाम. आपका पहलेका तीन पत्र हजम कर लेनेके बाद चौथा पत्र पा कर, उसी पत्रवाहकके साथ उत्तर भेज रहा हूं। शरीर स्वस्थ न रहनेके कारण कोई काममें दिल नहीं लगता, इसलिये पत्रोंका उत्तर यथासमय न दे सका, कृपया क्षमा करें।

आपके लिये एक सुयोग्य लेखक-वाचकका प्रबन्ध कर देना यह तो मेरे लिये एक सौभाग्यका विषय है। यह तो सामान्य सेवा है जो मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं। इसके अतिरिक्त सेवाकी भी समय समय पर जरूरत पडे तो हम हाजिर हैं। खर्चेका कोई अन्दाजा आपने नहीं लिखा था। मुनिजीसे पूछने पर मालुम हुआ कि करीब ७५) मासिक हो सकता है। हमने वार्षिक १००० भेजनेका स्थिर कर लिया है।

सिरीझके कामका कोई बोझ आपके सिर पर नहीं लादना चाहते, परन्तु इतना खयाल तो आप अवश्य रखेंगे कि इसके प्रकाशनका वेग बढ जाय। मुनिजीकी और हमारी हयातीमें जितनी ज्यादह पुस्तकें निकल जांय यही इष्ट है। इसके लिये मुनिजीके सहायकके रूपमें भी एक और आदमीकी नियुक्तिके लिये १७५-२००) माहवारका खर्च मंजुर किया है।

इसके भविष्यके लिये भी एक योजनाकी बात मुनिजीके साथ हुई है। आप इनसे मालुम करके इसके बारेमें भी अपना मन्तव्य जरूर लिखें। अगर यह योजना आपको ठीक न जंचे तो दूसरी कोई योजनाका ध्यान दिलावें। क्यों कि इसका भविष्य भी स्थिर कर लेना अब जरूरी है।

मेरा स्वास्थ्य इन दिनों ठीक नहीं रहता है। अरुचिके सिवाय और कोई बिमारी नहीं है। वर्षाके दो मास ऐसे ही बीतेंगे। पीछे शायद ठीक हो जायगा। आपका स्वास्थ्य ठीक रहता होगा, लिखियेगा।

आपका विनीत—**बहादुरसिंह**

पण्डितजीके साथ आवश्यक परामर्श कर, ता. ९ ऑगष्टकी रातकी गाडीसे बनारससे रवाना हो मैं बंबई पहुंचा। भवनके अध्यक्ष श्रीमुंशीजीको सिंघीजीके साथ किये गये विचार विनिमयका सार विदित किया। मुंशीजी सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। भवनके साथ ग्रंथमालाका किस तरह संयोजन किया जाय उसका हम दोनोंने विचार किया और फिर मुंशीजीकी ओरसे सिंघीजीको एक ऑफिसियल पत्र लिखा गया (जिसकी नकल इसके साथ परिशिष्ट नं. १ में दी गई है). मैंने भी उनको अलग स्वतंत्र पत्रसे सब बातें बहुत कुछ विस्तारके साथ लिख कर सूचित कीं और मुंशीजीके पत्रके उत्तरमें उन्हें किस प्रकारका ऑफिसियल पत्र लिखना चाहिये इसका सार लिख भेजा। तदनुसार ता. २४. ९. ४२ को उन्होंने श्रीमुंशीजीको भेजनेका पत्र तैयार किया (जो परिशिष्ट नं. २ में दिया गया है) और उसके साथ, ता. २९. ९. ४२ को मुझे भी, निम्नलिखित, एक विस्तृत पत्र लिखा जिसमें ग्रन्थमाला विषयक अपने सब मनोगत भाव बडी स्पष्टताके साथ व्यक्त किये और भवनका, मेरा और ग्रन्थमालाका परस्पर सम्बन्ध कैसा हो इसकी उन्होंने अपनी कल्पना प्रकट की। ग्रन्थमालाके इस नूतन सम्बध-संयोजनकी दृष्टिसे, यह पत्र मेरे लिये एक महत्वके ऐतिहासिक दस्तावेजसा है। सिंघीजीने इस पत्रमें अपने जीवनके प्रियतम उद्देश्य और ध्येयका अन्तिम भाव प्रकट किया था। इस पत्रकी संपूर्ण प्रतिलिपि इस प्रकार है—

अजीमगंज, २९. ९. ४२

श्रद्धेय श्री मुनिजी

सविनय प्रणाम. आपके ता. १७. ८. ४२ और २०. ८. ४२ के लिखे दोनों पत्र मिल गये थे। श्रीमुन्शीजीका भी पत्र मिल गया था। जवाबमें देरी हुई है उसका एक कारण यह है कि बनारससे श्री पण्डितजीके आनेकी प्रतीक्षा थी। अब वे ता. १७. ९. ४२ को

यहां आये थे और ता.   . ९. ४२ को वापस वनारस चले भी गये हैं। उनके साथ जो परामर्श करना था वह आपके दोनों पत्र सामने रख करके कर लिया है। जैसा आपने सूचित किया है उसके अनुसार मुन्शीजीवाला पत्र भी आप ही को भेज रहा हूँ। आप पढ़ लीजिये तव उन्हें दे दीजियेगा। उनके पत्रमें जो कुछ जरूरी लिखना रह गया हो तो आप उसमें मेरी तरफसे पूर्ति कर सकते हैं। और कोई नई बात दाखिल करनी सूझ पड़े तो आप उसमें दाखिल कर सकते हैं। जो घटी वढ़ी होगी वह आपके द्वारा मुझको मालूम तो हो ही जायगी।

संस्थाका सवाल है और एक्झीक्यूटीव बॉडीमें पास करा लेना है। इसलिये शुरूमें थोड़ा विलम्ब हो जाना स्वाभाविक है।

अगर आपके नये सुझाव पत्रमें दाखिल करके यहींसे श्रीमुन्शीजीको भेजना हो तो आपका पत्र आनेके वाद यहाँसे दूसरा पत्र श्रीमुन्शीजीको भेजा जा सकता है। आपको तो मैं अपने बीच हुई वातचीतके अनुसार मूल सिद्धान्त ही लिख देता हूँ। ब्योरेकी वातें श्रीमुन्शीजीके पत्रमें लिखता हूँ। संस्था और सिरीझके नये सम्वन्ध तथा भावी सम्वन्धकी दृष्टिसे आपको और भी ब्योरेकी वातें सूझ सकती हैं, क्यों कि आपको हमारा और उस संस्थाका–दोनोका अनुभव है। श्रीमुन्शीजीने अपने पत्रमें "सिंघी जैन ज्ञानपीठ" का जो निर्देश किया था उसका भाव पहले पूरा ध्यानमें आया न था; पर आपके दूसरे पत्रके विस्तृत वर्णनसे ध्यानमें आ गया। अपने बीच जो और जैसी बात हुई है उसके अनुसार मेरा एकमात्र विचार "सिंघी जैन सिरीझ" चलानेका तथा उसकी गति जितनी आप वढ़ा सकें वढ़ानेका है। अभी मैं "सिंघी जैन ज्ञानपीठ" की स्थापना और उसके निर्वाहका प्रश्न मेरे जिम्मे नहीं लेना चाहता। आगे थोड़े अनुभवके वाद और दूसरी दूसरी परिस्थितियोंको देख कर, अवसर आया तो उस पर विचार किया जायगा। अभी तो आपका और मेरा सारा वल सिर्फ "सिंघी जैन सिरीझ" की ओर लगे यही मेरा संकल्प है। सिरीझमें प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंके लिये जितना और जो कुछ प्रेस, कागज आदिका खर्च आवेगा वह करना मुझे मंजूर है। इसके सिवाय आपको सहायक रूपसे आदमी या आदमियोंकी जरूरत हो उसके वास्ते भी मैंने आपसे कह ही दिया है। सुयोग्य आदमी जिससे आपका वोझ कुछ कम हो और प्रकाशनकी गति अधिक वढ़े उसके लिए थोड़ा और भी ज्यादह खर्च करना पड़े तो आपके लिखनेसे वह भी मुझे मंजूर होगा। कामकी गति और फेलाव वढ़ानेके लिए जुदे जुदे सम्पादक आपको पसन्द करने होंगे और उनका जो समुचित एडिटिङ्ग चार्ज होगा वह आपके लिखे या मंजूर किये अनुसार देना मुझको मंजूर होगा। परन्तु इस विषयमें इतना तो स्पष्ट कर देना इस मौके पर और जरूरी है कि कहीं ऐसा न हो कि सिरीझका सम्पादन कार्य तो उन सवएडिटरों (Sub-editors) के हाथमें ही रहे और आपकी निजकी कृतियाँ "भारतीय विद्या" या दूसरे किसी मासिक पत्र-पत्रिकाओंमें निवन्धके रूपमें या पुस्तकके रूपमें प्रकाशित हो कर उनके महत्त्वको वढ़ाती रहें। इसको थोड़ा और भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है, इतने दिनों तक तो आपका सम्बन्ध "सिरीझ" से और "भारतीय विद्या भवन" से अलग अलग रूपमें था और अलग अलग नाते दोनोंका काम आपको करना पड़ता था और करना उचित भी था। अव जव सिरीझको "भारतीय विद्या

विद्या भवन" के साथ जोड़ दिया गया है तो "सिरीझ" का प्रकाशन भी भा० वि० भ० का प्रकाशन गिना जायगा। ऐसी दशामें आपके श्रमका फल "सिरीझ" को ही मिले तो उसे भा० वि० भ० को मिला ही समझा जायगा। इससे मेरा आशय इतना स्वार्थगत नहीं है कि आप उस संस्थाकी मासिक पत्रिका या अन्य प्रकाशनोंमें कुछ भी सहयोग न दें। क्यों कि आपका लेखन-विषय बहुमुखी है, एक नहीं अनेक संस्थाएँ उससे लाभ ले सकती हैं। परन्तु मुख्यतया आपके परिश्रमका फल इस 'सिरीझ' को ही मिले मेरे लिये यह वांछनीय है। आप चाहे इसे "स्वार्थ" कहें तो शायद आपका कहना भी अन्याय न होगा।

मैंने श्रीमुन्शीजीके पत्रमें जो लिखा है उससे शायद आपको यह मालूम दे कि अभी सिरीझ चलानेकी जो बात हो रही है वह थोड़े समयके लिए अर्थात् आपकी मोजूदगी तक ही है। इस बारेमें मैं अपना आशय स्पष्ट कर देता हूँ। आप उचित समझें तो श्रीमुन्शीजीको भी यह बात कह सकते हैं। मेरा आशय यह है कि आपकी मोजूदगीमें ही आप ऐसा दूसरा समर्थ व्यक्ति तैयार कर लें या खोज लें, जो आपकी तरह ही सिरीझका काम चालू रख सके और जिस पर आपका हर दृष्टिसे पूरा विश्वास हो और जिसे मैं भी अपने जीवनकालमें देख सकूँ। ऐसा हो तो आपका सिरीझके वास्ते उत्तराधिकारी ठीक हो गया। मेरे उत्तराधिकारियोंकी रसवृत्ति आप जानते ही हैं। इससे जो कुछ मुझको करनेका मन है और होगा वह एक मात्र आपके और आपके पसन्द किये हुए आगेके मुख्य कार्यकर्ताके भरोसे ही करना होगा। मै समझता हूँ कि सिरीझका काम वेगसे बढ़ानेके साथ साथ आप अपने लायक आदमीको पा सकें तो संभव है कि आपके रहते ही फिरसे सिरीझकी विशेष स्थिरताके लिए सोच सकूंगा और कर सकूंगा। आपसे मैंने जो कहा था कि दूसरा ऐसा सहकारी रखिये जिससे आपका समय बचे और बोझ कम हो, उसका भीतरी आशय यह भी था कि आखिरको आप और मेरे रहते हुए, योग्य आदमी मिल जानेसे मैं आईन्दाके लिए विशेष विचार सिरीझके लिए कर सकूँ। बॉम्बे या भवनके साथ मेरा या मेरे वारिसोंका असलमें कोई सम्बन्ध नहीं है। जो कुछ है वह आपके कारण ही है। आपके बाद अगर जरूरत भी पड़ी तो मैं या मेरे उत्तराधिकारी शायद ही कोई सिरीझके कामके लिए बम्बई जॉय। हकका लाभ लेनेके लिए शायद कभी कभी पत्र-व्यवहार करें तो कर सकें, इससे ज्यादा तो नहीं। इससे मेरा विचार यह रहा है कि अभी तो आपकी मोजूदगी तककी ही बात रहे और इस बीचमें सुयोग्य व्यक्ति मिल जाने पर आप और मैं फिर बैठ कर नये सिरेसे सिरीझके लिए विशेष विचार कर लेंगे। आपकी तरह मेरा भी ध्येय सिरीजकी प्रगति और स्थिरताका है। हम लोग इधर रहते हैं इसलिए इधरकी किसी संस्थामें प्रत्यक्ष भाग लेनेका भी अवसर सहज है, पर बम्बई तो दूरकी बात है। इस पर आप विचार करेंगे तो मेरा दृष्टिकोण ध्यानमें आ जायगा।

आप और मुन्शीजी दोनों बाहर ही रहें ऐसी उम्मीद है। फिर भी दिन-ब-दिन जो परिस्थिति बिगड़ती जा रही है उसके ऊपरसे यह तो निश्चयपूर्वक कहना सभव नहीं है कि आप दोनों बाहर ही रहेंगे। जो कुछ होनेवाला है वह तो हो कर ही रहेगा। मेरा कहना तो इतना ही है कि आप पैसेकी तरफसे बेफिक्र हो कर अभीसे काम तेज और नियन्त्रित करें और मैं बाकीकी चिंता शिर पर ले कर बैठा हूँ।

मैने श्रीमुन्शीजीके ऊपर लिखे हुए पत्रमें लिखा है कि "भारतीय विद्या भवन" मुनिजीकी मंजूरीके अनुसार खर्च करे, उसका हिसाव रखे, और वह हिसाव हर साल हमको भेजे। तदनुसार सभी पैसे भा० वि० भ० को ही भेजे जायेंगे। उसीके द्वारा फिर सभीको पैसा मिलेगा। जिसमें आपके खर्चेका भी समावेश हो जाता है। मैंने यह इसलिए किया है कि आप हिसावके वोझसे बिलकुल मुक्त हो जायें। अब सीधे मुझसे पैसे मंगाना और सबको चुकाना आपको माफिक हो तो इतना क्लोज वदलना पड़ेगा। जो आप लिखेंगे तो यहाँसे सुधार कर पुनः पत्र भेजा जा सकेगा। परन्तु उस हालतमें सारा हिसाव जो कि अवसे कहीं ज़्यादा होगा आप ही को रखना होगा। कुछ हिसाव आप रखें और कुछ हिसाव विद्याभवन रखे यह रास्ता सीधा और उचित नहीं है। इसलिए आप इस विषयको भी ध्यानपूर्वक पूर्वापर सोच कर अपने सुभीतेके अनुसार निर्णय करें।

जो जो पुस्तकें मैंने कलकत्तेसे वापस पार्सलमें अहमदावाद भेजी थी उसकी तो ५०/५० प्रति मैंने रख ही ली थी। वाद उसके जो-जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उसकी एक भी नकल मेरे पास नहीं है। कोई पूछे तो मै यह भी नहीं बता सकता कि कौन कौन पुस्तकें प्रकाशित हुई। आप उचित समझें तो बाकीकी पुस्तकोंकी ५०/५० नकलें रेल पार्सलसे मेरे पास भिजवा दें।

पूज्य माताजीका प्रणाम। उनकी तबीयत आप देख गये वैसी ही है। मेरी तबीयत आगेसे ठीक है और सव मजेमें हैं। आप आनंदमें होंगे। आपका विनीत

वहादुरसिंह

सिंघीजीका यह पत्र जब मुझे मिला तब मैं अहमदाबाद था और देशमें चारों ओर चलते हुए राष्ट्रीय आन्दोलनका उन्मनस्क भावसे अवलोकन करता हुआ अस्थिर-चित्त बन रहा था।

जेसलमेरके ज्ञानभण्डारोंका अवलोकन करने जाना

ता. ९ ऑगस्टको, सरकारने कॉंग्रेसकी वर्किंग कमीटीको पकड कर जेलखानोंमें बन्ध कर दिया जिससे सारे देशमें बडा उग्र और तंग वातावरण फैल गया था। उसमें हमारे भवनके भी कई विद्यार्थी अपना अभ्यास वगैरह छोड कर, अपनी अपनी इच्छा और उत्साहके अनुसार इधर-उधर राष्ट्रीय आन्दोलनमें सम्मीलित होनेके लिये चले गये। सरकार द्वारा जो अत्याचार और दमननीतिका क्रूर चक्र घुमाया जाने लगा उसको देख-सुन कर हरएक राष्ट्रप्रेमी मनुष्यका दिल व्यथित हो रहा था। मेरा मन भी बहुत उत्तेजित होता रहता था और अपने चालू साहित्यिक कार्यमें वह किसी तरह लगता नहीं था। मन रह रह कर आन्दोलनकी ओर खिंचा जा रहा था। परन्तु अङ्गीकृत कार्य, मुझे बलात्कारसे अपने मनको अङ्कुशमें रखनेकी आज्ञा करता था। इससे अन्तरमें सतत एक वडा भारी द्वन्द्व युद्ध चल रहा था और उसके सबबसे मेरी मानसिक और उसके साथ शारीरिक स्थिति भी कुछ व्याकुलसी हो गई थी।

स्थानपरिवर्तनकी दृष्टिसे मैं अहमदाबाद चला गया। परन्तु, वहां तो इस आन्दोलनने और भी उग्र रूप पकड रखा था। अहमदाबादका युवकवर्ग—स्कूलों और कॉलेजोंमें पढनेवाले लडके और लडकियोंका समूह—आन्दोलनका अग्रगामी सूत्रधार

जेसलमेरका किला – जिसमें जैन ज्ञानभाण्डार सुरक्षित है
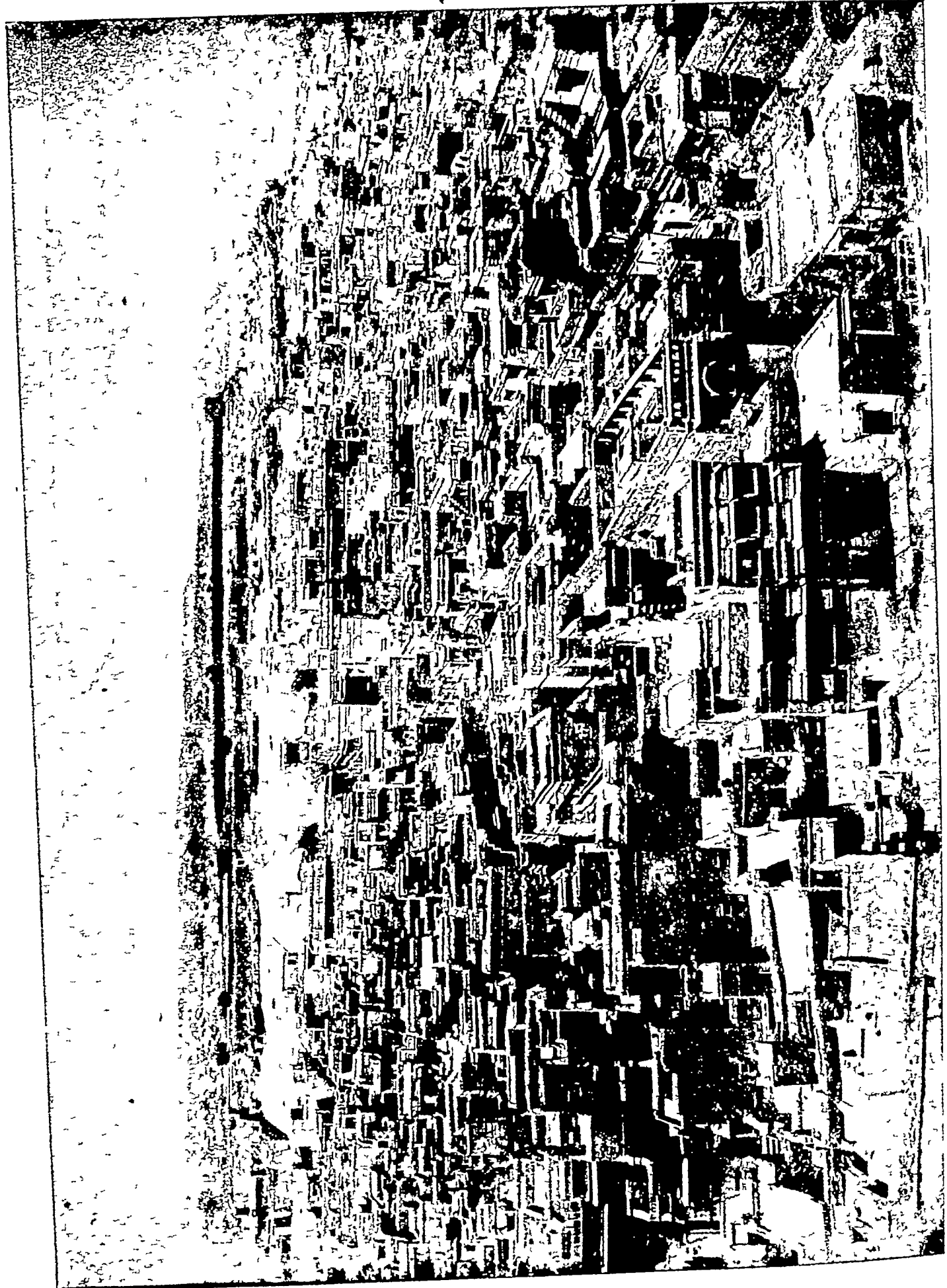
जेसलमेर नगरका सामान्य दृश्य
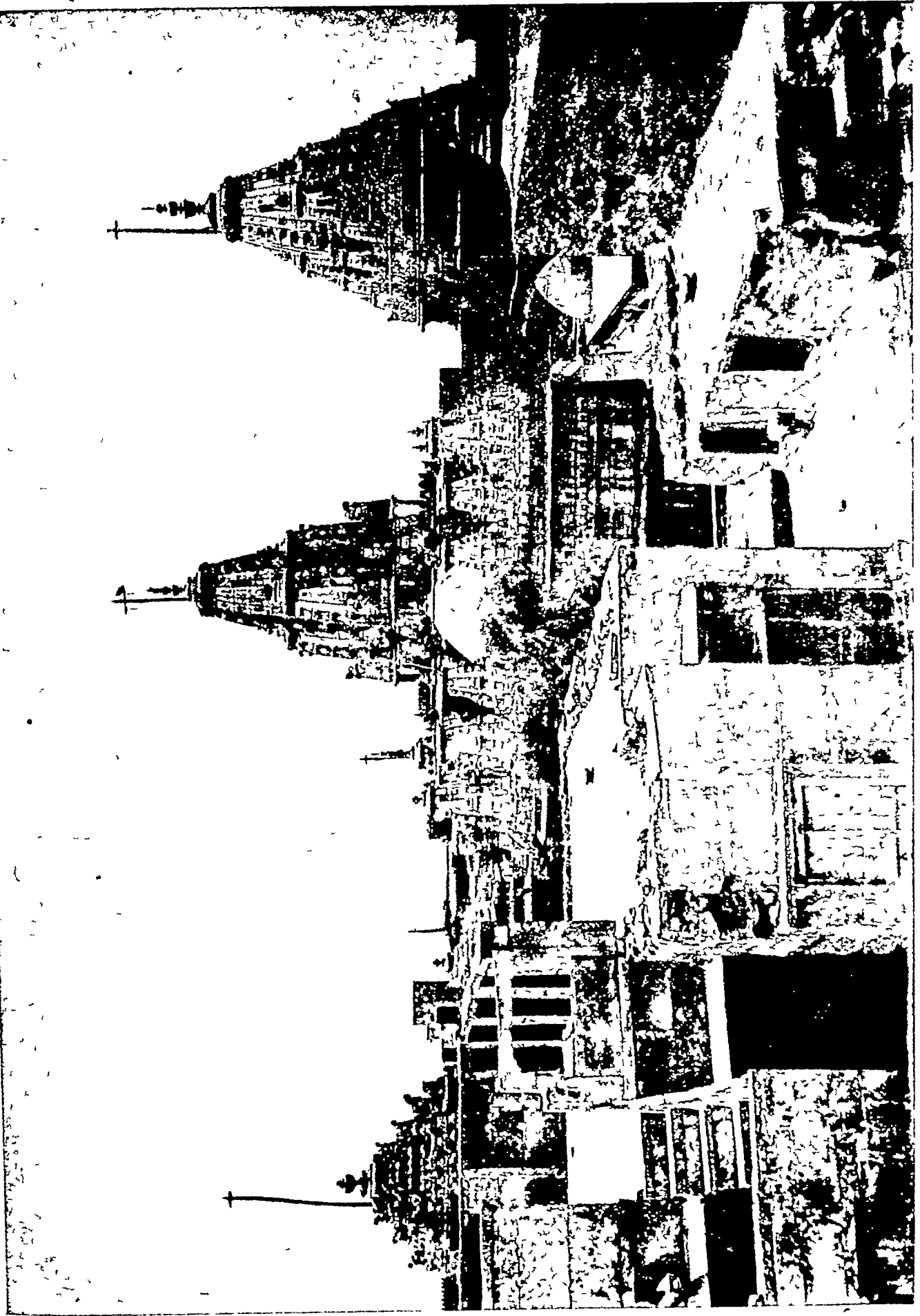
जेसलमेरके किलेमें जैनमन्दिर–मध्यस्थितमन्दिरके भूमिगृहमें ज्ञानभाण्डार है
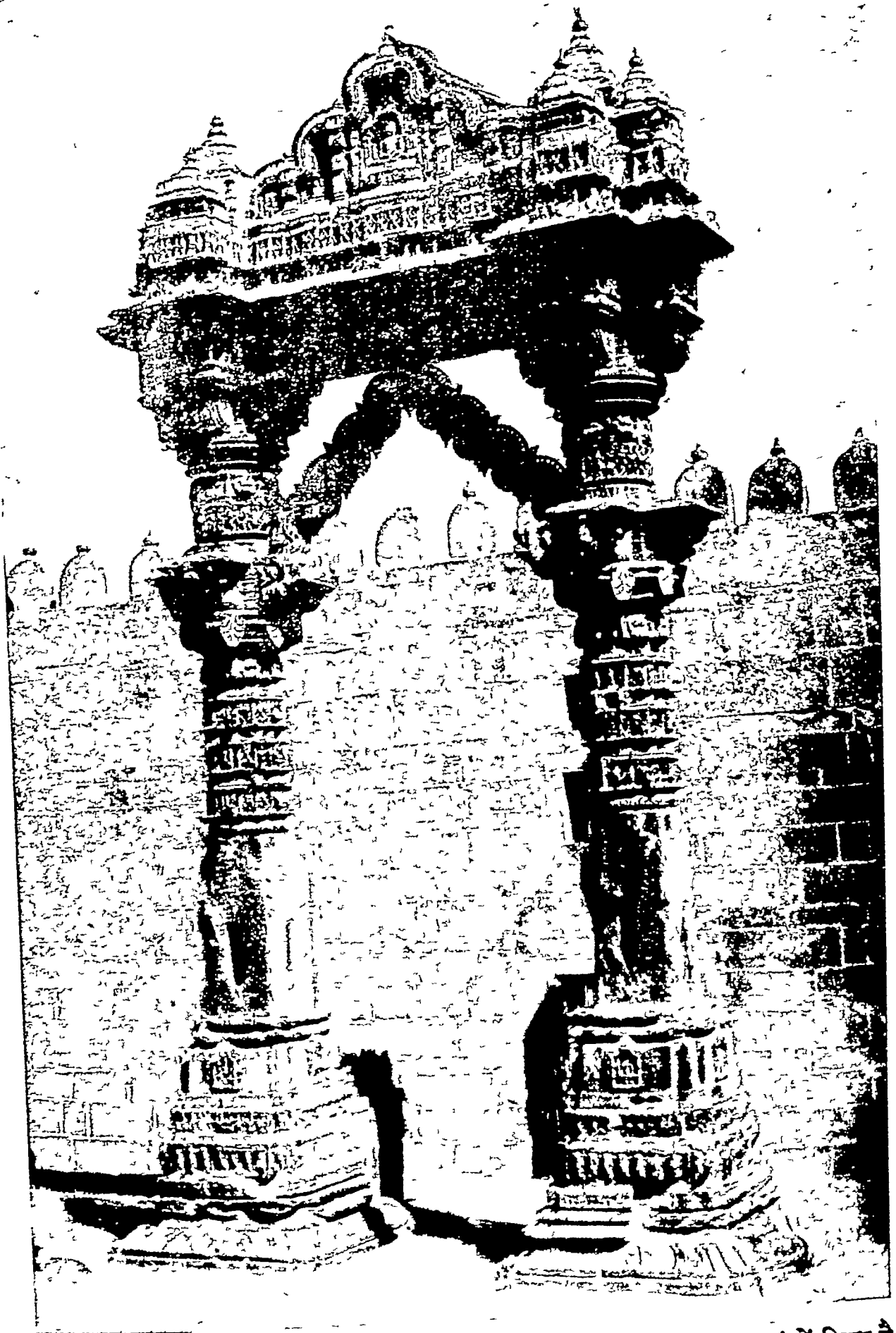
लोद्रवाके जैनमन्दिरका तोरण – जिसका जिक्र सिंघीजीने अपने पत्र (पृ. ६८) में किया है

बना हुआ था। भारतवर्षके किसी भी स्थानके युवकोंने, इसके पहले कभी भी वैसा शौर्य और राष्ट्रप्रेम नहीं बताया जैसा अहमदाबादके युवकोंने इस आन्दोलनके समय बताया। पुलीसकी केवल निर्दय लाठियों ही की नहीं, प्राणघातक गोलियोंकी भी इन युवकोंने कुछ परवा नहीं की। कई बत्तीस लक्षणे युवक इस राष्ट्रयज्ञकी वेदीमें बलिदान हो गये। शहरमें महिनों तक हडताल चलती रही। मिलें भी प्रायः सब बन्ध रहती थीं और मजदूर लोक अपने अपने घर जा कर शान्त हो कर बैठ गये थे। जो कुछ दौड धूप और सरगर्मी दिखाई देती थी वह सरकारके नौकरोंमें और पुलीसके जवानोंमें थी। मेरे अन्तेवासी कुछ छात्र भी फना होनेकी तैयारी करके अपनी सेवा इस आन्दोलनमें देनेको जुड गये। सी. आई. डी. वाले पुराने मित्र, मेरे स्थानकी खबर रखनेके लिये दिनमें दो-चार दफह चक्कर लगा जानेका कष्ट नियमित उठाने लगे। इससे मेरा मन और भी अधिक उत्तेजित होने लगा। प्रतिदिन सैंकडोंकी संख्यामें जेलमें जानेवाले बन्धुओंके अपूर्व उत्साहको देख कर, मुझे अपने आपको इस तरह उदासीन हो कर बैठे रहनेवाली अपनी-निष्क्रिय अवस्था पर ग्लानि होने लगी।

इतनेमें मुझे जेसलमेरसे आचार्य श्रीजिनहरिसागरजी महाराजका एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने वहांके जैन ज्ञानभण्डारका अवलोकन करनेके लिये आनेका सादर आमंत्रण दिया और इस कार्यमें अपनी ओरसे शक्य उतना सहकार देनेका सद्भाव प्रदर्शित किया। इन आचार्य महाराजके साथ मेरा कोई ४-६ महिनोंसे, इस बारेमें पत्रव्यवहार चल रहा था। बीचमें चौमासेके पहले ही जेसलमेर जानेका मैंने विचार किया था, परन्तु उधर सिंघीजीसे मिलनेके लिये अजीमगंज तरफ जाना जरूरी था इससे अभी तक जानेका ठीक अवसर नहीं मिला था। अब चौमासा उतरनेको था और उसके बाद कुछ ही दिनमें आचार्य महाराज वहांसे अन्यत्र विहार कर जानेका विचार कर रहे थे, सो इन्होंने मुझे सूचित किया कि-'यदि आपकी आनेकी इच्छा हो तो यह समय सबसे अच्छा अनुकूल रहेगा' इत्यादि।

जेसलमेरके ज्ञानभण्डारको देखनेकी मेरी इच्छा-इच्छा ही नहीं उत्कट उत्कंठा-बहुत वर्षोंसे हो रही थी। जबसे मैंने गुजरात पुरातत्त्वमन्दिरकी योजना हाथमें ली तभीसे (सन् १९२० से) मेरी अभिलाषा वहां जानेकी और उस भण्डारके ग्रन्थोंको देखनेकी बराबर बनी रही थी। पाटण वगैरहके प्रसिद्ध ग्रन्थ संग्रहोंका तो मैंने बहुत कुछ अवलोकन कर लिया था परन्तु जेसलमेरके भण्डारके देखनेका कोई योग अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था। सन् १९२८ में मैं जब जर्मनी गया और सप्टेंबर महिनेमें, हाम्बुर्गमें, सुप्रसिद्ध जैन साहित्यज्ञ डॉ. हर्मन याकोबीसे प्रत्यक्ष मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो बातचीतमें उन्होंने खास करके मुझसे यह भी पूछा कि-'आपने जेसलमेरके भण्डारको ठीक तरहसे देखा है या नहीं?' इसके उत्तरमें मुझे उनसे यह कहते हुए बडा ही संकोचका अनुभव हुआ था कि-'अभी तक मैं उस स्थानमें जा नहीं पाया हूं।' इस पर उन्होंने, सन् १८७४ में डॉ. ब्युलहरके साथ किस तरह उस भण्डारमेंके कुछ ग्रन्थोंका बडी मुश्किलके बाद जैसा वैसा अवलोकन वे कर पाये थे एवं किस तरह उन ग्रन्थोंके रखनेकी वहां दुर्व्यवस्था उन्होंने देखी थी-इसकी बहुतसी बातें उत्सुकता-

एवं मनोरंजकताके साथ सुनाईं थीं; और मुझसे खास करके प्रेरणा की थी कि 'आपको जा कर एक दफह उस भण्डारको ठीक तरहसे देखना चाहिये और उसमें जो कुछ अलभ्य तथा अपूर्व साहित्य हो उसको प्रकाशमें लाना चाहिये' इत्यादि। फिर जब मैं शान्तिनिकेतन गया और सिंघी जैन ग्रन्थमालाका कार्यारंभ हुआ तबसे तो, इस जेसलमेरके भण्डारके दर्शन करनेकी मेरी उत्कंठा बराबर बढती ही रही थी और उसके लिये किसी अच्छे संयोगके प्राप्त होनेकी, सदैव प्रतीक्षा किये करता था। क्यों कि इतःपूर्व वहांके निवासी किसी सज्जनसे मेरा कोई प्रकारका यत्किंचित् भी परिचय नहीं था और सर्वथा अपरिचित दशामें वहां जानेसे मेरा अभीष्ट कार्य सिद्ध हो सकेगा या नहीं इसकी मुझे पूरी शंका थी। इसलिये जब आचार्य श्रीजिनहरिसागरजी महाराजका वहां चातुर्मास सुना, तो मैंने उनसे इस विषयमें पत्रव्यवहार शुरू किया और उसके परिणाममें, उस भण्डारके देखनेका सुयोग प्राप्त होनेकी मुझे, उक्त रूपसे, उनसे सूचना मिली।

इस सूचनाके प्राप्त होते ही मैंने अपने मनको एकदम जेसलमेर जानेके लिये एकाग्र कर लिया और अहमदाबादसे ता. ३० नवेम्बरको सवेरेकी गाडीसे अपने साथ ४-५ सुयोग्य सहकारी लेखक बन्धुओंको ले कर मैं जेसलमेरको रवाना हुआ। मारवाडके बाहडमेर स्टेशनपर उतर कर, वहांसे ११० मीलकी दूरी पर, रेलकी पटडियोंसे सर्वथा अस्पृष्ट ऐसी १६००० वर्ग मील भूमि पर शासन करनेवाली और जेसाणाके प्रिय नामसे राजपुतानेमें सुख्यात, जेसल भाटीकी बसाई हुई उस जेसलमेर नगरीमें, मोटर लॉरी द्वारा ता. १ डीसेंबरकी सन्ध्याको हम जा पहुंचे। वहां जाते समय मैंने सोचा था कि यदि ठीक सुविधा मिल गई, तो ज्यादहसे ज्यादह कोई एक महिनेमें मैं उस भण्डारका संपूर्ण निरीक्षण कर लूंगा। अतः उसी हिसावसे साथका सब प्रबन्ध कर वहां पहुंचा था। परन्तु, वहां पहुंचने बाद एक महिना तो मुझे वहांकी परिस्थितिसे परिचित होने ही में और वहांके भण्डारके संरक्षकोंके साथ कार्यसाधक संपर्क साधनेमें ही व्यतीत हो गया। उसके बाद मेरा कार्य कुछ सरलतापूर्वक चालू हुआ। फिर तो ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया त्यों त्यों मुझे काम करनेकी अधिक सुविधा मिलती गई और पीछेसे तो जेसलमेरके बन्धुओंने इतना सद्भाव प्रकट किया कि जिससे जेसलमेर मुझे अपना आत्मीय स्थानसा लगने लगा और जिसकी मुझे स्वप्नमें भी आशा नहीं हो सकती थी वैसी, अपने अभीष्ट कार्यमें मुझे सफलता प्राप्त हुई। ज्यों ज्यों मैं भण्डारमें सुरक्षित विशेष विशेष ग्रन्थोंका अवलोकन करता गया, त्यों त्यों मेरा वहां १०-२० या २५-५० ही की नहीं परन्तु छोटे बडे सैंकडों ही ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करने-करानेका लोभ बढता गया। कोई १०-१२ सुयोग्य लेखकोंका अच्छा झुंड बिठा कर पूरे ५ महिनोंमें मैंने इस प्रतिलिपिका कार्य संपन्न किया।

जेसलमेर नरेशका अपूर्व सद्भाव

जेसलमेरके इस साहित्यिक अन्वेषणके साथ, मैंने वहांकी कितनी ही अन्य ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितिके साथ सम्बन्ध रखनेवाली सामग्रीका भी अन्वेषण किया। इन सब बातोंका तो यहां पर परिचय देना प्रासंगिक

नहीं है; परन्तु एक बातका यहां उल्लेख करना मुझे अवश्य कर्तव्य है; और वह है- जेसलमेराधिपति यदुकुलतिलक महाराजाधिराज श्री श्रीमान् जवाहरसिंहजी महारावलजीने मेरे प्रति जो अपूर्व सद्भाव बतलाया उसके लिये उनके प्रति अपना कृतज्ञभाव प्रकट करना। श्रीमान् महारावलजीने जिस आदर, सौजन्य और प्रेमसे मेरा आतिथ्य किया और मुझे अपना एक आत्मीय जनसा मान कर मेरे प्रति वात्सल्यभाव दिखलाया वह मेरे जीवनकी एक अद्वितीय प्रियतर स्मृति है। जेसलमेरके भण्डार आदिका वर्णनवाला एक इतिहासात्मक स्वतंत्र निबन्ध लिखनेका अनुरोध मुझसे सिंघीजीने उसी समय किया था† और उसके लिये मैंने उनसे वचन भी दिया था। उस निबन्धमें जेसलमेरका संक्षिप्त इतिहास, वहांके जैन मन्दिरों एवं जैन ज्ञानभण्डारोंका विस्तृत वर्णन तथा अन्यान्य ऐतिहासिक स्थानोंका परिचय-इत्यादि बातोंके साथ, जेसलमेराधिपति श्रीमान् महारावलजीके सौजन्यशील व्यक्तित्वका कुछ परिचय देनेकी एवं उन्होंने मेरे प्रति जिस जिस प्रकार परम सद्भाव प्रदर्शित किया और वहांके निवास समय जिस तरह मेरा स्नेहपूर्ण आतिथ्य किया, उसका विशेषरूपसे उल्लेख करनेकी मेरी अभिलाषा थी। परन्तु अवकाशाभावसे सिंघीजीकी उस इच्छाका पालन मैं शीघ्र न कर सका और उस निबन्धके देखनेकी आशा ही में वे चल बसे, जिसका आज मुझे बडा खेद हो रहा है।

जेसलमेर जानेकी सिंघीजीको खबर मिलना

मैंने इस प्रकार अकस्मात् जेसलमेर जानेका और वहांके भण्डारका अवलोकन करनेका कार्यक्रम जो निश्चित किया उसकी सिंघीजीको पहले कुछ भी खबर नहीं दी थी। मैंने सोचा था कि जेसलमेर जाने पर वहां कुछ अपने कार्यमें सफलता मिले तो फिर उनको इसकी खबर दूं, वरना यों ही खबर देनेसे उनको क्या प्रसन्नता होगी। सो प्रायः डेढ-पोनेदो महिने तक तो मैंने उनको इस विषयमें एक अक्षर भी नहीं लिखा। मैं बंबई हूं या अहमदाबाद हूं इसका भी उनको पता नहीं था। परन्तु, मैं अपनी प्रवृत्तिके समाचार बीच-बीचमें पण्डितजीको बनारस लिखता रहता था, सो पण्डितजीने मेरे जेसलमेरके कुछ पत्र प्रसङ्गोपात्त सिंघीजीको अजीमगंज पढने भेज दिये। इससे उनको यह सब हाल मालूम हुआ और उससे उनकी जिज्ञासा बढी कि मैं कब जेसलमेर जा पहुंचा और वहां जा कर किस तरह भण्डारका अवलोकन करना शुरू किया एवं उसके करनेमें मुझे कैसा अनुभव प्राप्त हो रहा है-इत्यादि। क्यों कि वे भी कुछ वर्ष पहले जेसलमेरकी यात्रा कर गये थे और उस भण्डारके ऊपर ऊपरसे दर्शन भी कर चुके थे। वे स्वयं बडे चतुर निरीक्षक थे इसलिये उनको भण्डारकी अव्यवस्था आदि देख कर मनमें खेद ही हुआ था। सो उन्होंने अपना अनुभव और मनोभाव बतलानेके लिये स्वयं अजीमगंजसे ता. ५. १. ४३ को अच्छा लंबासा, नीचे दिया हुआ, मुझे पत्र लिखा-

श्रद्धेय श्री मुनिजीकी सेवामें, ५. १. ४३

सविनय प्रणाम। बहुत दिनोंसे आपका कोई पत्र नहीं। आपने कब जेसलमेर जानेकी ठान ली यह भी मुझे मालूम नहीं। पंडितजीके पत्रसे मालूम हुआ कि आप वहाँ जा

† इसका जिक्र सिंघीजीने मेरे परके अपने अन्तिम पत्रमें भी किया है।

विराजे हैं। बल्कि उन्होंने आपका उन पर आया हुआ पत्र भी मुझे देखनेको भेज दिया है कि जिसे पढ़ कर वहाँकी सारी परिस्थितिसे वाकिफकार हो जाऊँ।

वहाँकी परिस्थितिका अनुभव कुछ तो हमें पहले भी था। हम जब सं० १९८६ में वहाँ गये थे तब भोंयरेके भण्डारके तीन या चार चावीवालोंको एकत्रित कराके भण्डार खुलवा कर देखा था, बस देखने ही भर था, और तो हम भी क्या समझते? आध घण्टे देख सुन कर बाहर निकल आये। ज्ञानकी पूजा कर दी। इतना तो जरूर देखा, प्राचीनकालके भण्डार स्थापन करनेवाले इसे कितने यत्नके साथ, पाषाणकी पेटियों और आलमारियोंमें भोंयरेके अन्दर, सुरक्षित रखनेका प्रबन्ध कर गये थे और अब उन्हींके वारिस अपढ़ और उज्जड़ लोगोंके हाथमें आ कर इसकी कैसी दुर्दशा हो रही है। हमारे धर्म, साहित्य और समाजका अमूल्य रत्न ऐसे लोगोंके अधीन है कि जो उसके महत्त्वका कुछ अंश भी नहीं समझते। आपने लक्ष किया हो तो जरूर देखा होगा कि एक कोनेमें अनेकों पुस्तकोंके दो दो चार चार अलग पानोंका ढेर झाडूसे बटोर कर रखा हुआ है। पूछनेसे मालूम हुआ कि जब कभी पुस्तकें धूपमें दी जाती हैं तब हवासे उड़ कर उनके पाने इधर उधर हो जाते हैं। कुछ तो जहाँ के तहाँ रख दिये जाते हैं, कुछ जो समझमें नहीं आते कि कहाँके हैं, वे ऐसे ढेर कर दिये जाते हैं। इस रीतिसे वह ढेर बढ़ता जाता है। न मालूम उनके इस अनाड़ीपनसे कितनी ही अमूल्य और अद्वितीय पुस्तकें त्रुटित हो गई होंगी। पुस्तकें त्रुटित होनेका यही कारण है। भण्डार करनेवालेने त्रुटित ग्रन्थ कभी भण्डारमें नहीं रखवाया होगा। अब आपका स्वास्थ्य अगर सहायक हो, और आप वहाँ कुछ रोज जम कर बैठ सकें तो हमें पूरी आशा है कि आप उस अपूर्व ग्रन्थ भण्डारमेंसे कुछ ऐसे रत्न चुन कर जरूर लावेंगे जो 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' को अधिक सुशोभित करेंगे और जैन साहित्यके कितनेक अज्ञात तथा अप्रकाशित ग्रन्थोंको प्रकाशमें लावेंगे।

मालूम नहीं आप पहले भी कभी जेसलमेर गये थे या नहीं। वहाँकी प्राचीन राजधानी लोद्रवामें अपना जैन मन्दिर भी एक स्थापत्य शिल्पका अपूर्व और अद्वितीय नमूना है, जो अवश्य देखने योग्य है। उसका तोरण जो अब तक अखण्ड है बड़ा ही सुन्दर है। प्रतिमाएँ भी बड़ी मनोहर हैं। परन्तु उन पर चक्षु, टिला, गलबन्ध (collar), कपालपट्ट, ठुड्डीमें हीरा आदि आदि न मालूम कितने उपसर्ग लगा कर उनकी मनोहरताको नष्ट कर दिया गया है। मन्दिरमें भी कबूतर हगते होंगे, साफ करनेका कोई प्रबन्ध नहीं, परन्तु फिर भी दर्शनीय है।

आज हमने श्रीमुंशीजीको एक पत्र लिखा है जिसकी नकल आपकी फाईलके लिए भेजते हैं। मेरी तरफसे अब कोई बात-यानी कर्तव्य बाकी नहीं रहा। अब वे लोग उसे कानूनी तौर पर ले कर (Take over) कार्य चालू कर दें तो हो जावे।

और यहाँ सब कुशल है, आपके स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा वहाँके कुछ कुछ हालात बीच बीचमें अवसर देख कर लिखनेकी कृपा करें। सब कोईका प्रणाम मालूम करें।

आपका विनीत—**बहादुरसिंह**

—इस पत्रके पढनेसे ज्ञात होगा कि सिंघीजीको हमारे साहित्य और स्थापत्यकी महत्ताका, एवं रक्षाका कितना ऊंचा खयाल था और हमारे अज्ञान समाजकी ओरसे

होनेवाली उसकी उपेक्षा और दुर्व्यवस्थाको देख कर उनको कैसा दुःख होता था। जेसलमेर जानेसे और वहांके भण्डारको देख कर उसमेंसे अलभ्य-दुर्लभ्य ग्रन्थोंके प्राप्त करनेसे, मुझे तो आनन्द होना स्वाभाविक ही था; पर उनको भी इससे कितना आनन्द हुआ था इसका खयाल इस पत्रके पढनेसे अच्छी तरहसे आता है। ज्ञानके उद्धार और साहित्यके प्रकाशके लिये ऐसी तीव्र उत्सुकता और ऐसी उच्च भावना रखनेवाला अन्य कोई धनिक जैन, वर्तमान समयमें मेरे देखने सुननेमें तो नहीं आया।

सिंघीजीका यह पत्र पा कर, फिर मैंने यथावकाश एक विस्तृत पत्र उनको लिखा जिसमें किस तरह बम्बई-अहमदाबादमें, वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलनके कारण मेरा मन क्षुब्ध हो रहा था और फिर किस तरह अकस्मात् जेसलमेर आ पहुंचना हुआ एवं किस तरह यहां पर कार्यको गति देनेके लिये अब तक क्या क्या प्रयत्न करना पडा-इत्यादि सब बातोंका खुलासावार वर्णन किया गया था। खेद है कि उस पत्रकी प्रतिलिपि मेरे पास नहीं है। हो ती तो उसका उद्धरण यहां पर खास करने जैसा था। उसी पत्रमें उनको खर्चके लिये कुछ रूपये भेजनेकी भी सूचना की थी। इस पत्रके उत्तरमें उन्होंने ता. १. २. ४३ को निम्नलिखित पत्र मुझे भेजा जिसमें खर्चके लिये रूपये भेजनेकी तथा मेरे पत्रको पढ कर उनको जो आनन्द आया उसकी सूचना थी।

श्रद्धेय श्री मुनिजीकी सेवामें

सविनय प्रणाम. आपका कृपापत्र ता. २०. १. ४३ का जेसलमेरसे लिखा आया। पत्र विशेष उत्साहजनक और मनोरंजक है। इसका उत्तर तो अवसर मिलने पर लिखेंगे। वर्तमानमें तो आपने रूपया मंगवाया इसके पहुँचनेमें विलम्ब न हो, इस विचारसे यह छोटासा नोट लिख कर भेज रहा हूँ। सौ सौके नोट वहाँ जैसे स्थानमें भुंजानेमें कष्ट न हो इस विचारसे दस दसके ही भेजे हैं। भाई शंभूको १५००) आपके लिखे अनुसार भेज दिये हैं।

पूज्य माजीकी तबीयत वैसी ही है। उनका तथा और सबोंका प्रणाम। यहाँ सब मजेमें हैं। आप अपने कुशल समाचारसे अनुगृहीत करते रहें। इस दफे आपको अपना मनोवाछित कार्य तो मिल गया है। मगर उसके आवेशमें आप अपने स्वास्थ्यका ध्यान भुला न दें। उसी पर सब निर्भर है। विशेष फिर। श्रीमुंशीजीसे पत्र-व्यवहार चल रहा है। सं० १९९८ माघ व० ११ आपका विनीत-बहादुरसिंह

इस पत्रमें लिखित सिंघीजीकी उस व्यावहारिक बुद्धिमत्ता और अनुभवदर्शिताका भी नोट करने जैसा है जिसमें उन्होंने रूपये भेजते समय १००-१०० के नोटकी जगह १०-१० के छोटे छोटे नोट भेजना सूचित किया है। सचमुच ही जेसलमेरमें उस समय सौ रूपयेका नोट भंगाना बडा तकलीफ देनेवाला काम था। सौके नोटके पीछे वहां रूपया-बारह आना बटावका देना पडता था। कभी कभी तो किसी बेचारे भोले भाले आदमीको ५ रूपये तकका बटाव देनेकी नोबत आती थी। कैसी छोटी छोटी परन्तु समय पर महत्त्वकी बन जानेवाली बातों पर सिंघीजीका कितना सूक्ष्म खयाल रहता था यह इससे सूचित होता है।

मेरा जेसलमेरका निवास

सिंघीजी मेरे स्वास्थ्यकी शिथिलतासे अच्छी तरह परिचित थे इससे उनको हमेशां इस बातका खयाल रहता था कि कहीं उत्साहमें आ कर मैं अपनी शक्तिसे अधिक परिश्रम करने न बैठ जाऊं और बीमार न हो जाऊं। इसलिये वे हमेशां इस विषयमें मुझे सावधान किया करते थे। पर मेरी स्थिति इससे उलटी हो जाती थी। उनका इस प्रकारका अनन्य उत्साह और सद्‌भाव देख कर मेरा उत्साह और भी अधिक बढ जाता था और मैं अपने कार्यमें विशेषरूपसे व्यग्र हो जाता था। जेसलमेर जाने पर एक तो कोई महिने-डेढ-महिने बाद मुझे अपनी सुविधानुसार भण्डारका अवलोकन करनेकी सरलता प्राप्त हुई और फिर उसी समय सिंघीजीके ऐसे प्रोत्साहनदायक पत्र मिले। इससे मेरा मन अत्यधिक उत्साहित हुआ और मैं दिन-रात काम करनेमें व्यस्त हो गया। प्रातःकालके करीब ४ बजे उठ कर काम शुरू किया जाता था जो रातको १० बजे तक चलता रहता था। बीचमें खाने-पीने आदिके निमित्त कोई सब मिल कर दो घंटे अन्य कार्यमें व्यतीत किये जाते थे, बाकीका सब समय लेखन-संशोधनमें दिया जाता था।

वहां पर एक-एक घंटा भी मुझे एक-एक दिनके जैसा महत्त्वका लग रहा था। अपनी हमेशांकी आदतके मुताबिक मैं हर तीसरे चौथे दिन दाढी बनानेका आदी बना हुआ हूं। परन्तु इस तरह सप्ताहमें दो दिन दाढी बना कर, घंटा-डेढ घंटा उसके लिये खराब करना, वहां मुझे सहन न होने लगा। सो मैंने, कुछ जेलनिवासियोंकी तरह, दाढीका बनाना बन्ध कर उसका बढाना पसन्द किया। वह दिन रात बढने लगी।† प्रारंभमें मुझे अपना चेहरा कुछ विचित्रसा लगने लगा पर मैंने यह सोच कर समाधान कर लिया कि यहां जेसलमेरकी इस निर्जन मरुभूमिमें, कौन ऐसा जान पहचानवाला या मिलने जुलनेवाला विशिष्ट व्यक्ति मिलेगा जो मेरी इस नई दाढीके कारण दिखनेवाली विचित्र सूरतकी समीक्षा करना चाहेगा। इस प्रकार दो-ढाई महिनेमें तो मेरी दाढी ठीक ठीक बढ गई। मैंने उसका फोटू भी लिवाया और सिंघीजीको तथा अन्य मेरे निकटतम व्यक्तियोंको कौतूहलकी दृष्टिसे उसे देखनेको भेजा। सिंघीजीको उसे देख कर बडा कौतूहल हुआ और उन्होंने अपने एक पत्रमें लिखा कि आपने ठीक "जैसा देश, वैसा भेष" वाली कहावतको चरितार्थ करना आरंभ किया है।'

---

† तब दिलमें यह भी खयाल आया कि यदि ४-६ महिने जो यह इसी तरह विना विघ्न बाधाके बढती रही, तो जब मैं वापस अपने स्थान पर पहुंचूंगा तब एक अच्छा दाढीवाला हो कर बुजुर्गकी हैसियतसे अपने स्नेहिजनोंके बीच, शायद और भी अधिक सम्मानका भाजन बन सकूंगा और फिर सदाके लिये यह जेसलमेरकी दाढी मेरी महत्ताको बढाती रहेगी। हर तीसरे-चौथे दिन उठ कर सेविंग करनेका संकट टलेगा – ब्लेड वगैरहका खर्च मिटेगा। ये थे शेखचिल्लीकेसे ही विचार; पर इन विचारोंसे भी एक प्रकारका मनमें आनन्द आ रहा था और मेरे आनन्दका अनुभव लेनेके लिये मेरे साथी अध्यापक श्रीयुत के. का शास्त्री – जिनको अहमदाबादकी गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटीने, मेरे सहायकके रूपमें, मेरे साथ भेजा था – वे भी अपनी दाढी बढाने लगे!

यों, ज्यों ज्यों मेरी दाढी बढती गई त्यों त्यों (शायद उसीके प्रभावसे हो) जेसलमेरमें मेरी ख्याति भी बढती गई। इसके परिणामसें, एक दिन मुझे श्रीमान् महारावलजीकी ओरसे, मिलनेके लिये सादर आमंत्रण देनेको, श्रीमान्‌के प्राइवेट सेक्रेटरी, मेरे डेरे पर आ उपस्थित हुए। छत्रपतिकी आज्ञाका पालन करना मेरा कर्तव्य हुआ और दूसरे दिन मैंने राजमहलमें उपस्थित होनेकी इच्छा प्रदर्शित की। विचारी दाढी पर संकट आ गया। क्यों कि उस विचित्र सूरतमें श्रीमान् महारावलजी जैसे राज्याधिपतिसे मिलने जाना मुझे असांस्कारिक लगा। 'विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि राजद्वाराणि' इस राजनीतिशास्त्रकी शिक्षाका स्मरण करते हुए, मैंने उसी दिन, नापितको बुला कर उस दाढीका वपन कराया और इस तरह फिर मैंने अपनी उस असली सूरतको अपनाया।

जेसलमेरके ग्रन्थोंकी रक्षाके लिये सिंघीजीकी उदारता

जेसलमेरके भण्डारमें जो ताडपत्रके ग्रन्थ रखे हुए है वे पुरानी पद्धतिके ढंगसे मामुली कपडेके वस्त्रोंमें बन्धे पडे हैं। उन पर जो लकडीकी पट्टियां दे रखी है वे भी बडी बेडोल और बिना मापकी है। पुस्तकोंके बान्धने छोडनेका कोई अच्छा इन्तजाम नहीं है। नाही कोई खास आदमी उस कामको करनेवाला है। जितनी भी दफह ये ग्रन्थ खोले जाते है उतनी ही दफह कुछ-न-कुछ पन्ने इनमेंसे इधर उधर होते रहते हैं और टूटते रहते हैं। एक पोथीके पन्ने दूसरी पोथीमें मिलते रहते है और इस तरह प्रायः बहुतसे ग्रन्थ त्रुटित बनते जाते हैं। मैंने यह हालत देख कर भण्डारके संरक्षकोंसे कहा, कि जैसे पाटन और खंभात वगैरह स्थानोंके ताडपत्रीय ग्रन्थोंकी सुरक्षाके लिये, प्रत्येक ग्रन्थको अलग अलग लकडीकी अच्छी सुन्दर पेटीमें, ऊपर नीचे सफाईदार पाटली लगा कर रखनेका प्रबन्ध किया गया है वैसा ही इन ग्रन्थोंके लिये करनेसे, इनकी रक्षा अच्छी तरहसे होगी और ये यों बुरी तरहसे नष्ट होनेसे बच सकेंगे। तब उन पंचोंने कहा कि—'यह काम तो आप ही यदि कृपा करके कर सकें तो हो सकता है। वरना हमारे तो सामर्थ्यके बहारकी यह बात है। कुछ दिन बाद तो वे फिर इस कामके करने-करानेका मुझसे खूब आग्रह ही करने लगे। श्रीमान् महारावलजीके जाननेमें यह बात आई तो उन्होंने भी मुझसे इस कार्यके करा देनेका सादर अनुरोध किया। तब मैंने सिंघीजीको इस विषयसे लिखा और भण्डारके ग्रन्थोंकी रक्षाके लिये उनकी ओरसे लकडीकी पेटियां आदि बना दी जांय तो वह भी एक बडा पुण्यदायक कार्य होगा और ग्रन्थोंके प्रकाशनकी जितनी ही ग्रन्थोंके संरक्षणकी भी पूरी आवश्यकता है इसका उनको खयाल दिलाया। इसके उत्तरमें, उन्होंने तारसे मुझे उस कार्यको करने-करानेकी अपनी सम्मति भेजी। उसके खर्चके लिये मैंने कोई हजारेक रूपयोंका अन्दाजा लिखा था सो उन्होने मंजूर कर लिया। जेसलमेरके संघने सिंघीजीकी इस उदारताके लिये उनको (ता. १२. ४. ४३) धन्यवादका एक सादर पत्र लिखा। सिंघीजीकी स्वीकृति मिलने पर मैंने वहांके सुथार मिस्त्रीको बुलाया और उसको नमूनेके लिये दो चार पेटियां बनानेकी कल्पना दी, तो वह बोला 'जिस सागकी लकडीकी आप बात करते हैं उसका तो एक ४-६ इंच-

जितना भी टुकडा आपको यहां जेसलमेरमें नहीं मिल सकता; तो फिर २-४ पेटियां बनानेकी तो वात ही कैसे की जाय ?' इधर उधर सब जगह तलायश करने पर यही पता चला कि जेसलमेरमें ऐसी पेटियां वनानेकी कोई सामग्री नहीं है। वह सब सामग्री कहीं बाहरसे लानी चाहिये और इस महायुद्धके आपत्कालमें वह संभव नहीं है। हो गया, भण्डारके ग्रन्थोंकी रक्षाका जो मनोरथ मेरे मनमें उत्पन्न हुआ था वह तत्काल तो वहीं विलीन हो गया। जेसलमेरके संघको मैंने आश्वासन दिया कि लडाईके वाद यदि फिर संयोग बना तो मैं आ कर इस कार्यको करनेकी कोशीश करूंगा।

जेसलमेरसे प्रस्थान

इस तरह पूरे ५ महिने मैंने जेसलमेरमें व्यतीत किये। इतने समयमें मैंने न केवल किलेमेंके बडे ज्ञानभण्डारका ही अवलोकन-अन्वेषण आदि कार्य किया; अपि तु आचार्यगच्छीय भण्डार, थेरुशाहका भण्डार, तपागच्छीय भण्डार, बडे उपाश्रयमें रक्षित यतिवर्य श्रीवृद्धिचन्द्रजी एवं उनके शिष्यवर्य पं० श्रीलक्ष्मीचन्द्रजीका भण्डार तथा यतिवर्य श्रीडूंगरसीजीका भण्डार-इत्यादि सभी छोटे बडे भण्डारोंका मैंने निरीक्षण किया। लोंकागच्छीय उपाश्रयका ज्ञानभण्डार, जिसको आज तक कभी किसीने नहीं देखा था, उसको भी मैंने देखा। इन सब भण्डारोंमेंसे, मेरी दृष्टिसे मुझे जो कुछ नवीन और अधिक उपयोगी साहित्यिक सामग्री मालुम दी उसकी हस्त प्रतिलिपियां तथा टिप्पणियां वगैरह तैयार कीं। कोई छोटे बडे २०० ग्रन्थोंकी संपूर्ण प्रति लिपियां कराई गई। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्राचीन देश्य भाषामें ग्रथित न्याय, व्याकरण, आगम, कथा, चरित्र, ज्योतिष, वैद्यक, छन्द, अलंकार, काव्य, कोष आदि विविध विषयोंकी रचनायें इसमें अन्तर्भूत हैं। ताडपत्र पर लिखित प्राचीनतम प्रतियोंकी भिन्न भिन्न प्रकारकी लिपियोंकी तथा उनमें प्राप्त चित्र आदिकोंकी प्रतिकृतियां लेनेकी दृष्टिसे पचासों ही फोटोप्लेट भी उतरवाये गये। इस कार्यमें, श्रीयुत प्रो० केशवराम का. शास्त्री, पं० अमृतलाल, पं० शान्तिलाल सेठ, पं० मूलचन्द व्यास आदि मेरे साक्षर साथियोंने तथा अन्य कई लेखकोंने पूर्ण उत्साह एवं बडी एकाग्रताके साथ मेरा हाथ वंटाया और मुझे सफल मनोरथ बनाया।

प्रायः ३५०० लगभग इस कार्यमें अर्थव्यय हुआ। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि यह कार्य 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के लिये ही किया गया था और इसका यह सारा खर्च सिंघीजीकी ओरसे ही हुआ था।

जेसलमेरके केवल जैन संघने ही नहीं, सभी ग्रामवासियोंने मेरे और मेरे साथियोंके प्रति अच्छी तरह प्रेमभाव प्रदर्शित किया। जैन संघने तो हमको एक आतिथ्यपूर्ण सत्कार समारंभसे सम्मानित भी किया।

ता. २९ अप्रेलको सायंकाल ४ वजे करीब जेसलमेरसे हमने विदाय ली। श्रीमान् महारावलजीने आज्ञा की थी, कि वे खुद अपने महलोंमेंसे, अपनी निजकी मोटरमें बिठा कर मुझे विदा करेंगे। तदनुसार मैं उनकी सेवामें उपस्थित हुआ और आधा घंटा वातचीत आदि करके उन्होंने बडे प्रेम और सद्भावसे मुझे विदा किया। मेरे

जेसलमेरमें लेखक

[दाढीवाला स्वरूप]

जेसलमेरमें ग्रन्थान्वेषण करनेवाला लेखकका सहायक मंडल

साथकी पार्टीको भी दूसरी दरबारी लॉरीमें बिठा कर स्टेशन पर पहुंचानेकी आज्ञा की। रातको १० बजे हम मारवाड राज्य (जोधपुर)के रामदेवरा स्टेशन पर पहुंचे। दूसरे दिन प्रातःकालकी गाडीसे रवाना हो कर ता. १ मईको १२ बजे वापस अहमदाबाद पहुंचे।

मेरा तत्काल बम्बई जाना और सिंघीजीका भी वहां आ पहुंचना!

जैसा मैं अहमदाबाद पहुंचा कि उसके दूसरे ही दिन बंबईसे श्रीमुंशीजीका बहुत जरूरी पत्र मिला जिसमें इन्होंने भवनके एक आन्तरिक प्रबन्धकी समस्याके लिये मुझे तत्काल बंबई आनेकी सूचना दी। ता. ३, मईको रवाना हो कर मैं बंबई पहुंचा। दो-एक दिन स्वस्थ हो कर मैं सिंघीजीको पत्र लिखनेका विचार कर रहा था, उतनेमें ता. ६ की रातको ८ बजे मुंशीजीका मुझे टेलीफोन मिला कि 'सिंघीजी आज कलकत्तेसे यहां पर, सेठिया ब्रधर्सके वहां लग्नप्रसङ्गके सबबसे आये हैं, और अमुक जगह ठहरे हैं।' मैंने तुरन्त वहां पर फोन किया और उनकी खबर निकाली। मेरी इस तरह बम्बईमें अचानक उपस्थिति जान कर उनको आश्चर्य हुआ। क्यों कि वे समझते कि मैं तो शायद अभी तक जेसलमेरमें ही बैठा हूं। इस प्रकार अकस्मात् उनका और मेरा बंबई आ पहुंचना—हम दोनोंको बडा हर्षदायक हुआ। दूसरे दिन सवेरे ही हम दोनों, उनके स्थान पर मिले और फिर तुरन्त मुंशीजीके मकान पर जा पहुंचे। उसी दिन, उसी समय, भवनके लिये यह जो नया मकान (हारवे रोड पर) किराये पर लिया गया, उसमें वास्तुविधि करनेका मुहूर्त था। सो हम सब सिंघीजीको साथ ले इस मकानमें आये और उनकी उपस्थितिमें मंगलकर वास्तुमुहूर्त संपन्न हुआ। मेरे मनमें उसी क्षण यह भाव उठा था, कि सिंघीजी जैसे पुण्यवान् मनुष्यकी जो इस प्रकार, इस शुभ मुहूर्तमें, ऐसी अकस्मात् और अकल्पित उपस्थितिका हमको लाभ प्राप्त हुआ है, इससे इस स्थानमें, भवनका भावी जरूर सविशेष अभ्युदयकारक होना चाहिये।

इसके बाद, यथावसर वारंवार मेरी, मुंशीजीकी और सिंघीजीकी मीटींगे होने लगीं और 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' का भवनके साथ जो संयोजनीकरण करनेका पिछले १०-१२ महिनोंसे विचार-विनिमय और पत्रव्यवहारादि हो रहा था, उसका सब कुछ, प्रत्यक्षमें बैठ कर आखिरी निर्णय कर लेनेकी बातें सोची जाने लगीं। पण्डितजीको भी बनारस तार दे कर बंबई बुला लिया गया और इस तरह हम चारोंने साथमें बैठ कर, ता. ११ मईको ग्रन्थमाला और भवनके सम्बन्धका अन्तिम निर्णय किया और उसके लिये लिखे गये एग्रीमेंटके दस्तावेज पर, सिंघीजीने अपने शुभ हस्ताक्षर कर उसको प्रमाणित बनाया।

भवनके सब प्रमुख सदस्योंका सिंघीजीको परिचय करानेके लिये, मुंशीजीने एक दिन अपने वहां चहापार्टीका आयोजन किया तथा एक दिन सबको भोजनके लिये भी आमंत्रित किया गया। इस तरह अपनी ग्रन्थमालाको भवनके हाथमें समर्पण कर सिंघीजी निश्चिन्त बने और उसकी भावी प्रगतिके विषयमें मुझको प्रोत्साहित देख कर प्रसन्न हुए। सब कार्य संपन्न होने पर ता. १२ मईको नागपुर मेलसे वे कलकत्ताको रवाना हुए।

बंबईकी यह उनकी अन्तिम यात्रा थी। ६-७ दिन वे यहां पर इस समय रहे थे। बहुतसा समय प्रायः उनका मेरे और पण्डितजीके सहवास ही में व्यतीत होता था और हमारे बीचमें अनेक प्रकारकी बातेंचीतें होती रहती थीं। जेसलमेरके मेरे साहित्यिक और सांस्कृतिक आदि कार्यकी पूरी हकीकत तथा वहांके मेरे विविध अनुभव सुन कर बडे खुश हुए और उन सब बातोंका एक विस्तृत वर्णनात्मक प्रबन्ध लिख कर यथाशक्य शीघ्र छपा देनेका मुझसे सविशेष अनुरोध किया।

भवनकी दिनप्रतिदिन होती हुई प्रगतिको देख कर उनको खूब सन्तोष हुआ और बोले कि 'इस कार्यको देख कर हमारा भी मन होता है कि हम भी सालभरमें कुछ महिने यहां बंबई आ कर रहें और आपलोगोंके सहवासमें अपना समय आनन्दमें व्यतीत करें। हमें कलकत्तेमें अब और किसी प्रकारका तो कोई बंधन है नहीं। सिर्फ मांका हमें एक विशिष्ट बन्धन है। जब तक वह बैठी है तब तक हम उनको छोड कर कहीं अधिक दिन रह नहीं सकते। जिस दिन मां न होगी उस दिन फिर हम सर्वथा बन्धनमुक्त हैं।' बोरीबन्दर स्टेशन पर जब मैं उनको पहुंचाने गया तब उन्होंने अपना यह भाव प्रकट किया था। परन्तु इसके विपरीत, क्रूर कालके मनमें क्या था इसकी किसीको कल्पना थोडी ही थी।

कलकत्ते पहुंच कर उन्होंने अपने कुशलसमाचार सूचक निम्नलिखित पत्र लिखा।

सिंघीपार्क
बालिगंज, कलकत्ता
ता. १६, मई. १९४३

"सविनय प्रणाम. हम परसों तीन बजे यहां पहुंचें। रास्तेमें गरमीका तो कहना ही क्या? आज अजीमगंज जा रहे हैं।

श्रद्धेय श्रीपण्डितजीको मेरा सविनय प्रणाम निवेदन करियेगा। उनकी तथा आपकी तबियत ठीक होगी। आप लोगोंके साहचर्य्यमें हमारे दो-तीन रोज बडे आनन्दसे निकल गये, नहीं तो हम शादीके दूसरे ही रोज भागनेवाले थे। मुन्शीजीको भी कल एक पत्र लिखा है। सं० २०००, वैशाख सु० १३" आपका विनीत

बहादुरसिंह

सिंघीजीका हाथका लिखा हुआ अन्तिम पत्र

इसके बाद ता. ११. ८. ४३ का लिखा हुआ सिंघीजीका एक पत्र मुझे मिला जिसमें उन्होंने खास करके जेसलमेरमें मैंने जो ग्रन्थभण्डारका अन्वेषणकार्य किया उसका विवरणात्मक एक प्रबन्ध लिख कर उसे 'भारतीय विद्या' पत्रिकामें प्रकाशित करनेकी अपनी विशिष्ट इच्छा प्रदर्शित की थी। एक प्रकारसे सिंघीजीका मुझ पर यह अन्तिम पत्र था। इसके बाद उनके खुदके हाथका लिखा हुआ कोई पत्र मुझे नहीं मिला। हालां कि उसके बाद दो दफह उनसे प्रत्यक्ष भेंट हुई थी। वह पत्र इस प्रकार है-

श्रद्धेय श्रीजिनविजयजी

सविनय प्रणाम. बम्बईसे आनेके बाद आपको मैंने शायद कोई पत्र नहीं लिखा। आपने पूज्य पिताजीका नया लाइन ब्लॉक बनवानेके लिये, उनका एक लाइन ड्रॉईंग बनवा कर भेजनेको कहा था। सो अब तक नहीं भेज सके। कारण हमारे artist की स्त्रीको थाइसीसकी बिमारी हो गई है सो वो करीब करीब अपने मुल्कमें ही रहता है। हम भी करीब डेढ महीनेसे कार्यवशात् कलकत्तेमें हैं। आप इस वख्त कहां है मालूम नहीं। यहां कलकत्तेमें फाईल देखते देखते एक लाइन ब्लॉकका printed copy मिल गया; देखा तो मालूम हुआ कि यह नया बनवाया हुआ है। मगर बहुत तालाश करने पर भी न तो इसका original drowing मिला और न इसका Block, मालुम नहीं कहां गुम हो गया। जो कुछ भी हो यह drowing अगर आपको पसन्द हो तो इसीसे फिर Block बनवा कर काम चल सकता है। न मालुम क्यों और कब इस Block को बनवा कर इसे यों ही रख छोडा गया। हमें तो इसमें कोई ऐब नजर नही आती। आप अगर पसन्द करें तो इसीसे ब्लॉक बनवा कर काममें लाना शुरू कर दें।

हमारी यह इच्छा आपसे प्रकट की थी कि आपके जेसलमेरके प्रवासका एक संक्षिप्त विवरण 'भारतीय विद्या' में प्रकाशित कर दें, ताकि इस विषयमें रस लेनेवाले लोगोंको यह जाहिर हो जाय कि आपने वहां जा कर क्या क्या देखा, क्या क्या कठिनाईयां झेलीं, कैसे कैसे उन सबोंको हल किया, किसकी सहायता मिली, कैसे कैसे अमूल्य ग्रन्थ भण्डारोंमें पड़े पड़े सड़ रहे हैं, उनके उद्धारका आंशिक रूपमें आपने कितना कार्य किया आदि आदि। अगर आपने इस विषयमें कुछ लिखा हो तो जरूर प्रकाशित करें।

यहां तथा अजीमगंजमें सब कुशल हैं। आपका स्वास्थ्य इन दिनों ठीक रहता होगा। नथमलजी इधर आये हैं उनके साथ श्रीपण्डितजीका पत्र मिला। उनको Carbuncle हो गया था सो उसी पत्रसे मालुम हुआ। अब ठीक है, उनको अलग पत्र दे रहे हैं।

नथमलजीको कलकत्ता युनिवर्सिटीसे नाहार स्कॉलर्शिप मिल गया है इसलिये आगे पर उनको रिसर्च तथा Ph. D. के लिये तैयारी करनेमें सुगमता रहेगी। शेष कुशल.

आपका विनीत – बहादुरसिंह

भवनके लिये लाईब्रेरी लेनेको मेरा कलकत्ते जाना

मैं जब जेसलमेरमें था, तब कलकत्ता युनिवर्सिटीके एक सुप्रसिद्ध निवृत्त प्रोफेसर बम्बई आये थे और श्रीमुंशीजीसे मिल कर उन्होंने अपना निजी विशाल ग्रन्थसंग्रह (लाईब्रेरी) यदि भवन खरीद करें तो, वे उसे देना चाहते है – इस बारेमें कुछ बातचीत की थी। साथमें उसकी कीमत भी उन्होंने सूचित की थी जो ५० हजार जितनी बडी रकम थी। भवनके लिये एक अच्छी लाईब्रेरीका होना नितान्त आवश्यक था। वास्तवमें ऐसी संस्थाका तो प्रधान प्राण, उत्तम प्रकारकी लाईब्रेरी ही मानी जाती है। उच्च कोटिके पुस्तकोंका अच्छा संग्रहवाली लाईब्रेरीके विना ऐसी संस्थाका अस्तित्व वन्ध्यत्वका ही द्योतक होता है। परन्तु ऐसी अच्छी लाईब्रेरी प्राप्त करना कोई सुलभ वस्तु नहीं है। उसके लिये काफी धनकी भी जरूरत रहती है और सतत उद्योगकी भी। मैं और

मुंशीजी भवनके पास ऐसी अच्छी लाईब्रेरीके होनेकी झंखना इसके जन्मदिनसे ही कर रहे थे और यथेष्ट उद्योगमें भी रहते थे। अतः जब उक्त विद्वानने अपनी लाईब्रेरीके बारेमें मुंशीजीसे बात की तो इनका मन एकदम उसको लेनेके लिये उत्कंठित हो गया और उनको कह दिया कि–'मुनिजीके आने पर उनसे परामर्श करके हम आपकी लाईब्रेरीको ले लेनेका प्रयत्न करेंगे।' मेरे आने पर मुंशीजीने इस विषयका जिक्र किया तो मैंने भी उसको हस्तगत कर लेनेकी तीव्र उत्कंठा बतलाई। लेनेका निर्णय किया जाय, उसके पहले उक्त विद्वान् महाशयके पाससे पुस्तकोंका लीस्ट मंगा कर देख लेना उचित मालुम दिया और उनको लीस्ट भेज देनेके लिये लिखा गया। परन्तु ३–४ महिने व्यतीत हो जाने पर भी, और २–४ पत्रादि लिखने-लिखाने पर भी, उनकी ओरसे जब लीस्ट नहीं मिल सका, तब आखिरमें यह तय किया गया कि मैं खुद कलकत्ते चला जाऊं और उस लाईब्रेरीको प्रत्यक्ष आँखोंसे देख कर, उचित जंचे तो उसका सोदा कर डालूं। सिंघीजी वहां थे ही; इससे मुझे इस विषयमें उनसे यथेष्ट सहायता मिलनेकी पूरी संभावना थी। क्यों कि उक्त विद्वान् मेरे भी पूर्वपरिचित थे और सिंघीजीके साथ भी उनकी अच्छी जानपहचान थी। जानेके पूर्व मैंने सिंघीजीको इस बारेमें थोडीसी पत्र द्वारा पूर्व सूचना भी दे दी।

उन दिनों कलकत्ता युनिवर्सिटीमें भी एक जैन चेयर स्थापित करनेके लिये, युनिवर्सिटीके प्रधान पुरुष डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी एवं संस्कृत विभागके मुख्य-आचार्य म. म. श्रीविधुशेखर शास्त्री, सिंघीजीसे प्रेरणा कर रहे थे और इस विषयमें शास्त्री महाशयने मुझको तथा खास करके पण्डितजी सुखलालजीको पत्रादि लिख कर, हम लोगोंसे भी सिंघीजीको प्रोत्साहित करनेकी एवं यथायोग्य अन्य प्रकारकी आवश्यक सहायता प्राप्त करानेकी अभिलाषा व्यक्त की थी। शास्त्री महाशयका प्रस्ताव था कि सिंघीजी उस चेयरके स्थापित करनेका प्रारंभिक अर्थभार उठावें और पण्डितजी उसके प्रथम अधिष्ठाता बन कर उसके संचालनका भार उठावें, तो पीछेसे कामके जम जाने पर, युनिवर्सिटी भी स्वयं उसके अर्थभारको उठा लेनेके निमित्त प्रयत्न करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझेगी। सिंघीजीने इस प्रस्तावके बारेमें अपना कुछ मनोभाव प्रकट किया कि यदि पण्डितजी जो इस प्रस्तावित चेयरके संचालनका काम अपने हाथमें लेनेका विचार करें तो वे उसके लिये प्रारंभिक आर्थिक भारके उठानेका विचार करनेको स्वयं तत्पर हो सकते हैं। सो इस विषयमें कुछ विचार-विनिमय करनेके लिये सिंघीजीने पण्डितजीको भी मेरे साथ कलकत्ते आनेका आमंत्रण दिया था। अतः हम दोनों साथ ही बम्बईसे ता. १६ सप्टेंबरको कलकत्ताके लिये रवाना हुए।

हम कलकत्ता पहुंचे उसके ४–५ दिन पहले ही सिंघीजी भी अजीमगंजसे वहां पर कार्यवश आ पहुंचे थे। इससे उद्दिष्ट कार्यके संबंधका वार्तालाप उसी दिनसे प्रारंभ हो गया। मैंने उनसे उक्त लाईब्रेरीके विषयमें, इतःपूर्व जो पत्रव्यवहारादि हुआ था उसका सब हाल सुनाया और कहा कि–'मैं तो ऐसी बातोंके लिये वैसा व्यवहारकुशल (प्रेक्टीकल) हूं नहीं, परन्तु आप इसमें पक्के निष्णात हैं और आपसे मुझे इस कार्यमें यथेष्ट सहायता मिलनेकी पूरी श्रद्धा होनेसे ही मैं यहां पर आया हूं। अतः किस

तरह यह कार्य सिद्ध किया जाय उसके लिये आप उद्योग करें।' सिंघीजीको उक्त लाईब्रेरीका कुछ पूर्व इतिहास मालुम था और बहुत वर्षों पहले स्वयं उन्हींको उसके ले लेनेके लिये, उसके मालिककी ओरसे एक प्रस्ताव भी उनके पास पहुंचा था। परन्तु सिंघीजीको स्वयं उसका कुछ उपयोग नहीं था इसलिये उन्होंने उसके लेनेकी आवश्यकता नहीं समझी। उस समय तो उसकी कीमत आधेसे भी कम दामोंवाली कही गई थी–अर्थात् २० – २५ हजारके करीब। इस तरहकी बहुतसीं बातें उन्होंने मुझको सुनाई और फिर अब उसकी कीमत आदिका ठीक अन्दाजा किस प्रकार लगाया जा सके, उसके लिये वे उपाय सोचने लगे। दो एक दिनमें वहांके अन्यान्य विद्वान् मित्रों द्वारा उसका कुछ उपयुक्त आभास हमको प्राप्त हो गया और फिर मैं स्वयं उस लाईब्रेरीको प्रत्यक्ष देखने और उसके मालीकसे बातचीत करने गया। एक-दो दिन तक मैंने लाईब्रेरीकी सब किताबें खूब ध्यानपूर्वक देखीं और उनकी आनुमानिक गिनती की। इस तरह जब यह पूर्वभूमिका तैयार हो गई तो फिर उन प्रोफेसर महाशयको सिंघीजीके वहां एक दिन दोपहरको चहा पीनेके निमित्त मैंने आमंत्रित किया। उसकी अगली रात्रिको फिर सिंघीजीके साथ बैठ कर उसकी कीमत आदिके विषयमें हमने विचार कर लिया। सिंघीजीने पूछा–'आपके ध्यानमें इसका कितना अन्दाजा आता है?' मैंने कहा–'कोई ३५ से ४० हजार तककी कीमत इसकी ठीक हो सकती है और उतनेमें मिले तो जरूर ले लेनी चाहिये। इसमें कुछ २ – ४ हजार शायद ज्यादह भी जाते मालुम देते हों, तो भी एक अच्छे विद्वानका दीर्घव्यापी जीवनमें किया हुआ उत्तम ग्रन्थसंग्रह है और ऐसे संग्रह इच्छित समय पर मिलने बहुत दुर्लभ होते हैं, इसलिये इसे ले लेनेकी मेरी उत्कट अभिलाषा है।' फिर सिंघीजीने उसकी रकमके बारेमें भवनने क्या प्रबन्ध किया है, इसके विषयमें पूछा, तो मैंने कहा–'अभी तक तो वैसा कोई खास प्रबन्ध नहीं किया गया है। परन्तु मुंशीजीकी और मेरी श्रद्धा एवं आशा है कि आप जैसे भवनके हितैषी दाताओंसे याचना करने पर वह रकम मिल ही जायगी। और अभी तो मैं कोरा चेक ले कर आपके पास यहां आया हूं; जितनी भी रकम यहां देनी पडे, उसे इस चेकमें आपको भरना है और भारतीय विद्या भवनके नामे मांडना है।' सुन कर सिंघीजी जरा मुस्कराये और बोले–'एक तो इसके लेने करनेकी महेनत भी हम करें और फिर ऊपरसे उसके लिये रूपयाकी व्यवस्था भी हम ही करें। यह बडा अच्छा रोजगार आप हमें बतला रहे हैं।' फिर मैंने उनसे लाईब्रेरी अथवा ग्रन्थभण्डार, किसी मनुष्यके लिये, एक कैसा उत्तम स्मारक है और वह कितना पवित्र एवं पुण्य कार्य है इस पर कितनीक प्रसङ्गोचित चर्चा की। फिर मैंने अन्तमें उनसे यह प्रस्ताव किया कि आपने अपने पिताजीकी पुण्य स्मृतिके लिये तो 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' जैसी जगत्प्रसिद्ध स्मारक वस्तुका निर्माण कर उनके नामको अमर कर दिया है। परन्तु अपनी पूजनीया माताजीकी स्मृति निमित्त तथा प्रिय धर्मपत्नीके पुण्यश्रेयार्थ, अभी तक कोई वैसा कार्य नहीं किया जिसके साथ उनके नामकी सुमधुर स्मृति संलग्न हो। इन दोनोंके नामस्मारकके निमित्त कोई विशिष्ट वस्तुका निर्माण आपको अवश्य करना चाहिये। अगर ऐसी उत्तम लाईब्रेरी जैसी पवित्र चीजके

साथ इनमेंसे किसी एकके नामका संयोजन हो तो उससे बढ कर अन्य कोई श्रेष्ठ स्मारक नहीं होगा!' इत्यादि। सुन कर वे बहुत देर तक चुप रहे। उनकी मुखाकृतिसे मुझे मालुम हुआ कि वे मेरे कथन पर कुछ गंभीर भावसे अपने अन्तरमें विचार करने लग गये हैं। कोई दस मिनीट बाद वे बोले–'आपने इन दोनों नामोंके स्मारकके विषयमें जो अभी कहा, उस पर कुछ जरूर विचार करने जैसा, हमारे मनमें इसी क्षण कुछ खयाल पैदा हुआ है। पत्नीके एक स्मारक निमित्त तो हमने कोई १५,००० रूपये, यहां पर जो जैन भवन बननेवाला है, उसमें दिये हैं और बाकी तो उसकी स्मृतिके लिये विशिष्ट कार्य करना उसके बेटोंका (अर्थात् अपने पुत्रोंका) कर्तव्य है। परन्तु, हां, अपनी मांके लिये कुछ करना यह हमारा फर्ज है। आप कोई ऐसी योजना विचार करके हमसे कहिये जिससे उस पर हम विचार करते रहें।' यों बातें चीतें करते करते कोई रातके १२ बज गये और फिर सोनेके लिये उठे। अन्तमें मैंने कहा 'तो मेरा चेक भरना आपने मंजूर कर लिया है न?' जरा स्मित करके बोले 'देखा जायगा; अगर आपको कोई नहीं मिला तो फिर हम तो है ही। परन्तु, महेरबानी करके अभी किसीसे इस बातकी चर्चा न करियेगा और उन प्रोफेसर महाशयको तो ऐसा बिल्कुल आभास न होने दीजियेगा कि यह लाईब्रेरी हम खरीद रहे हैं। वरना वे अपनी कीमत और भी बढा कर कहेंगे और हमसे ५० के बदले ६० मांगेंगे।'

दूसरे दिन ठीक ४ बजे वे प्रोफेसर चहा पीनेके लिये आये। सिंघीजी, मैं और वे तीनों एक टेबिल पर बैठे और फिर चहा पीनेके साथ लाईब्रेरीकी कीमतका विचार चला। प्रोफेसर साहबने ५० हजारसे कुछ भी कम लेना स्वीकार न किया। सिंघीजीने पहले ३५ हजार और फिर आखिरमें ४० की ऑफर की और उनको उन पुरानी बातोंका भी स्मरण दिलाया; परन्तु वे राजी न हुए और सौदा न बैठा। सिंघीजी मुझे एकान्तमें ले जा कर बोले–'आपका क्या विचार हैं? ये माननेवाले दिखाई नहीं देते। यदि आपको बहुत जल्दी नहीं है तो कुछ दिन अभी ठहर जाइये और यहां पर स्व० पूरणचन्दजी नाहारकी जो लाईब्रेरी है उसे भी देख लीजिये। अगर आपको वह ठीक कामकी मालुम दी तो हम उसके दिलानेका प्रयत्न कर, इतनी ही रकममें उसे दिला देंगे। हमारे खयालमें वह लाईब्रेरी इससे भी बहुत अच्छी है और आपको इतनी ही कामकी मालुम देगी' वगैरह वगैरह। चूं कि नाहार लाईब्रेरी तो मेरी बहुत पहलेसे और खूब अच्छी तरह देखी हुई थी ही, इससे मैंने कहा–'यदि वह लाईब्रेरी जो मिल सकती हो तो फिर मैं इसके लेनेकी बिल्कुल इच्छा नहीं करना चाहता।' सो इस तरह उस समय वह बात खत्म हुई और मैंने उक्त प्रोफेसरकी लाईब्रेरी लेनेका विचार स्थगित किया। नाहार लाईब्रेरी लेनेके विषयमें प्रयत्न करनेका काम सिंघीजीने अपने ऊपर लिया और उसमें कुछ समयकी दरकार होगी इससे मैंने बंबई जानेका अपना कार्यक्रम निश्चित किया।

सिंघीजीका मेरे साथ जैसा इधर लाईब्रेरीके विषयमें विचार-विनिमय होता रहता था, उधर वैसी ही पण्डितजीके साथ कलकत्ता युनिवर्सिटीमें जैन चेयरकी स्थापनाके बारेमें चर्चा होती रहती थी। इस सिलसिलेमें म. म. श्रीविधुशेखर शास्त्री आदिका भी

वारंवार मिलना आदि हुए करता था। परिणाममें सिंघीजीने अपनी यह स्पष्ट इच्छा प्रदर्शित की कि यदि पण्डितजी कलकत्तेमें रहना और कम-से-कम तीन वर्ष तक चेयरके संचालनका भार अपने ऊपर लेना स्वीकार करें, तो मैं उसका आर्थिक भार, जो प्रायः वार्षिक ६००० रूपये तकका सोचा गया है, उठानेके लिये खुशी हूं।' परन्तु पण्डितजीकी शारीरिक स्थिति, अब उस भारको उठानेके लिये ठीक अनुरूप न होनेसे, इन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की और वह विचार वहीं खत्म हुआ। पण्डितजी भी फिर वहांसे बनारस जानेके लिये उद्युक्त हुए।

मै ता. २८ सप्टेंबरको कलकत्तासे रवाना हो कर ता. ३० को बंबई पहुंचा। मुंशीजीसे वह सब वृत्तान्त कह सुनाया और नाहर लाईब्रेरीके प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा करने लगा। सिंघीजीने इस प्रकार लाईब्रेरीके लिये अपनी उदारताका जो भाव मुझसे प्रकट किया था वह मैंने अपने मनमें पूर्ण गुप्त रखा था। मैंने पण्डितजी या मुंशीजी तकको उसका जिक्र न किया था। मैंने सोचा था जिस दिन यह कार्य सोलह आना सिद्ध हो जायगा, उसी दिन इसकी प्रसिद्धि करनेमें बहुत स्वारस्य रहेगा। परंतु विधिका संकेत इसमें कुछ और ही प्रकारका था। उस संकल्पित उदारताका यश प्रत्यक्ष सिंघीजीको न मिल कर, उनके स्वर्गवासके पश्चात्, उनके सत्पुत्र श्रीमान् बाबू राजेन्द्रसिंहको मिलना निर्मित हुआ था।

सिंघीजीके स्वास्थ्यका बिगडना

मेरे कलकत्तेसे आने बाद, थोडे ही दिन पीछे, सिंघीजीका स्वास्थ्य खराब रहने लगा, और वह धीरे धीरे विकृत रूप धारण करने लगा। उनको किडनीकी बीमारी थी जो इस समय उग्र अवस्थामें पहुंच गई। कलकत्तेके सभी बडे बडे डॉक्टरोंसे उपचार कराया जाता था परन्तु रोग काबूमें नहीं आता था। दिन प्रतिदिन स्थिति चिन्ताजनक होती जाती थी। बीच-बीचमें कभी ५-७ दिन कुछ ठीक मालुम देता और उसके बाद उससे भी अधिक खराब हालत हो जाती। इससे सभी कुटुंबी जन खिन्नमनस्क होने लगे। बाबूजीकी ऐसी अस्वस्थ प्रकृतिके चिन्ताजनक समाचार मुझे श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीने एक पत्र लिख कर सूचित किये। उन्होंने लिखा कि-

... "आपके कलकत्तेसे गये बाद, पूज्य श्रीबाबूजी साहबकी तबियत ठीक नहीं रहती है। सांसका फुलना, पेटमें वायु होना, पेशाब कमती होना, रातमें नींद नहीं आना इत्यादि शिकायतोंसे तकलीफ पा रहे हैं। ता. ८ नवम्बरसे १३ नवम्बर तक हीचकी बरावर बनी रही जिससे शरीर बहुत थक गया है। शरीर भी बहुत ज्यादह दुर्बल हो गया है। दवाई बरावर चालू है। जो बीमारी ज्यादह हो गई थी वह कम गई है, लेकिन असल बीमारी अभीतक एक ही माफिक है। पूज्य श्रीबाबूजी साब १२ सप्टेंबरसे कलकत्तेमे ही हैं। आजकल लखनऊके हकीमकी दवाई चल रही है। पूज्यश्री दादीमां भी इसीलिये १४ नवबंरसे कलकत्तेमें ही है।"

उनकी तबियतके ऐसे उद्वेगकारक समाचार जानकर, मेरी इच्छा तुरन्त कलकत्ता जानेकी हुई। परन्तु डीसेंबरके दूसरे सप्ताहमें, कानपुरमें श्रीमुंशीजीकी अध्यक्षता

नीचे, विक्रमोत्सव समारंभ मनाया जाने वाला था, और उसके साथ डॉ. ताराचंद, डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी, डॉ. सरकार, डॉ. त्रिपाठी, डॉ. शरण आदि भारतीय इतिहासके प्रमुख ज्ञाता विद्वानोंकी एक छोटीसी कॉन्फरेन्स बुलाई गई थी, जिसमें भारतीयविद्या भवन द्वारा प्रस्तावित 'भारतीय इतिहास' के आलेखनकी प्रारंभिक रूप-रेखाका ऊहापोह किया जानेवाला था। इसलिये मुझे मुंशीजीके साथ वहां जाना आवश्यक हुआ। उसके बाद, डीसेंबरके अन्तमें वनारसमें ओरिएन्टल कॉन्फरेन्स होनेवाली थी, उसमें भी सम्मीलित होना मुझे वहुत जरूरी था। इसलिये बनारस हो कर फिर कलकत्ता जाना मैंने स्थिर किया और इस विषयका एक पत्र मैंने सिंघीजीको कानपुरसे लिखा। इस पत्रमें मैंने कानपुरमें इतिहासज्ञ विद्वानोंके साथ किये गये विचार-विनिमयका भी कितनाक वृत्तान्त लिखा था। क्यों कि उनको इस विषयमें वहुत अधिक रस रहता था। अत एव मैं उनको अपनी ऐसी प्रवृत्तिका हाल समय समय पर लिखा करता था। परन्तु इस पत्रका उनकी तरफसे कोई उत्तर नहीं मिला; क्यों कि स्वास्थ्यकी खराबीके कारण उनका स्वयं पत्रव्यवहार करना बन्ध हो चुका था। इससे मैंने अनुमान किया कि प्रकृति जरूर कुछ अधिक अस्वस्थ होनी चाहिये।

सिंघीजीसे मेरी अन्तिम भेट

डीसेम्बरके अन्तमें बनारस – हिंदु युनिवर्सिटीमें होने वाली ओरिएन्टल कॉन्फरेन्समें सम्मीलित होनेके लिये मैं वहां गया। वहां उस कॉन्फरेन्समें आनेवाले इतिहासज्ञ विद्वानोंके साथ, जिनमें, सर् राधाकृष्णन्, डॉ. मजुमदार, डॉ. आल्टेकर, प्रो. पुणतांबेकर, डॉ. बागची, प्रो. नीलकण्ठ शास्त्री, आदि प्रमुख थे– भारतीय इतिहासकी योजना और कार्य-पद्धति आदिका विशेष भावसे ऊहापोह किया गया और हम लोगोंके वीचमें कुछ थोडासा मतभेद था उसका निकाल किया गया। बनारसमें वह कार्य समाप्त होनेपर फिर मैं सिंघीजीको मिलनेकी दृष्टिसे कलकत्ता गया। रास्तेमें डालमियां नगरके प्रतिष्ठापक और भारतके एक प्रमुख प्राणवान् उद्योगाधिपति साहु श्रीशान्तिप्रसादजी जैनके आग्रहसे, एक रात वहां पर उतर गया। विद्याप्रेमी साहुजीने, 'भारतीय विद्या भवन' की प्रवृत्तिका विस्तृत हाल सुन कर अपनी प्रसन्नता और सद्भावना प्रकट की, तथा मेरे निवेदन करने पर, भवनको पोष्ट ग्रेज्युएट स्टडीजके लिये मासिक ५०–५० रूपयेकी ५ स्कॉलर्शिप देनेकी बडी उदारता बतलाई। 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के द्वारा होने वाले ग्रन्थोद्धार कार्यको देख-जान कर उसकी उन्होंने प्रशंसा की। उन्होंने भी बनारसमें एक ऐसा ही ज्ञानप्रकाशनका बहुत बडा कार्यालय तथा ग्रन्थालय आदि स्थापित करनेकी योजना तैयार की थी जिसके विषयमें मुझसे बहुत कुछ परामर्श किया। आनन्दकी बात है कि 'भारतीय ज्ञानपीठ' के नामसे स्थापित होकर यह संस्था अब अपना कार्य अच्छी तरह कर रही है।

ता. ६ जनवरी, १९४४ के रोज मैं कलकत्ता पहुंचा। श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजी तथा श्रीयुत नरेन्द्रसिंहजी दोनों कहीं कार्यवश बहार गये हुए थे। सिंघीजीके कुटुम्बके आत्मीय और विश्वस्त डॉक्टर श्रीरामराव अधिकारी वहीं थे, सो उनसे बाबूजीके

स्वास्थ्यका पूरा हाल मालुम हुआ। उसे सुन कर मन पर बहुत कुछ चिन्ताजनक प्रभाव पडा। श्यामको ६ बजे उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया। उठ कर प्रणामादि किया। उस दिन उनका स्वास्थ्य अन्यदिनोंकी अपेक्षा कुछ अच्छा उनको मालुम देता था सो प्रसन्नतापूर्वक बातें चीतें करने लगे।

मेरे दाहिने खबेमें ३ – ४ महिनोंसे कुछ दर्द हो रहा था वह उनको मालुम था, इसलिये सबसे पहले उन्होंने उसीके विषयमें पूछा और जब उनको मालुम हुआ कि वह दर्द अभी तक मिटा नहीं है, तब वे कुछ उत्तेजित स्वरसे कहने लगे कि – 'आपका शरीर तो आगे ही ऐसा है और फिर इन शर्दीके दिनोंमें कभी कानपुर, कभी बनारस और कभी कलकत्ता आदिके इस तरहके कष्टदायक प्रवास कर उसे आप क्यों और अधिक खराब कर रहे हैं, और क्यों अपने आयुष्यको अधिक क्षीण बना रहे हैं?' – इस प्रकारका बहुतसा स्नेहपूर्ण उपालंभ उन्होंने मुझको दिया।

इसके उत्तरमें मैंने फिर वे सब बातें उनको विस्तारसे सुनाईं जिनकेलिये मुझे कानपुर, बनारस आदि स्थानोंमें जाना – करना आवश्यक हुआ था। फिर 'भारतीय इतिहास' के आलेखनकी योजनाका परिचय उनको दिया और अभी तक जितना काम हो गया है उसका दिग्दर्शन कराया। प्राचीन इतिहासके विषयमें उनकी बहुत ही अधिक रुचि रहती थी इसलिये ये सब बाते सुन कर वे बहुत प्रसन्न हुए। मैंने जब उनसे कहा कि 'डॉ. रमेशचन्द्र मजुमदारको हम लोगोंने इस कार्यके प्रधान संपादक बनाना चाहा है और कल सुबह उनसे मिल कर, अपने साथ ही उनको बंबई ले जानेका विचार है'; तो वे बोले कि 'डॉ. मजुमदार इस कामके पूर्ण योग्य हैं; हमारा उनसे अच्छा परिचय है; बहुत अच्छे व्यक्ति हैं' – इत्यादि। फिर वे बोले 'भारतवर्षका एक ऐसा विस्तृत और प्रमाणभूत इतिहास लिखे जानेके लिये तो हमारे मनमें भी बहुत बार विचार आता रहा है और हमको इसमें बहुत ही रस रहा है। श्रीमुंशीजीने जो इस कामको इस तरह अब उठाया है वह बहुत ही उत्तम है और इसमें आप लोगोंको जरूर सफलता मिलनी चाहिये। हमारा शरीर अच्छा हो गया तो हम भी इसमें यथायोग्य मदत देनेको उत्सुक होंगे' – इत्यादि।

फिर थोडी देर बाद बोले – 'आपने कई दफह एक अच्छा विस्तृत जैन इतिहासके लिखे जानेकी बात की है; सो इस कार्यके साथ उसकी भी कोई योजना हो जाय तो वह भी साथमें तैयार हो सकता है। क्यों कि भारतवर्षके सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानोंका सहकार आपको इस कार्यमें मिलनेवाला है ही। उन्हींमेंसे जैन संस्कृतिके ज्ञाताओं द्वारा जैन इतिहासकी सामग्री भी सहज ही में तैयार कराई जा सकती है।' मैंने कहा 'आप जरा अच्छे बन जांय और जैसा कि आपने बम्बईमें मुझसे कहा था – साल भरमें कुछ महिने वहां आकर रहना पसन्द करेंगे; तब फिर इसके बारेमें अपने कोई योजना सोचे विचारेंगे।' इस तरहकी विविध बातें, उसी पुरानी पद्धतिके मुताबिक, हमारे बीचमें उस रातको होती रही।

बनारसमें पण्डितजीकी परिस्थिति आदिके बारेमें भी उन्होने पूछताछ की और जब मैंने यह कहा कि 'अब पण्डितजी बनारस सदाके लिये छोड रहे हैं और यहांसे मैं

जब वापस लौटूंगा तब मेरे साथ ही बंबई आनेकी उन्होंने तैयारी करली है।' तब उन्होंने अपना सन्तोष प्रकट किया और कहा कि – 'हमारी इच्छा तो यही है कि अब आप दोनों साथ ही रहें तो अच्छा है।' इसी वार्तालापमें उनको एक वस्तु याद आई और अपने पास बैठे हुए परिचारकको बुला कर कमरेमेंसे एक फाईल मंगवा कर मुझे देखनेको दी। कहा 'मैं कई दिनोंसे आपको देखनेके लिये इसको भेजना चाहता था पर भेज नहीं सका। पण्डितजी जब अजीमगंजमें आये थे, तब उनके साथ बातें चीतें करते हुए हमारे मनमें 'एक योजना' उत्पन्न हुई थी, जिसको हमने इस तरह लिख डाला है। आप इसे देख जाईये और इसके विषयमें कुछ सूचना आदि करने जैसी हो उसे इसमें नोट कर दीजिये। हमको इस विषयमें श्रीराजेन्द्रसिंह आदिसे कुछ चर्चा करनी है। कुछ ठीक हो जाने पर उन लोगोंसे विचार कर, इस योजनाको कोई निश्चित रूप देनेका अब हमारा खयाल हो रहा है।' यह कह वह फाईल मेरे हाथमें दी।

[यह पूरी योजना परिशिष्टमें इसके पीछे दी गई है।]

कोई पूरे ३ घंटे हम साथ बैठे और यह अखंड वार्तालाप चलता रहा। बीच बीचमें शरीरकी स्थितिको लक्ष्य कर वे यह भी कहते जाते थे कि 'न मालुम हम अब कितने दिनके महेमान हैं – शरीरके लक्षण कुछ अच्छे नहीं दिखाई देते' आदि। आखिरमें, डॉ. रामरावने आ कर कहा कि 'आज आपने वार्तालापमें बहुत श्रम लिया है और अब ज्यादह नहीं बैठना चाहिये।' जिसे सुन कर मै तुरन्त उठ खडा हुआ और अपने स्थान पर जानेको उद्यत हुआ। तब मुझसे कहने लगे कि – 'हम अभी तक उस नाहार लाईब्रेरीके विषयमें कुछ नहीं कर पाये हैं। क्यों कि आपका पिछली दफह यहांसे जाना हुआ उसके कुछ ही दिन बाद हमारा शरीर इस तरह खराब हो गया है और यह अभी तक वैसा ही चल रहा है। आप अब आये हैं तो नाहारजीके पुत्रोंसे इस विषयमें स्वयं बात चीत कर लें और उसका तय कर लें।' मैंने कहा 'आप इसकी अभी कोई चिन्ता न करें। मैं भी उसके विषयमें प्रयत्न करूंगा और फिर इसका विचार करेंगे।' बस यह कह कर मैं अपने कमरेमें चला गया और जा कर सो गया। नींद थोडी ही आनेवाली थी – शेष रात्रि यों ही शंका-कुशंकाके विचारोंमें व्यतीत हो गई।

एक तरहसे सिंघीजीके साथ मेरा इस प्रकारका यह आखिरी वार्तालाप था। इसके बाद उनके साथ फिर कोई ऐसा कार्यसूचक वार्तालाप न हो सका। दूसरे दिन डॉ. बाबूसे मालुम हुआ कि उनकी प्रकृति आज फिर कुछ अधिक खराब मालुम दे रही है। वे सारा दिन सोये ही रहे और कुछ विशेष अस्वस्थ मालुम दिये। दो दिन वैसा ही रहा; तीसरे दिन कुछ फिर जरा स्वस्थता मालुम दी। मैं पासमें गया और आधा घंटा बैठा रहा, पर कुछ विशेष बोले नहीं। लखनऊके एक नामी हकीमकी दवा चल रही थी उसको बन्ध किया। दूसरे डॉक्टरोंको बुलाया गया। उनके शरीर और चेहरा आदिका स्वरूप देख कर तो मुझे लग रहा था कि डॉक्टर लोग जैसा बीमारीका गंभीर रूप समझ रहे हैं वैसा तो कुछ अभी है नहीं। कुछ ट्रीटमेंटमें परिवर्तन होना चाहिये ऐसा मेरा खयाल हुआ। बाबूजी बोले 'हमने यहांके सभी नामी

डाक्टरोंको बुला लिया है परंतु ये लोग कुछ ठीक निदान नहीं कर पाते।' तब मैंने कहा 'यदि आप पसन्द करें तो मैं बम्बईसे किसी अच्छे डॉक्टरको बुला लाऊँ। क्यों कि बम्बईमें आज कल बहुत नामी नामी डॉक्टर हैं और उनकी ख्याति सारे हिन्दुस्थानमें फैली हुई है। कुछ उनमेंसे अपने अच्छे परिचित भी हैं।' तो वे बोले बम्बईसे कोई डॉक्टर यहां आवे और एक दो रोज रह कर चला जावे, उसका कुछ मतलब नहीं होता। हमारी प्रकृति कभी कुछ ठीक मालुम देती है तो कभी बहुत ही खराब। इससे दो चार दिन किसी डॉक्टरके रहने करनेसे कुछ ठीक उपचार नहीं हो सकता।' मैंने कहा 'किसी ऐसे ही डॉक्टरको यहां लाया जायगा जो अपनी जरूरत हो तब तक निश्चिन्ततासे रह सके।' इस प्रकारकी थोडीसी बातचीत कर मैं उठ गया और फिर डॉ. रामबाबू और श्रीराजेन्द्रसिंहजी तथा श्रीनरेन्द्रसिंहजीसे इस विषयमें विशेषभावसे परामर्श किया गया। उसके परिणाममें मुझे तुरन्त बम्बई जाकर किसी नामी डॉक्टरको ले आनेका निश्चय हुआ। तदनुसार मैंने गाडीमें अपनी सीट रीझर्व कराई और ता. ११ जनवरीको मैं वहांसे बम्बई आनेको निकला। सिंघीजीका मन कुछ निश्चित नहीं था; पर उनके पुत्रोंकी खास इच्छा रही कि क्यों न एक दफह कलकत्तेसे बहारके भी अच्छे डॉक्टरका उपचार कर देख लिया जाय? मैं निकलते समय फिर उनसे मिलने गया। पासमें माजी बैठी हुई थीं। उनके मुखपर ग्लानिकी वेदना पूर्ण छाई हुई थी। सिंघीजी विशेष निर्विण्णसे दिखाई दिये। मेरा हृदय गद्‌गद् हो गया और छाती दब गई। वे बोले 'क्या आप जा रहे हैं?' मैंने कहा 'मैं तुरन्त ही वापस आना चाहता हूं। मेरे खयालमें आपकी बीमारी कोई वैसी असाध्य नहीं है, जैसा आप सोच रहे हैं। कुछ ट्रीटमेन्टमें परिवर्तन होनेकी जरूरत है। इससे मैं बम्बईके कुछ अच्छे नामी डॉक्टरोंसे परामर्श करना चाहता हूं। डॉ० रामबाबूने मुझे आपकी बीमारीका पूरा स्टेटमेंट लिख कर दिया है। उसे बम्बईके डॉक्टरोंको बतलाकर उनका अभिप्राय लेना चाहता हूं।' बोले 'अब बम्बईका डॉक्टर क्या और दूसरी जगहका डॉक्टर क्या? परमात्माके डॉक्टरकी प्रतीक्षा करनी ही ठीक है।' इतना कह कर वे चुप रहे, तो मैंने अपने मनमें ढाढस बान्ध कर कहा 'आपको इस तरह हताश न होना चाहिये। आपकी बीमारी कोई वैसी गंभीर नहीं है। ईश्वरकी कृपासे सब कुछ ठीक हो जायगा।' इस पर वे बोले 'हमारा तो जो होना होगा सो होगा। परन्तु यदि आप हमारा कहना मानें तो आप इस तरह अब कहीं ज्यादह आना जाना न करिये और अपने स्वास्थ्यकी रक्षा कीजिये। **कौन जाने अब फिर कभी मिलना होगा या नहीं?**।' उनके ये आखिरी वचन बहुत ही हार्दिक और करुणस्वरपूर्ण थे जिनको सुन कर मेरा हृदय टूट गया और मेरी आँखें डबडबा गईं। मैं उनको प्रणाम करता हुआ उठ खडा हुआ, जिसके बदलेमें उन्होंने भी दोनों हाथ जोडकर बडे सद्‌भावसे प्रणाम किया। बहुत ही व्यथित हृदयके साथ मैं उनके कमरेमेंसे बहार निकाला। उनके ये शब्द '**कौन जाने अब फिर कभी मिलना होगा या नहीं**' मेरे हृदयको मानों छुरीसे काटने लगे और आँखोंमेंसे आंसु गिरने लगे। उस भारी वेदनाको किसी तरह हृदयमें दबाता हुआ मैं मोटरमें बैठा और स्टेशन पर पहुंचा।

बम्बई पहुंच कर तुरन्त श्रीमुंशीजीसे मिला और सिंघीजीके स्वास्थ्य एवं किसी अच्छे डॉक्टरके ले जाने करनेकी बातचीत की। दो तीन दिनमें डॉ. श्रीनाथूभाई पटेलको ले जानेका ठीक किया गया और उसके लिये कलकत्ते तार दिया गया। वहां पर, मेरे निकले बाद एक बडे होमियोपाथ डॉक्टरकी दवाई शुरू की गई जिसका असर कुछ ठीक मालुम हुआ और इसलिये फिलहाल बम्बईसे डॉक्टरको न लानेका मुझे तार मिला।

मार्च १, ४४ का लिखा हुआ श्रीनरेन्द्रसिंहजीका एक पत्र मुझे मिला जिसमें बाबूजीकी तबियत कुछ कुछ ठीक होनेके समाचार थे। उन्होंने लिखा था–

'पूज्य बाबूजी साहबकी तबियत पहलेसे बहुत ठीक है। पानी निकल गया है। केवल मुंहमें थोडा है। कमजोरी अभी भी है–लेकिन शायद out of danger हो गये हैं। गुरुदेवकी कृपासे इस दफहका संकट तो कट गया मालुम पडता है। माननीय मुन्शीजी, पण्डितजी, डॉ. मजुमदार सबसे पूज्य पिताजीका प्रणाम कहियेगा।'

इससे मेरे मनको कुछ सन्तोष हुआ कि सिंघीजी अब इस प्राणघातक दशासे मुक्त हो जायंगे। उन्होंने मुझे एक दफह अपनी जन्मपत्रिकाका उल्लेख करते हुए कहा था कि 'हमारी आयु ६२–६३ वर्षकी हमारी पत्रिकामें बतलाई गई है।' इससे भी मुझे विश्वास बैठा कि ये अभी तो जरूर आरोग्य प्राप्त कर लेंगे। परन्तु कोई इसके एक पक्षके बाद श्रीनरेन्द्रसिंहजीका (ता. १८.३.४४ का लिखा हुआ) दूसरा पत्र मिला जिसमें बाबूजीकी तबियत फिर कुछ गडबडा गई है, इसके समाचार थे। उन्होंने लिखा था–

'... आपका पत्र पहुंचा। पूज्य पिताजीको पढ कर सुना दिया। पिताजी आप सबको–पूज्य पण्डितजी मोतीबहन वगैरहको–प्रणाम लिखाते हैं। उनकी तबियत बहुत कमजोर है। बीचमें २–३ रोज बगीचेमें जा कर बैठे थे बादमें इन्फ्ल्युएंजाका एटेक हो गया व बहुत ही कमजोर हो गये हैं।'

एप्रीलके मध्यमें श्रीयुत नरेन्द्रसिंहजी कार्यवश बंबई आये तो उनसे बाबूजीकी प्रकृतिके विषयमें मालुम हुआ कि वह वैसी ही चली जा रही है। कभी दो दिन ठीक मालुम देती है तो चार दिन खराब। सुन कर मेरी चिन्ता बढी कि इस तरह तो अब ये कितने दिन निकाल सकेंगे। मेरा मन फिर कलकत्ते जानेको उत्कंठित हुआ। परन्तु इधर मुझे कुछ राजपूतानामें, राजस्थान साहित्य सम्मेलनकी समितिमें उपस्थित होना आवश्यक था इसलिये उस समय जाना बन नहीं पडा। मई, जूनके दो ढाई महिने, उदयपुर, अजमेर, पाटण, अहमदाबाद वगैरह स्थानोंमें जाने आनेके कारण मैं कलकत्तेसे कोई खास समाचार प्राप्त नहीं कर सका। इससे जुलाईके अन्तमें मैंने वहां जाना निश्चित किया।

सिंघीजीका स्वर्गवास

ता. ९ जुलाईको मुझे श्रीमुंशीजीका फोन मिला कि–सेठिया ब्रधर्सके वहांसे मुझे अभी फोन आया है और कहा है कि परसों, (अर्थात् ७ तारीखको) कलकत्तेमें सिंघीजीका स्वर्गवास हो गया! उसके दूसरे दिन कलकत्तेसे, श्रीमान् राजेन्द्र-

सिंह, श्रीनरेन्द्रसिंह तथा श्रीवीरेन्द्रसिंह – तीनों भाईयोंके हस्ताक्षर अंकित अपने पुण्यश्लोक पिताजीके दुःखद स्वर्गवासका शोक-पत्र भी मुझे प्राप्त हुआ। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह शोक-समाचार मेरे हृदयको असाधारण रूपसे व्यथित करनेवाला हुआ। यद्यपि एक-न-एक दिन यह दुःखद समाचार मुझे मिलने वाला है इसका आभास मुझे बीच-बीचमें होता रहता था। परन्तु पिछले दो-ढाई महिनोंसे मुझे कलकत्तेसे वैसी कोई गंभीर बीमारीकी खबर मिली नहीं थी और मैं कुछ ही दिनोंमें वहां जानेकी सोच रहा था। इससे इस प्रकार, अकस्मात्, मुझे उनके एकदम दिवंगत होनेकी ही ऐसी अनिष्टानिष्ट खबर मिलेगी, इसके लिये मैं सावचेत न था। मैंने अपने हृदयको बहुत संभाला, पर वह ऐसे सहृदय स्नेहीजनके शाश्वत वियोगको, उदासीन भावसे सहन कर सके, वैसा विरक्त, शुष्क या कठोर न होनेसे उसने बहुत कुछ क्लेशानुभव किया। मेरे साहित्यिक जीवनके सबसे बडे प्रोत्साहक, सुकुशल परीक्षक, अनन्य सहायक, अकृत्रिम प्रशंसक और सहृदय संवेदकके, राजाके जैसे गौरवगरिमावाले जीवनकी समाप्तिके दारुण आघातका संवेदन कर, कई दिन तक मैं व्यथित और विमनस्क बन रहा। अपने प्रिय बन्धुजनोंके जीवन वियोगमें मनुष्यको और कुछ करनेकी प्रकृतिने शक्ति ही क्या दी है!

समाप्ति

सिंघीजीके साथके मेरे संस्मरणोंकी यहां पर समाप्ति होती है। इस निबन्धमें मेरा उद्देश्य, उनके गौरवमय जीवनका संपूर्ण परिचय देना नहीं है। इसमें तो मेरा उद्देश सिर्फ उनके साथ, पिछले १४-१५ वर्षोंमें मैंने स्वयं उनकी उदारता, साहित्यानुरागिता, संस्कारिता, बुद्धिमत्ता, कार्यनिष्ठा, कर्तृत्वशक्ति, कलारसिकता, समाजहितैषिता, विद्याप्रियता – इत्यादि अनेकानेक सद्गुणोंका जो प्रत्यक्ष परिचय पाया, उसीका प्रसङ्गवर्णन करनेका है।

इस परिचयसे ज्ञात होगा कि बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी एक महान् व्यक्तित्ववाले पुरुष थे। उनका जैसा उत्तम शरीर-सौंदर्य था वैसा ही उदार हृदय-सौंदर्य था। आकृति और प्रकृतिसे वे एक राजाके समान तेजस्वी पुरुष थे। मुझे कलकत्तेमें एक विद्वान् मित्रने एक दफह कहा था कि – 'सिंघीजीको जन्म किसी राजवरानेमें लेना था, परन्तु, पूर्वजन्ममें तपस्यामें कुछ न्यूनता रह जानेसे अथवा किसी प्रकार कुछ योगभ्रष्ट हो जानेसे, उनको इस प्रकार एक सामान्य वैश्यके कुलमें जन्म लेना पडा है।' उनका रहन-सहन, बोल-चाल, खान-पान, दान-मान आदि सभी बातें राजाकीसी थीं। उनकी प्रकृतिमें वैश्यवृत्तिका प्रायः अभाव था।

यद्यपि सम्मान उनको प्रिय था, लेकिन उसको प्राप्त करनेके लिये उन्होंने चलाकर कभी कोई प्रयत्न नहीं किया। उनका स्वभाव एकान्तप्रिय था इसलिये वे अपने आप किसी सभा, समाज या समूहमें हिलने-मिलनेकी प्रवृत्ति करना ज्यादह पसन्द नहीं करते। कोई खींच कर उनको ले जानेका प्रयत्न करता तो वे सरल भावसे चले जाते। परंतु जिसके साथ उनका दिल मिल जाता उसके साथ वे संपूर्ण एकरस हो जाते थे।

उनकी बौद्धिक और संयोजक शक्ति बडे उत्कृष्ट दरजेकी थी। उन्होंने अपने अकेले दिमाग और परिश्रमसे अपनी जमींदारी और कोलियारीके कारोबारको ऐसी उत्तम स्थितिमें पहुंचाया कि जिसको जान कर हरकोई चकित होता। उनकी व्यापारिक प्रामाणिकता ऐसी प्रतिष्ठित थी कि इंग्लेंडकी मर्केंटाइल बेंकके हिन्दुस्थान विभागके डायरेक्टरोंकी बॉर्डने, उनको अपना एक डायरेक्टर बननेके लिये प्रार्थना की थी। किसी भी हिंदुस्थानी व्यापारीको आज तक यह सम्मान नहीं मिला था। देशके अन्यान्य प्रसिद्ध धनवानोंकी तरह, यदि उनके दिलमें भी यह बात आती, कि वे इधर-उधर हाथ मार कर, अपने पैर फैलावें और कंपनियों आदिके डायरेक्टरादि बन कर अपना नाम कमावें; अथवा कोन्सीलों आदिकी उम्मीदवारीमें खडे रह कर, रुपया लुटा कर, राजकीय मैदानमें कदम बढावें; तो उनके लिये सब जगह बहुत बडा स्थान तैयार होता और देशके वे एक बडे अग्रगण्य व्यापारी एवं सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पुरुषकी प्रतिष्ठा प्राप्त करते।

यद्यपि बाहरसे वे बहुत बडे लक्ष्मीप्रिय लगते थे तथापि अन्तरसे वे बहुत ही अधिक सरस्वतीभक्त थे। यही एक विशिष्ट कारण था कि जिससे मेरा उनके साथ इतना घनिष्ठ स्नेहसम्बन्ध और साहित्यिक कार्यसम्बन्ध स्थापित हुआ।

मैंने उनसे अनेकगुणा अधिक द्रव्य दान करनेवाले धनी-व्यापारी देखे-सुने हैं परन्तु दानमें जो विवेक उनका देखा वैसा अन्य किसीका मेरे जाननेमें नहीं आया। जिस किसी संस्था या व्यक्तिको उन्होंने दान दिया उसमें उनका विवेक-विचार सदा काम करता रहा। प्रसङ्ग और आवश्यकताको लक्ष्य कर उन्होंने हजारों-लाखों खर्च किये परन्तु अनावश्यक या अप्रासंगिक रूपमें उन्होंने एक पैसा भी जाने देना कभी पसन्द नहीं किया। जहां, जिस समय, जैसा विवेक बताना चाहिये उसमें वे कभी उपेक्षा नहीं करते। उनका जीवन ऐसे बीसों उदाहरणोंसे भरा हुआ है और जिनमेंसे अनेकोंकी मुझे प्रत्यक्ष जानकारी है लेकिन उनके उल्लेखकी यहां जगह नहीं है।

पिछले वर्ष बंगालमें जो भयंकर अन्नकी महंगी फैली और उनके जन्मस्थान अजीमगंज-मुर्शिदाबाद आदिमें बिचारे गरीबोंकी जो प्राणहारक दुर्दशा होनी शुरू हुई, उसे देख कर उनका दिल कंपित हो गया और अपनी शक्तिभर उन्होंने कंगालोंको मुफ्त और गरीबोंको अल्प मूल्यमें धान्य वितरण करनेका प्रबन्ध, स्वयं अपने मनुष्यों द्वारा किया, जिसमें कोई ४ लाख रूपये उन्होंने खर्च खाते मांड दिये। परन्तु औरोंकी तरह न उन्होंने किसी फण्ड-मण्डलका आश्रय लिया लिवाया और न अखबारोंमें उसके आंकडे छपवा कर अपने नामका बाजा बजवाया।

धर्म, समाज, साहित्य और देशके कार्यमें उन्होंने लाखों ही रूपये अपने जीवनमें खर्च किये परन्तु उसका उन्होंने कोई हिसाब नहीं रखा। मित्रों, कुटुम्बी जनों, सगों और आश्रितोंको भी उन्होंने बहुत कुछ द्रव्य दिया, परन्तु उसको कभी उन्होंने प्रसिद्धिके रूपमें प्रकट नहीं किया। प्राचीन कलात्मक एवं इतिहासविषयक सामग्रीका संग्रह करनेमें उन्होंने सबसे अधिक द्रव्यव्यय किया लेकिन उसको भी, अपना गौरव बतानेकी दृष्टिसे, उन्होंने कभी जाहिरमें रखना पसन्द नहीं किया।

उनका जीवन सब तरहसे संयत था। ४४-४५ वर्ष जैसी साधारण उम्रमें उनकी धर्मपत्नीका स्वर्गवास हो गया परन्तु उन्होंने फिरसे विवाह सम्बन्ध करनेका किंचित् भी विचार नहीं किया। योगमार्गकी तरफ उनकी अच्छी श्रद्धा और कुछ प्रवृत्ति भी थी। कुछ ध्यान और जापादि भी नियमित करते रहते थे। इतने बडे धनवान् होने पर भी उन्हें किसी वस्तुका व्यसन नहीं था। व्यसन था तो केवल साहित्यावलोकनका और कलात्मक-वस्तुसंग्रहका। स्थूलबुद्धि और संस्कारशून्य मनुष्यकी संगति उनको बिल्कुल रुचिकर नहीं होती थी। विद्वानोंका सहवास उनको सदैव प्रिय लगता था। कलकत्ता युनिवर्सिटी, रॉयल एसियाटिक सोसायटी, वंगीय साहित्य परिषद् तथा कलकत्ता रीसर्च इन्स्टीट्युट आदि संस्थाओंके प्रमुख संचालक और साहित्यिक कार्यकर्त्ता आदि विद्वानोंसे उनका घनिष्ठ परिचय और खास मेलमिलाप था। शायद कलकत्ताके कुछ थोडेसे ही धनपति उनको ठीक जानते होंगे, लेकिन विद्यापति सभी बडे विद्वान् उनको बहुत अच्छी तरह जानते थे।

इसी विशिष्ट विद्यानुरागिताके कारण उनको 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' का इतना अधिक आकर्षण था और इस 'ग्रन्थमाला' को उन्होंने अपने जीवनका एक विशेष प्रियतर कार्य मान लिया था। उनके ऐसे ज्ञानप्रिय आत्माके उत्साहके वश हो कर ही मैंने भी इस ग्रन्थमालाको अपना जीवनशेष कार्य बना लिया और इसकी प्रगतिमें अपनी सर्व शक्ति समर्पित कर देनेका साध्य स्थिर कर लिया। मेरा स्वास्थ्य, मुझे इस कार्यसे मुक्त होनेके लिये, वारंवार भयसूचक घंटी बजाता रहता है और वह प्रायः अब आखिरी नोटीश देनेकी दशाके भी नजदीक पहुंच रहा है, तब भी मेरा मन सिंघीजीके उत्साहको लक्ष्यमें रख कर, इससे निवृत्त होनेको तत्पर नहीं हो रहा है।

यद्यपि, ग्रन्थमालामें जल्दी जल्दी जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित किये जा सकें उतने प्रकाशित होते देखनेकी उनकी बडी उत्सुकता और उत्कंठा रहती थी; परन्तु साथमें, मेरा कृश शरीर, अत्यल्प आहार और बहुत अधिक परिश्रम देख कर, वे मुझे हमेशां उसके लिये रोकते रहते थे। मैं खुद ऐसा श्रम करूं उसकी अपेक्षा इस काममें अच्छे सहायक हो सके वैसे सहकारी तैयार करनेका उनका आग्रह रहता था और उसके लिये वे यथेच्छ खर्च करनेको तत्पर थे। उनका खयाल था कि मेरा ऐसा यह दुर्बल देह कितने दिन तक चल सकता है। इससे ग्रन्थमालाका कार्य मेरे पीछे भी ठीक चलता रहे वैसी व्यवस्था करने-करानेकी मुझसे आशा रखते थे। मैं, अपने पीछे इस कामको ठीक तरहसे चलाता रहे ऐसा कोई योग्य उत्तराधिकारी विद्वान् रख जाऊं, इसके लिये वे मुझसे सदा आग्रह करते रहते थे। परन्तु विधिका विधान उससे विपरीत निकला। मैंने अभी तो उनकी उस आशाको सफल बनानेका कुछ प्रयत्न शुरू ही किया था, कि वे मुझे यों ही बीचमें छोड कर उस धामको चले गये जहांसे फिर कोई पीछा नहीं आता और मै यहां बैठा हुआ उनके पुण्यस्मरणोंको, इस तरह लेखबद्ध करनेका, आज यह श्राद्ध कर्म कर रहा हूं।

जिस परम पूजनीया माताकी सेवामें सदा हाजर रहनेकी उनके मनमें दृढ ग्रन्थि बंधी हुई थी और जिसकी जीवनशेष क्रिया अपने हाथोसे करके फिर यथेच्छ परिभ्रमण करनेकी एवं स्थाननिर्मुक्त होकर जहां दिल चाहा वहां निवास करनेकी, परम

अभिलाषा कर रखी थी – उस व्याधिग्रस्त, जराजीर्ण वृद्ध माताके परम वात्सल्य भावकी एवं महाविलापकी भी कोई कल्पना न कर, निर्मम भावसे चल बसे। वह माता जो इस पुत्रवियोगके असह्य भारसे भग्नहृदया होकर चार महिने पीछे अपने पुत्रकी संभाल लेनेको स्वयं भी परमधामके लिये प्रस्थान कर गई।

अब तो अन्तमें, उस धामके अधिष्ठाता परम पुरुष और परम शक्तिरूप जगन्माता-पिता इन परलोकवासी आत्माओंको परम शान्ति प्रदान करें यही मेरी परम अभिलाषा है।

*

सिंघीजीकी सत्संतति और उनके सत्कार्य

सिंघीजी पुण्यवान् पुरुष थे। उनके जन्म लेने बाद ही उनके पिताजीका व्यवसाय बढा और वे एक छोटेसे व्यापारीके रूपमेंसे बढ कर क्रोडपति होनेकी प्रसिद्धि प्राप्त कर सके। उनके कुटुंब और सगे संबंधीयोंका परिवार अच्छा समृद्ध और सुविस्तृत हैं। वे अपने पीछे अत्यन्त सुयोग्य और सर्वकार्यक्षम तीन पुत्र तथा छोटे बडे पांच पौत्र और तीन पौत्रियां छोड गये हैं। उनके पुत्र, अपने पुण्यश्लोक पिताके सर्वथा अनुरूप और आदर्शके पथगामी हैं। संस्कार, सदाचार, शिक्षण और सत्संगति आदि सभी बातोंमें ये अपने पिताका अनुकरण करनेवाले हैं। सिंघीजीके संकल्पित और स्थापित कामोंको तद्वत् चालू रखनेकी और उसमें यथायोग्य वृद्धि करनेकी भी इनकी पूरी सदिच्छा है।

श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीने अपने पिताकी पुण्यस्मृतिके निमित्त, मेरी प्रेरणासे, भारतीय विद्या भवनको ५० हजार रूपयोंका उदार दान दे कर, और उसके द्वारा उक्त नाहार लाईब्रेरीको खरीद कर, भवनको एक अमूल्य निधिके रूपमें भेट की और इस प्रकार अपने स्वर्गस्थ पिताकी उस अप्रकट शुभकामनाको, जिसका कि इनको बिल्कुल पता ही नहीं था, परिपूर्ण किया।

इसी तरह श्रीमान् नरेन्द्रसिंहजीने अपने पिताके पुण्यार्थ कलकत्तेके जैन भवनको ३०-३५ हजारका दान दे कर तथा सराक जातिकी उन्नतिके निमित्त, पिताजीका चालू किया हुआ सहायताके कार्यका भार उठाकर, अपनी उदारवृत्तिका खाता शुरू किया है। सिंघीजीके स्वर्गवासके बाद इन तीनों भाईयोंने मिलकर कोई ५०-६० हजार रूपये दान-पुण्यमें खर्च किये और उसी तरह, अपनी दादीमां अर्थात् सिंघीजीकी पूजनीया माताका जब स्वर्गवास (नवंबर, १९४४) हो गया तो उनके पीछे भी इन बन्धुओंने गत जनवरीमें कोई इतने ही हजार रूपये पुण्यार्थ व्यय किये।

सिंघीजीकी स्मृतिको अमर करनेवाला जो सबसे बडा कार्य – जिस कार्यको सिंघीजीने अपने जीवनका परमप्रिय कार्य माना था वह – सिंघी जैन ग्रन्थमालाका प्रकाशन उसी तरह चालू रखनेका श्रीराजेन्द्रसिंहजी तथा श्रीनरेन्द्रसिंहजीने उदात्त भावसे मेरे सम्मुख स्वीकृत किया है। इसके अतिरिक्त सिंघीजीका और भी कोई विशिष्ट प्रकारका सार्वजनिक स्मारक बनाया जाय इसकी भावना ये सिंघी बन्धु कर रहे हैं।

परमात्माकी कृपासे इनकी भावना सफल हों और ये दिन प्रतिदिन ऐसे सत्कार्योंसे अपने स्वर्गवासी पिताकी प्रतिष्ठाको सवाई बढा कर 'सवाई सिंघी'का पद प्राप्त करें, यही हमारी आन्तरिक मनःकामना है। तथास्तु।

*

अनुपूर्ति – सिंघीजीकी लिखी हुई 'एक योजना'

मैंने अपने स्मरणोंमें, पृ० ८२ पर, सिंघीजीने मुझे अपनी आखिरी मुलाकातमें जिस '**एक योजना**' को देख जानेके लिये देनेका जिक्र किया है, वह योजना यहां पर दी जाती है। यह योजना संपूर्ण सिंघीजीके अपने हाथकी लिखी हुई है। इसको मैंने उस समय तो यों ही देख कर वापस कर दी थी। क्यों कि उसके बाद, उनसे इस बारेमें बातचीत करने जैसी परिस्थिति ही नहीं रही। उनके स्वर्गवासके पश्चात्, जब मैं पिछले सप्टेंबरमें कलकत्ता गया तब उनके कागजातोंमें यह योजना मिली तो उनके सुपुत्रोंने मुझे इसका उपयोग, उनके पुण्यस्मरणोंमें करनेके लिये दी।

यह योजना सिंघीजीके ज्ञानप्रिय हृदयकी एक विशेष भावना प्रकट करती है। उन्होंने जिस प्रकार ग्रन्थोंके उद्धारके लिये 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'की स्थापना की, उसी प्रकार जैन संस्कृति और जैन साहित्यके विषयमें प्रावीण्य संपादन करनेवाले कुछ विद्वानोंको तैयार करनेकी भी उनकी उत्कृष्ट मनशा थी और इस दृष्टिसे वे कई अभ्यासियोंको स्कॉलर्शिप वगैरहकी मदद सदैव दिया करते थे। परन्तु बनारसमें पण्डितजीके रहनेसे उनके पास अनेक ऐसे विद्यार्थी आते रहते थे जो इस प्रकारकी नियमित स्कॉलर्शिप और छात्रवृत्तिके इच्छुक और अधिकारी दृष्टिगोचर होते थे। ऐसे योग्य छात्रोंको आर्थिक उत्तेजन दे कर, उनको अपने अध्ययनमें विशिष्ट प्रकारकी सफलता प्राप्त करनेमें उत्साहित करना चाहिये जिससे भविष्यमें हमको – समाजको अच्छे विद्वानोंकी प्राप्ति सुलभ हो – इस प्रकारका परामर्श सिंघीजीको पंडितजी वार-वार दिया करते थे। इधर 'भारतीय विद्या भवन'में भी मेरे पास पोष्ट ग्रेज्युएट विभागमें और संस्कृत विभागमें उच्च अध्ययनाभिलाषी विद्यार्थी आने लगे और जिनको भवनने अच्छी योग्य छात्रवृत्तियां देनेका उपक्रम चालू किया, तब मैंने भी सिंघीजीसे कुछ ऐसे छात्रोंको उनकी ओरसे नियमित और व्यवस्थित छात्रवृत्तियां दी जानेकी प्रेरणा की। इसके परिणाममें उन्होंने अपनी यह '**एक योजना**' तैयार की थी जिसको कार्यान्वित करनेके पूर्व ही वे दिवंगत हो गये और यह योजना यों ही कागज पर लिखी पडी रही!

इस योजनाका उद्देश बतला रहा है कि सिंघीजी एक ऐसा ट्रस्ट बनाना चाहते थे जिसकी आयमेंसे उनकी इस प्रस्तावित योजनाका ध्येय सफल होता रहे। यद्यपि उनका स्वर्गवास हो गया है और वे अब इस योजनाकी सफलता देखनेके लिये पार्थिव शरीरसे हमारे बीचमें विद्यमान नहीं है, तथापि उनका पुण्यवान् आत्मा परलोकके पवित्र धाममें स्थित हो कर अपनी आन्तरिक दृष्टिसे हमारे कार्योंका अवलोकन अवश्य कर रहा होगा। उनके सत्पुत्र अपने पिताकी इस अन्तिम योजनाको कार्यान्वित करनेका संपूर्ण सामर्थ्य रखते हैं और मैं आशा रखता हूं कि वे जरूर इसे सफल करेंगे।

मुझे यह लिखते हुए हर्ष होता है कि – उनके चिरंजीवोंने भारतीय विद्या भवनान्तर्गत 'सिंघी जैनशास्त्रशिक्षा पीठ' के तत्त्वावधानमें जैन साहित्य और संस्कृति विषयक उच्च अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंके उत्तेजन निमित्त, मासिक १०० रूपये स्कॉलर्शिप देना निश्चित किया है।

यही यथार्थ पितृतर्पण है।

*

३.१२.

एक योजना

प्रास्ताविक—मैंने अपने प्रारम्भिक जीवनमें ही अपने पुण्यश्लोक स्वर्गवासी पितृदेवसे जैन धर्म और जैन तत्त्वज्ञानके विषयमें कुछ शिक्षा पाई थी, जिससे मेरी अभिरुचि जैन दर्शन और जैन साहित्यके प्रति प्रथमसे ही रही है। उसीके फल स्वरूप तथा स्वर्गीय पूज्य पितृदेवकी पुण्य स्मृतिमें "श्री सिंघी जैन ग्रन्थमाला" की स्थापना हुई है, जो साहित्य रसिक इतिहास वेत्ता मुनिजी श्री जिनविजयजीके सुयोग्य प्रधान सम्पादकत्वमें करीब बारह वर्षसे प्रकाशित हो रही है। जिसमें जैन-साहित्य-पारावारसे उद्धृत साहित्य, इतिहास और तत्त्वज्ञान आदि विषयके प्रौढ, अपूर्व तथा कई सर्वथा अज्ञात ग्रन्थरत्न आधुनिक पद्धतिके अनुसार संशोधित-सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुके हैं; और इसी स्वल्पकालके अन्दर ही इन विषयोंके प्राच्य और प्रतीच्य विशिष्ट विद्वानों की प्रशंसा और सौहार्दपूर्ण दृष्टि भी आकर्षित कर चुके हैं। वर्तमानमें वैसे ही उच्चकोटिके कुछ ग्रन्थ छप रहे हैं और कुछ ग्रन्थ छपनेके लिये तैयार हो रहे हैं। आशा है कि अबसे यह कार्य और भी विस्तार और प्रगतिपूर्वक चलेगा।

शिल्प, स्थापत्य, इतिहास और पुरातत्त्वसे संबंध रखनेवाली अन्य चीजोंका शौख मुझे छोटी उम्रसे ही रहा, जो बौद्धिक विकाशके साथ साथ क्रमशः विशेष वृद्धिंगत हुआ। उसके फलस्वरूप मैंने अपनी शक्तिभर प्राचीन और मूल्यवान् अनेक वस्तुओंका संग्रह किया है, जो पुरातत्त्व, इतिहास और कलाकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। परन्तु इन वस्तुओंका प्रकृत उपयोग और वास्तविक मूल्यांकन उन उन विषयोंके सुयोग्य विद्वानोंके द्वारा ही हो सकता है। मेरे निजके अनुभवकी बात है कि इतने बाह्य साधनोंकी सुलभता होते हुए भी इन विषयोंकी चर्चा, खोज और अध्ययन करके इससे लाभ उठाने वाले सुयोग्य विद्वानोंका अपने समाजमें एकान्त अभाव है और यह अभाव मुझे बहुत ही अखर रहा है।

"श्री सिंघी जैन ग्रन्थमाला"में प्रकाशनके उपयोगी ग्रन्थोंके संकलन, संशोधन और सम्पादनके कार्यमें सहकार और साहाय्य देनेवाले उपयुक्त विद्वानोंका अभाव, उस कार्यमें अगाध परिश्रम करनेवाले उसके प्रधान सम्पादक मुनि श्री जिनविजयजीको इतना खटकता है और वैसे व्यक्तियोंको जुटानेमे पंडितजी और मुनिजीको इतना बोझ और परिश्रम उठाना पडता है कि कभी कभी उनोंके मनमें भी भविष्यकी प्रगतिके लिये निराशाकी झलक दिखाई देने लग जाती है।

करीब सो वर्ष हुए 'इस' देशमें भारतीय सभी विद्याओंका अध्ययन और अध्यापन एक नई दृष्टिसे होने लगा है, जिसके पुरस्कर्ता मुख्यतया विदेशी विद्वान ही रहे। इसके फलस्वरूप यूरोप और अमेरिकाकी यूनिवर्सिटिओं, कोलेजों और खानगी संस्थाओंकी तरह भारतमें सरकारी, अर्धसरकारी, राष्ट्रीय, खानगी अनेक संस्थाओंमें, अनेक प्रकारकी जुदी जुदी भारतीय विद्याओंको पढने पढानेवालोंका तथा उन पर काम करनेवालोंका एक सुयोग्य वर्ग तैयार हुआ है जो इस दिशामें किमती काम कर रहा है।

भारतीय विद्याओंमें जैन परम्पराका एक विशेष स्थान है। उसके पास अनेक प्रकारकी बहुमूल्य पुरातन सम्पत्ति है जिसका अध्ययन अध्यापन पाश्चात्य देशोंकी तरह इस देशमें भी मुख्यतया जैनेतर वर्ग ही कर रहा है।

जैन परम्परामें सुयोग्य और बुद्धिमान व्यक्तियोंकी कमी नहीं है परन्तु इस क्षेत्रमें उनका लक्ष्य उतना नहीं गया है जितना कि जाना आवश्यक हो पडा है, और इसी कारण, जैन-समाज पुरानी और नई विद्याओंके बारेमें विशेष परावलम्बी बन गया है। वह दूसरोंकी विद्यासंबंधी तपस्याका कुछ मूल्य तो आंक सकता है परन्तु खेदका विषय है कि खुद उतनी तपस्या करनेमें रस नहीं लेता। इससे जैन समाजका विद्याविषयक अंग, जो भूत-कालमें दूसरे दर्शनोंके मुकाबिलेमें विशेष बलवान गिना जाता था, अब निर्बल बन चुका है, या बन रहा है। और जो भारतके समान रूपसे विकाशकी दृष्टिसे भी अखरनेवाला है। यह कमी किसी अंशमें तभी दूर हुई मानी जा सकती है जब कि विद्याके उच्च सभी केन्द्रोंमें थोडे बहुत सुयोग्य जैन भी प्रतिष्ठित हों, और भिन्न भिन्न विषयमें गौरवपूर्ण काम करते हों। यह वस्तु तभी संभव है जब कि इस दिशामें अनेक होनहार युवकोंका मनो-योग आकर्षित हो। इसके वास्ते सबसे पहली जरूरत है छात्रवृत्तिओंके द्वारा विद्यार्थीओंको उत्तेजन देनेकी। इस विचारसे मैं कुछ कायमी छात्रवृत्तियोंके निभावके निमित्त एक **स्थायी कोष** स्थापित करता हूं, जिसके व्याज या आमदनीसे नियमित रूपसे छात्रवृत्तियां प्रदान की जाया करें। आशा करता हूं कि मेरे उत्तराधिकारीयोंके द्वारा इस कोषमें यथा-संभव वृद्धि ही होती रहेगी।

जैन समाजके श्वेताम्बर–दिगम्बर मुख्य दो फिरकोंमेंसे दिगम्बर परंपरामें तो अनेक गृहस्थ पंडित और कुछ प्रोफेसर भी हैं। उस समाजमे अनेक योग्य विद्या-संस्थायें भी हैं; और गृहस्थ छात्रोंको उत्तेजन देनेवाले खास खास उदारचेता महानुभाव भी हैं। परन्तु श्वेताम्बर फिरकेमें, खास कर उच्च कोटिके गृहस्थ विद्वानोंको तैयार करनेकी दृष्टिसे, न तो कोई संस्था है न कोई ऐसा कायमी उत्तेजन ही है। इसलिये इस अंगकी पूर्तिके निमित्त मेरी छात्रवृत्तिओंका क्षेत्र मैं परिमित ही रखता हूँ। तेरा पंथीओंको छोड कर मूर्तिपूजक और स्थानकवासी दोनों ही श्वेताम्बर हैं और दोनों ही में विशिष्ट गृहस्थ विद्वानोंकी कमी करीब करीब एकसी है। इसलिये मेरी छात्रवृत्तियोंका क्षेत्र उक्त दोनों फिरके रहेंगे।

कोषकी पूरी योजना नीचे लिखे अनुसार है

नाम–इस कोषका संक्षिप्त नाम "श्री सिंघी जैन कोष" रहेगा। उसका पूरा नाम "बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी जैन कोष" रहेगा।

उद्देश्य–इस कोषके मुख्य दो उद्देश्य हैं।

१ अधिकारी विद्यार्थीयोंको निर्दिष्ट विषयके अध्ययनके लिये छात्रवृत्ति देना।

२ सुयोग्य लेखकोंकी लिखी जैनविषयक पुस्तकोंके लिये पुरस्कार देना, और सुयोग्य विद्वानोंके द्वारा शिक्षा संस्थामें निर्दिष्ट विषय पर व्याख्यान दिला कर उसे लेखबद्ध कराना और प्रकट करना।

छात्रवृत्तिके अधिकारी–इस कोषमेंसे दी जानेवाली छात्रवृत्तिओंके अधिकारी नीचे लिखी योग्यतावाले और नीचे लिखे अनुसार अध्ययन करनेवाले होंगे।

(१) जो संस्कृतके साथ मेट्रीक्युलेशन परीक्षा पास हों और आगे प्राच्यविद्या विभागकी किसी परीक्षाके साथ B. A. का अध्ययन करना चाहते हों।

(२) जो संस्कृतके साथ B. A. पास हों और इतिहास, तत्त्वज्ञान या संस्कृत ले कर M. A. होना चाहते हों।

(३) जो प्राच्य विद्या विभागमें अध्ययन करना चाहते हों।

(४) जो उपरोक्त किसी विषयमें M. A. हो जानेके वाद आगे जैन परम्परासे सम्वद्ध किसी विषय पर डॉक्टरेट करना चाहते हों।

(५) जो प्राच्य विद्या विभागमें किसी भी विषयमें आचार्य परीक्षा देनेके वाद जैन परम्परासे सम्वद्ध किसी विषय पर संशोधन (रिसर्च) करना चाहते हों।

छात्रवृत्तिकी रकम–

(क) उपरोक्त नं. १ के अधिकारीको इन्टर तक मासिक रु० १५) और B. A. तक मासिक रु० २०) मिलेगा।

(ख) उपरोक्त नं. २ के अधिकारीको मासिक रु० ३०) मिलेगा।

(ग) उपरोक्त नं. ३ वाले अधिकारीको प्रवेशिका या मध्यमा तक मासिक रु० २०) तथा शास्त्री या तीर्थ तक मासिक रु० २५) और आचार्य तक मासिक रु० ३०) मिलेगा।

(घ) उपरोक्त नं. ४ और नं. ५ के अधिकारीको मासिक रु० ५०) दो वर्ष तक मिलेगा।

अध्ययनका स्थान–(१) प्राच्य विद्या विभागके लिये वनारस हिन्दु युनिवर्सिटी, गवर्नमेन्ट संस्कृत कोलेज–वनारस, कलकत्ता संस्कृत कोलेज; ये स्थान नियत है. (२) B. A. और M. A. के लिये वनारस हिन्दु यूनिवर्सिटी, कलकत्ता युनिवर्सिटी और बॉम्बे युनिवर्सिटी है. (३) संशोधन (रिसर्च) के लिए वनारस हिन्दु युनिवर्सिटी, कलकत्ता युनिवर्सिटी, भारतीय विद्याभवन–बम्बई, तथा गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी–अहमदावाद है।

निवन्धके लिये पुरस्कार–जैन तत्त्वज्ञान, जैन साहित्य, जैन मूर्त्तिकला, जैन चित्रकला, जैन स्थापत्य, जैन इतिहास इत्यादि जैन परम्परासे सम्बन्ध रखनेवाली किसी भी विषय पर लिखी हुई मौलिक पुस्तक, यदि नियुक्त समितिके द्वारा पुरस्कारपात्र सावित हो, तो उसके वास्ते वार्षिक रु० ५००) देना। गुजराती और हिन्दीमें छपी पुस्तककी पसन्दगी और पारितोषिक वितरण भारतीय विद्याभवन–वम्बईके जिम्मे रहेगा। अंग्रेजी और बंगालीमें छपी हुई पुस्तकोंकी पसन्दगी और पारितोषिक वितरणके लिये कलकत्ता युनिवर्सिटीको उतनी ही रकम वार्षिक दी जायगी।

व्याख्यान–तीन वर्षमें रु० १०००) की रकम किसी युनिवर्सिटीको देना जो किसी भी जैन विषय पर विशिष्ट वक्ताको आमन्त्रित करके चार लिखित व्याख्यान करावे, जिसका नाम "सिंघी व्याख्यान" रहेगा, वे व्याख्यान "श्री सिंघी जैन ग्रन्थमाला"मे छपेंगे।

पुरस्कारके लिये पसन्द की जानेवाली पुस्तक किसी भी जैन जैनेतर लेखककी हो सकती है। व्याख्यानके लिये आमन्त्रणका अधिकारी भी कोई जैन जैनेतर सुयोग्य व्यक्ति हो सकता है।

* * *

परिशिष्ट १

[श्री मुन्शीजीने बाबू श्री बहादुर सिंहजी सिंघीको लिखा हुआ ऑफिसियल पत्र]

26 Ridge Road,

Bombay, 14th Aug. 1942.

MY DEAR SINGHIJI,

Shri Muniji told me about the conversation that you had with him as regards the Singhi Jain Series as also your intended donation to the Bharatiya Vidya Bhavan. I am deeply obliged to you for the kindly interest that you have taken in this matter.

For the last three years and a half, thanks to friends, like you, we have been able to build up a good Indological Institution and a fine building which unfortunately for the moment is with the Military.

Muniji also told me that you are willing to give by way of donation to the Bhavan—the copyright in all the works published so far; that you are also willing to pay the expenses incidental to the preparation and publication of further works in this Series which are being published under the editorship of Muniji. I understand that you were good enough to consider the question of donating Rs. 10,000/- to the Bharatiya Vidya Bhavan for a hall in the Bhavan to be named after you.

In view of your generous intentions I think I would get the Bharatiya Vidya Bhavan to do the following:—

If you give us the copyright of the works of the Singhi Jain Series and the Donation the Bhavan can:

(a) Name the Jain Shastra Shiksha Pith which the Bhavan is conducting a Shree Singhi Jain Gnyan Pith;

(b) The Bhavan will appoint Muni Jinavijayaji as the Head of the Department so long as he is willing to work and as such he would be the Editor of the Singhi Jain Series as he has been hithertobefore;

(c) That whatever monies you donate for the Gnyan Pith would be used exclusively for the purpose of that Department and the publication of the Jain Series.

(d) That whatever books connected with the Jain Shastra published by the Bhavan also will be included in this Series;

(e) That the sale proceeds of the books will also be credited to the account of this Department and will be utilised for maintaining it and publishing further works;

(f) Even if a grant is not received from you for the annual maintenance of this department and the publication of works the Bhavan undertakes to continue the Series from the surplus sale proceeds of the Series and maintain the Singhi Gnyan Pith as part of the Bhavan;

(g) That a hall will be named Shree Bahadur Singhji Singhi Hall.

On hearing from you on this we will immediately take steps to get this approved by the Committee.

I agree with Muniji and yourself that now that we three are collaborating we should strenuously increase our work for the coming five years.

Yours sincerely
K. M. MUNSHI.

परिशिष्ट २

[सिंघीजीके ऑफिसियल पत्र जो श्री मुन्शीजीको लिखे गये]

Azimganj,
24-9-42

MY DEAR MUNSHIJI,

I was in due receipt of your letter of the 14th ultimo.

I am thankful to you for your kindly suggesting to change the name of the Jain Shastra Shiksha Pith which is now being conducted by the Bharatiya Vidya Bhavan to that of the Shree Singhi Jaina Gnyan Pith, in view of my donation to the Bhavan—the copyright in all the works published so far in the Singhi Jain Series. But in the talk that I had with Muniji Shri Jina Vijayaji I had no idea of establishing any connection with the Jaina Shastra Shiksha Pith, and I am still of the same opinion. The Jain Shastra Shiksha Pith should continue its activities as heretofore without any interference or connection by or with me.

My only aim and object was to connect the work of the publication of the Singhi Jaina Series with the Vidya Bhavan, and for that purpose in view I propose the following terms, which I hope will be acceptable to the Executive Body of the Bharatiya Vidya Bhavan.

1 I shall give the copyright of the books published hereafter in the Singhi Jain Series, to the Bharatiya Vidya Bhavan.

2 Muniji Sri Jina Vijayaji to remain the Chief Editor of the Singhi Jain Series, as long as he is willing and able to work.

3 I shall pay the emoluments of Muniji as heretofore and as settled between him and me hereafter.

4 I shall pay the emoluments of other Sub-editor or Sub-editors and other employees as will be appointed according to the requirements and selection of the Chief Editor, Shri Muniji.

5 I shall pay all the costs of papers, printing charges, binding charges and other costs incidental to the preparation and publication of the Singhi Jain Series, the accounts of which will be passed by Muniji and will be submitted to me annually by the Vidya Bhavan.

6 The nett sale-proceeds of the books published in the Singhi Jain Series to be included and credited in the account of the said Series and to be utilized towards the publication of the said Series as above.

7 The Bharatiya Vidya Bhavan to remain hereafter as the publisher of the Singhi Jain Series and shall hand over to me 50 copies of each of the books published in the Series free of charge, and shall also distribute free of charge to the person or persons as directed by the Chief Editor.

8 The selection of the works to be published in the Singhi Jain Series is to be left entirely to the discretion of Muniji as its Chief Editor, who will do so in consultation with me.

9 Even if a grant or the expenses as mentioned above are not paid or borne by me in future, for the continuation and maintainance of the work of the publication of the books in the Singhi Jain Series, the Bharatiya Vidya Bhavan shall continue the editing and publishing of new works, or reprinting of the books already published in the Series, as directed by the Chief Editor, from the surplus sale-proceeds of the books of the Series published up to that period.

10 In case of the absence of the Chief Editor and the stoppage of a grant or the expenses from me, the selection of the works to be published in the Series from surplus sale-proceeds as provided above, is to be left to the discretion of a suitable person to be appointed by the Bharatiya Vidya Bhavan.

11 Any provision made at the present moment for future when Muniji and myself or any one of us shall not be in the land of the living, will be entirely a hypothetical one and therefore has been left out intentionally. New arrangements shall have to be made with my successor or successors and the Executive Body of the Bharatiya Vidya Bhavan, in case I do not make any permanent provision for the continuation of the publication of the Singhi Jain Series during my lifetime, and my successor or successors elect to continue to bear the expenses of such publication.

12 I shall donate Rs. 10,000/- (Ten thousand) in cash towards the expenses of constructing a Hall in the centre of the second floor of the Bharatiya Vidya Bhavan building, and the said hall to be designated after the name of the person to be suggessed by me.

Yours sincerely,
BAHADUR SINGH SINGHI

Azimganj P. O. (Bengal)
5th January, 1943.

MY DEAR MUNSHIJI,

Adverting to my letter to you dated 24-9-42 to which I have not yet the pleasure of a reply, I wish to add the following terms and provisions in the matter of my donating to the Bharatiya Vidya Bhavan—the copyright of the books in the Singhi Jain Series, hitherto and to be published hereafter.

13 In case the Bharatiya Vidya Bhavan in future for any reason whatsoever indefinately stops or becomes unable to continue publication of books in Singhi Jain Series or in the event of the Bharatiya Vidya Bhavan ceasing to exist, which God may forbid, the copyright of all the books of the Singhi Jain Series published up to that time shall revert back to me or to my heirs and successors and all the books of the said series in stock or in possession of the Bharatiya Vidya Bhavan including in the press, if any, shall be made over to me or my heirs and successors.

With reference to your suggestion for changing the name of the Jain Shastra Shiksha Pith to Shree Singhi Jain Gnyan Pith, *vide* clause (a) of your letter dated 14-8-42. I have no objection to the same, provided I shall not have to bear or contribute any expenses for the post and nothing out of the sale proceeds of the books of the Singhi Jain Series is spent towards the upkeep of the post. I am however willing to pay the remuneration of Professor Gopani or any other incumbent of the post, if and so long as he will be engaged by Muni Shree Jina Vijayaji as his assistant in the publication work.

I hope that all the points are now clear and the matter may be placed before the Committee to have their formal sanction.

Yours sincerely,
BAHADUR SINGH SINGHI.

स्वर्गस्थ श्रीसिंघीजीके कुछ संस्मरण।

*

[लेखक—जैन दर्शनशास्त्राचार्य, पण्डितप्रवर श्रीसुखलालजी संघवी]

स्व० बाबू बहादुरसिंहजी सिंघीके साथ मेरे परिचयका सूत्रपात ई० १९१८में हुआ। ई० १९४४ तकके इस लम्बे समयमें हम दोनों जुदे जुदे स्थानोंमें अनेक बार मिले; अनेक बार बहुत दिनों तक साथ भी रहे। समाज, धर्म, तत्त्वज्ञान, साहित्य, कला, इतिहास और पुरातत्त्व आदि अनेक विषयोंपर उनके साथ मेरी चर्चा-वार्ता भी हुई। कभी कभी, साथ प्रवास भी किया। साहित्य और समाजके उत्कर्षकी दृष्टिसे कई बार कार्यसाधक योजनाओंके बारेमें उनके साथ विचार करनेका भी काफी प्रसंग आया। इन सब प्रसंगोंमें मेरे मन पर सिंघीजीकी अनेक असाधारण विशेषताओंकी जो गहरी छाप पड़ी है, उसमेंसे कुछ विशेषताओंका निर्देश, यहाँ उनके प्रथम वार्षिकश्राद्धकी स्मरणाञ्जलीरूपसे करना चाहता हूँ।

बीजमेंसे वटवृक्ष

ई० १९४२के सितम्बरमें, जब कि सिंघीजी अपने जन्मस्थान अजीमगंजमें थे, मै वहां गया था। मैंने प्रश्न किया कि 'इस अजीमगंज जैसे नवाबी शहरमें और व्यापारी कुटुंब तथा संस्कारमें आपको पुरातत्त्व, कला, इतिहास आदिका शौख कैसे लगा?' उन्होंने जो उत्तर दिया उसमें मुझको एक छोटेसे बीजमेंसे बड़े बरगदकी कहानी दिखाई दी। वे अपने मातापिताके इकलौते पुत्र थे। उस समयकी हैसियतके अनुसार उन्हें उनके पिताजी बहुत मामूली हाथखर्ची देते थे। उनका बाहर बहुत जाना-आना पिता-माता पसंद कम करते थे। तो भी वे अपने मकानसे सटे हुए श्रीयुत पूर्णचन्द्र नाहर—जो उनके मोसेरे भाई होते थे—के मकानमें जाया-आया करते थे। नाहरजी पुरातत्त्वके शौखीन और तत्सम्बन्धी चीजोंके संग्राहक थे। सिंघीजीने नाहरजीके पास कुछ सिके, चित्र आदि देखे और उनसे कुछ पूछताछ भी की। नाहरजीके बड़े चावके साथ समझाने पर धीरे धीरे सिंघीजीके दिलमें पुरानी और कलामय चीजोंके संग्रहकी इच्छाका बीजवपन हुआ। फिर तो वे अपनी हाथखर्ची ऐसी चीजोंको खरीदने और जुटानेमें ही लगाने लगे। पिताजीसे खानगी वे अपनी माताजीसे भी थोड़े बहुत पैसे पाते थे। उसको भी उन्होंने इसी शौखकी तृप्तिमें खर्च-

करना शुरू किया। कुछ सिक्के, कुछ चित्र आदि चीजें इकट्ठी हुईं। कभी उन्हें पिताजीने देखा तो वे भी प्रसन्न हुए और फिर तो कहा कि तुम्हें यदि ऐसा शौख है तो चलो मैं भी एक पुराना भण्डक दिखाता हूँ। उस भण्डकमेंसे सिंघीजीको पुरानी बहियाँ और एकाध यादी मिली। जिसमें जगत् सेठके खजानेकी अनेक चीजें दर्ज थीं। सिंघीजीकी खोज और संग्रहविषयक रसवृत्ति इतनी अधिक प्रदीप्त होती गई कि फिर तो उनका वह पेशा ही बन गया। व्यापार और कारोबारका काम बढ़ता गया। आगे उसका भार उनके कंधोंपर भी आया पर खोज और संग्रहकी वृत्ति घटनेके बजाय और भी बढ़ी। वे जहाँ रहते और जाते, जहाँ कहीं प्रवास करते, वहाँ सर्वत्र उनकी धून कला, पुरातत्त्व, इतिहास आदि विषयोंसे सम्बद्ध नाना प्रकारकी चीजोंको देखने, खरीदने और संग्रह करनेकी ही रहती थी। जिसकी प्रतीतिके लिये दो एक खास प्रसंगोंका उल्लेख करना ठीक होगा।

कलकत्तेमें कोई गृहस्थ रत्नकी मूर्तियाँ लेकर आया है जो मोर्गेज रखना चाहता है; ऐसी जानकारी एक बार बाबूजीको मिली। उधर उस गृहस्थकी बातचीत स्वर्गवासी दरभंगाके महाराजासे चल रही थी। सिंघीजीको, मालूम होते ही वे उस गृहस्थके पास होटलमें पहुँचे तो दरभंगा महाराज बाहर निकल रहे थे। महाराजाकी व्याजकी शर्त कुछ सख्त थी। सिंघीजीने मौका देखकर जैसी उस गृहस्थने शर्त चाही, तदनुसार स्वीकार करके वहीं एक लाखका चेक दे दिया और उन रत्नमूर्तिओंको ले आये। वह कीमती तो थीं ही, पर साथ ही वह ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी थीं। इसलिये सिंघीजीने कुछ भी आनाकानी विना किये उस गृहस्थकी बात मंजूर कर ली। ये मूर्तियाँ छत्रपति शिवाजी और उनके कुटुम्बकी पूज्य देवताएँ हैं जिन पर उस समयका लगा चन्दनका अंश अब भी मौजूद है।

ई० १९३२ में सिंघीजी गुजरानवाला जैन गुरुकुल, पंजाबमें वार्षिकोत्सवमें प्रमुख होकर गये थे। मैं भी साथ था। उन्होंने सुना कि अमुक कसबेमें, जो कि लाहोर से काफी दूर है, एक जैन गृहस्थके पास सुंदर जैन मणिमूर्ति है। वह मिल न सके तो आखिरको दर्शनकी दृष्टिसे वे बहुत श्रम लेकर वहाँ गये। उस गृहस्थने मूर्ति तो न बेची पर बड़े आदरसे सिंघीजीको मूर्तिका दर्शन कराया। वे आ कर मुझसे उस मूर्तिकी खूब तारीफ़ करने लगे और कहा कि

अगर वह बेचता तो दामकी दरकार न करके भी ले लेता । इसी धूनसे उन्होंने देहलीके बादशाही भण्डारकी कही जानेवाली अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक और सचित्र पुस्तकें खरीद कर अपने संग्रहमें रखी हैं जिनमेंसे कुछ बादशाह जहाँगीरकी हस्तलिखित और उनके प्रसिद्ध चितेरेके द्वारा चित्रित भी हैं । उनके संग्रहमें अनेक चीजें लखनऊ और मुर्शिदाबादके नवाबोंके भण्डारमेंसे भी आई हुई हैं जिनके वास्ते सिंघीजीको बहुत श्रम और खर्च करना पड़ा है । वे १९२६ ई० की गरमीमें जैन कॉन्फरेन्सके अधिवेशनपर बंबई आये थे । पर उनकी मुख्य प्रवृत्ति तो पुरानी चीजोंके संग्रहकी ओर ही थी । जुदा होते समय कुछ पैसेका प्रश्न आया तो वे कहने लगे कि अभी तो हमारे पास खर्ची कलकत्ते पहुँचने जितनी ही रह गई है । मैंने आश्चर्यसे पूछा कि 'आपकी जेब तो भरी रहती है फिर ऐसा क्यों ?' उन्होंने कहा 'हमारे व्यसनने खिस्सा खाली कराया ।' कितनी खरीद की ? इस प्रश्नके जवाबमें उन्होंने कहा कि 'करीब ४५००) रूपयेकी चीजें खरीद चुका हूँ । अब अधिक रहना हुआ तो पैसा मंगाना पड़ेगा ।' क्या क्या और कैसी चीजें मिलीं ? इसके जवाबमें उन्होंने सब ब्यौरेवार वर्णन किया तो मैंने कहा कि 'अमुक अमुक पोथी या चीज तो निकम्मी है ।' उन्होंने कहा कि 'उन चीजोंमें जो थोड़ी वस्तुएँ मुझे मिली हैं वे ही मेरी दृष्टिसे मूल्यवान् हैं'—ऐसी चीजोंके साथ थोडा कूड़ा कर्कट तो आ ही जाता है । वे १९४२ की अन्तिम यात्राके समय बंबई आये थे । तबीयत ठीक नहीं थी; पर मोटर लेकर वे अपने परिचित पुरानी चीजोंके व्यापारिओंके घर जाते थे । पुस्तक, चित्र, सिक्का कारीगरीके नमूने आदि जो कुछ नया-पुराना अच्छा मिला उसे परीक्षापूर्वक खरीद लेते । छोटी उम्रमें चित्तपर पड़े खोजके बीजने आर्थिक अभ्युदय और ज्ञानवृद्धिके साथ साथ इतना अधिक विकास साधा कि जिसे हम उनका असाधारण संग्रह देखकर एक वटवृक्ष कह सकते हैं ।

सिंघीजीका संग्रह सिक्कोंकी दृष्टिसे विश्वभर के ऐसे संग्रहोंमें शायद तीसरे नम्बर पर आता है । जिसमें जुदे जुदे सब समय के, सब धातुओं के सिक्के हैं । उनके संग्रहकी दूसरी चीजें भी वैसे ही महत्त्वकी हैं । कोई भी ऐतिहासिक या पुरातत्त्वविद् सिंघीजी के संग्रहको विना देखे अपनी कलकत्तेकी यात्राको पूर्ण नहीं मान सकता था ।

सिंघीजीकी शिक्षा

सिंघीजीका अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी, उर्दू और गुजराती भाषाका गहरा और शुद्ध परिचय देखकर मेरी उनकी पढ़ाईके बारेमें जिज्ञासा हुई। मैं नहीं जानता था कि उन्होंने स्कूल-कोलेजकी तालीम कितनी ली है। मेरे प्रश्नके जवाबमें उन्होंने कहा कि 'मैंने तो हास्कूलकी तालीम भी पूरी नहीं की। मैं पढ़नेमें विशेष श्रम करता न था और ऐशआराम तथा खेल-कूदमें लगा रहता था। माता-पिताका अनुसरण करनेके लिये सबकभर कर लेता था, पर पढाईमें दत्तचित्त न था।' तो फिर आपका इतना ज्ञान कैसे बढ़ा? इसके जवाबमें उन्होंने अपना किस्सा सुनाया। वे बोले 'मेरे बड़े साले मुझसे पढ़ाईमें आगे रहते थे। एकबार मुझे चानक लगी कि मैं सालेसे भी पीछे रहूँ तो फिर बहनोईका बड़प्पन कैसे? इस चानकने मुझे इतना उत्तेजित किया कि फिर तो मेरा सारा ध्यान पढ़ाईमें लग गया। इसका फल यह आया कि मुझे अनेक विषय पढ़नेका शौख लगा, समझ भी बढ़ती गई और स्कूली पढ़ाईके अलावा अन्य विषयोंकी पुस्तकें भी पढ़ने लगा। और यह अध्यवसाय आज तक चालू है।'

धर्म और तत्त्वज्ञानकी शिक्षा

सिंघीजीके पिता जिन्हें हम बड़े बाबूजी कहते थे वे जैसे कारोबारमें निष्णात थे वैसे ही जैनधर्म और जैन परंपरासे सम्बन्ध रखनेवाली बातोंमें भी निष्णात थे। और साथमें जैसे धार्मिक और श्रद्धालु थे वैसे ही ज्ञानरसिक भी थे। वे खुद ही अपने घरमें परिवारको धर्म और तत्त्वकी शिक्षा देते रहे। इससे सारे परिवारमें धार्मिकता और जिज्ञासाका पूरा वातावरण आज तक रहता आया है। सिंघीजीने अपने पिताजीसे ही जैन धर्म और जैन तत्त्वज्ञानकी खास शिक्षा पाई थी। वे जैसे जैन आचारके मर्मोंको सीख चुके थे वैसे ही कर्मतत्त्व, जीवविचार, नवतत्त्व, नय-निक्षेप-अनेकान्त आदि तात्त्विक विषयोंको भी अधिकांश पिताजीसे सीख चुके थे। पर उनकी यह शिक्षा उम्रकी वृद्धिके साथ साथ बढ़ती गई और संप्रदायकी सीमाको लांघकर विस्तृत बनी। वे सिलोनी बौद्ध प्रचारक धर्मपाल अनगारिकके व्याख्यानोंको सुननेके लिये नियमित बौद्ध मन्दिरमें जाते। और भी कहीं कोई धर्म और तत्त्वज्ञान आदि विषयों पर बोलनेवाला सुप्रसिद्ध विद्वान् आया तो वे उसके व्याख्यान भी सुनते। इतना ही नहीं, पर यथासंभव उस उस धर्म और तत्त्वज्ञानकी प्रमाणभूत पुस्तकें भी पढ़ते थे। समझ और

ग्रहणशक्ति जैसी उनकी तीव्र थी वैसी ही उनकी तर्कशक्ति भी तीव्र थी। इसलिये हर एक बातको समझने और स्वीकारनेमें उनके मनमें 'क्यों और कैसे' ऐसे प्रश्न आते ही थे। मैंने अनेक बार देखा कि विना दलीलकी कोई भी बात माननेके लिए वे तैयार नहीं। फिर यह भी देखा कि सतर्क और युक्तियुक्त बात जंचनेपर उन्हें उसे माननेमें बिलकुल हिचकिचाहट भी नहीं होती थी। चाहे वह चालू सांप्रदायिक मान्यतासे विरुद्ध कितनी ही क्यों न हो। इस कारणसे उनका मानस बिलकुल असांप्रदायिक बन गया था। अत एव किसी अन्य संप्रदायके आचार या मन्तव्योंके साथ उनके मनमें सांप्रदायिक संघर्ष होते मैंने नहीं देखा। एक बार कहे कि 'दिगम्बर–श्वेताम्बरका मूर्तिस्वरूपकी मान्यताविषयक झगड़ा निपटाना सरल है। क्यों कि उभयमान्य अमुक अमुक प्रकारकी मूर्तिका निर्माण संभव है।' एकबार तत्त्वज्ञानकी चर्चा चली जब कि एक बुद्धिशाली फिलोसोफीके M. A. व्यक्ति भी उपस्थित थे। सिंघीजीने कहा कि 'जैन संमत केवलज्ञान अगर सर्वग्राही है तो ईश्वरको व्यापक और सर्वज्ञ माननेवाले दर्शनोंके नजदीक जैन दर्शन इतना अधिक आ जाता है कि फिर तो विवाद मात्र शब्दका ही रह जाता है।' उनकी यह बात सुनकर उस M. A. पास व्यक्तिने मुझसे कहा कि 'कहाँ व्यापारी मानस और कहाँ फिलॉसोफीका गूढ प्रश्न? ऐसा सुमेल शायद ही किसी इतने बडे जैन व्यापारीमें हो।' तत्त्वज्ञानकी कितनी ही गहरी चर्चा क्यों न हो मैंने उनको उससे ऊबते कभी नहीं देखा, बल्कि कई बार तो वे बीचमें मार्मिक प्रश्न भी कर डालते। यहाँ उनकी शक्ति और रुचिका निदर्शक एक प्रसंग निर्दिष्ट करना पर्याप्त होगा। उन्हें नींदकी शिकायत थी। १९३९ का जून मास था। सिंघी सिरीजमें उस समय नई पुस्तक प्रमाणमीमांसा प्रकाशित हुई थी। सवेरे मैंने पूछा कि 'रात कैसी विती?' उन्होंने कहा कि 'मजे की।' 'क्या आज नींद आई?' ऐसा जब मैंने प्रश्न किया तो उन्होने कहा कि 'नींद तो क्या आती है? पर रातको मजेमें प्रमाणमीमांसाकी प्रस्तावना पढ़ गया।' मैंने कहा कि 'वह तो बहुत जटिल और कंटाला लानेवाली है।' तो वे कहने लगे कि 'मैं तो एक ही आसनसे पूरी प्रस्तावना पढ़ गया और मुझे उसमें कोई अरुचि या कंटाला नहीं आया।' सिंघीजीकी आदत थी कि कोई महत्त्वकी पुस्तक आई तो उसकी प्रस्तावना आदि पढ़ जाना। सिंघी सिरीजकी पुस्तकोंके लिये तो उनका यह सुनिश्चित क्रम था कि पुस्तक प्रकाशित हुई कि

उसके प्रस्तावना आदि मार्मिक भाग पढ़ लेना। चाहे वह किसी विषयकी और किसी भाषामें क्यों न हो। इस तरह उनकी धर्म और तत्त्वज्ञानकी शिक्षा शुरू तो हुई घरमें और संप्रदायके घेरेमें, पर आगे जाकर वह व्यापक और संप्रदायमुक्त बन गई।

श्रद्धा और तर्कका सुमेल

सिंघीजीकी तर्कशक्ति बहुत तीव्र थी। परन्तु उसका श्रद्धाके साथ सुभग मेल देखनेमें आता था। कुटुम्ब पितृपरंपरासे जैन होनेके कारण तथा माता-पिता दोनोंकी दृढ़ श्रद्धालुताके कारण घरमें ऐसे अनेक नियम थे जो खास जैन धर्मसे सम्बन्ध रखते हैं। अमुक अमुक नियत तिथियोंपर सब्जीका त्याग, खास तिथि और पर्वके दिन मंदिरमें पूजा पढ़वाना इत्यादि प्रथाएँ नियमित रूपसे आज भी उनके घरमें चालू हैं। सिंघीजी उन नियमों और प्रथाओंका बराबर पालन करते रहे। फिर भी उनके तर्कवादने उन्हें कट्टर बनानेसे रोका था। वे खुद तो धर्मप्रथाका पालन करते रहे पर अन्यान्य अन्धश्रद्धालु जैनोंकी तरह वे दूसरोंके बारेमें कट्टर न होकर उदारवृत्ति वाले थे। दूसरा अपनी इच्छासे चाहे जैसा बरते इसमें उन्हें नाराजी नहीं। एक वार सांवत्सरिक पर्व था जो जैनोंका सर्वोत्तम पर्व है। उस दिन सिंघीजी नियमानुसार अपनी माता और कुटुम्बके साथ प्रतिक्रमण करने गये। मैं उसमें संमीलित न था। प्रतिक्रमण समाप्तिके बाद हम दोनो मिले। खमत-खामना हुआ। मैंने देखा कि मेरे प्रतिक्रमणमें संमीलित न होनेसे उनके मन पर कोई असर नहीं हुआ है। मैंने पूछा कि 'आपको प्रतिक्रमणमें कैसा रस आया?' उन्होंने कहा 'थोड़ा प्रतिक्रमणका और अधिकतर नींदका ही रस, बहुतसे प्रतिक्रमण करनेवालोंमें देखा।' जब मैंने कहा 'इतनी लम्बी क्रियामें जवानोका एकाग्र रहना सरल नहीं।' तब वे कहने लगे कि 'यह सांवत्सरिक प्रतिक्रमणकी क्रिया इतनी अधिक लम्बी हो गई है कि वह आप ही अपने भारसे क्षीण हो रही है। और मै देख रहा हूँ कि नई पीढियाँ दिन ब दिन उस भारसे ऊब रही हैं। अब तो सरल और रोचक आवश्यक कर्म जरूरी है। हम तो अपनी जींदगी तक जैसा भी है करते रहेंगे; पर दूसरोसे वैसी अपेक्षा रखना बुद्धिमानी नहीं।' पर्यूषणमें कल्पसूत्रका वाचन-श्रवण जैनपरंपरामें असाधारण महत्त्व रखता है। छोटे बड़े स्त्री पुरुष सभी उसमें भाग लेते हैं। अजीमगंजमें कोई साधु १९४२ ई० में चातुर्मास थे। साधुजी

एक प्रभावशाली आचार्यके शिष्य थे। बाबूजी कल्पसूत्र सुननेको तो जाते न थे पर एक दिन साधुजीका दर्शन करने चले गये। तब साधुजीने कहा कि 'आप तो संघके मुखिया हैं, कल्पसूत्र तो जरूर सुनना चाहिए और उपाश्रयमें आना चाहिए।' इतने प्रथापालक होते हुए भी बाबूजीने जवाब दिया कि 'जिस ढंगसे घंटों तक कल्पसूत्र बांचा जाता है, उस ढंगसे सुननेमें मुझको तो कोई लाभ नहीं दिखता। जो प्रश्न हमारे मनके हैं, जो समाजके हैं, जो धर्मके हैं उनका तो कोई स्पर्श तक नहीं करता। और साधुमहाराज यह भी नहीं देखते कि कल्पसूत्रकी कौनसी बात बुद्धिग्राह्य है और कौनसी काल्पनिक। सुननेवाले अधिकतर नींद लेते हैं और बांचनेवाला बांचता जाता है। मैं तो अपने घरमें ही अपने आप कुछ योग्य स्वाध्याय कर लेता हूँ। यदि आप लोग समय और श्रोताओंको न पहचानेंगे तो कल्पसूत्रका स्थान घट जायगा।' सिंघीजीकी यह स्पष्टोक्ति सुनकर साधुजी सन्न रह गये।

पर्यूषणमें धर्मस्थानोंमें साधुजीके मुखसे प्रथानुसार कल्पसूत्र आदि सुननेका रिवाज जैन परंपरामें बहुत रूढ़ हो गया है। उसके स्थानमें धार्मिक, सामाजिक आदि जीवनस्पर्शी विषयोंके ऊपर चालू जमानेके अनुसार सुविद्वानोंके द्वारा व्याख्यान करानेकी नई प्रथा गुजरातमें शुरू हुई है, जो पर्यूषण व्याख्यानमाला कहलाती है। सामान्यतया कट्टर जैन इस व्याख्यानमालाको धर्मनाशक समझते हैं। कलकत्ताके समझदार जैन युवकोंने अपने यहाँ भी इस व्याख्यान-मालाका प्रारम्भ किया जिसमें स्थानिक और बाहरके सुप्रसिद्ध विद्वान् बुलाये जाते थे। नवयुवकोंके इस रूढ़िपरिवर्तनमें बाबूजीका हार्दिक सहयोग था। वे व्याख्यानश्रेणीमें नियमित जाते थे। १९४० ई०में उस प्रसंग पर मैं भी कलकत्ता गया था। वहाँ देखा तो बाबूजीके प्रभावशाली सहयोगके कारण सारा जैन समाज उस व्याख्यानश्रेणीमें रस ले रहा था। यहाँ तककी एकदिन एक पुराने जैनसूरिने भी उस व्याख्यानमालामें एक व्याख्यान करके सहयोग दिया।

जब १९३१ ई०में वे पालीताना गये तो मैं भी साथ था। सिंघीजी, माताजी आदि पालखीमें बैठ कर रोज पहाड़के ऊपर दर्शन-पूजा निमित्त जाते थे। मैं तो चलकर तलहट्टी तक जाता था। ऊपरसे उतरते समय तलहट्टीमें यात्रिओंके लिए नाश्ता-पानीका सुप्रबन्ध हमेशा रहता है। जब यात्री कुछ खाते पीते हैं तब वे बेचारे पालखी उठानेवाले अलग चुपचाप बैठे रहते हैं, जिनके कंधों पर चढ़ कर

आरामके साथ यात्री यात्राका पुण्योपार्जन करता है और अंतमें तलहट्टीमें स्वादु भोजन भी पाता है। मैंने इस वेतुके वर्तावकी टीका की कि 'आपको जो लोग यात्रा कराते हैं उनको छोड़ कर तलहट्टीमें मिठाई खाना क्या आपको शोभा देता है? तलहट्टीवाले उनके वास्ते प्रबन्ध न करें तो न सही पर कंधे पर चढ़नेवाले यात्रिओंको तो कुछ सोचना चाहिए।' मेरे इस कथन पर सिंघीजी आदि सब मंडलीका ध्यान गया। उन्होंने तत्क्षण निर्णय किया कि रोज अपनी पालखी उठानेवालोंके लिये एक मन गुड़ बांट देना। सिंघीजी और माजीकी सद्वृत्त और विद्वान् साधुके प्रति बड़ी भक्ति रहती थी। तो भी पालीतानाकी धर्मशालाओंकी आगे पीछेकी गंदगी और अव्यवस्था देख कर वे वहाँ साधुसाध्वीओंके पास जाना पसंद करते न थे। पर जब सुना कि एक मोरवीकी रानीका अच्छा अनाथाश्रम है तब वे वहाँ गये। वहाँकी सफाई और अनाथोंकी परिचर्या देख कर उन्हें धर्मशालाओंकी स्थिति और भी अखरी। वे भावनगर गये तो थे यात्रा-निमित्त; पर जब वे मेरी सूचनाके अनुसार दक्षिणामूर्तिको देखने गये तब उसके बालमंदिर आदि विभागोको, शिक्षकगणको तथा कार्यक्रमको देख उनके मन पर उत्तम छाप पड़ी।

सिंघीजीकी सुधारक वृत्ति

सिंघीजीका जन्म और संवर्धन रूढ़िचुस्त शहर और समाजमें हुआ था। फिर भी योग्यायोग्यका विचार करनेकी शक्तिके कारण उनकी मनोवृत्ति विविध क्षेत्रोंमें सुधारककी थी। वे श्वेताम्बर थे, पर कहा करते थे कि 'दिगम्बर आदि दूसरे फिरकोंके साथ उत्तरोत्तर मेल बढ़ानेका प्रयत्न आवश्यक है।' इसी कारण वे बाबू छोटेलालजी जैन जो दिगम्बर हैं उनके साथ अनेक कार्योंमें सच्चे दिलसे मिल कर भाग लेते थे। सामाजिक प्रथामें भी उनका विचार सुधारगामी था। इसीसे उन्होने अपने बड़े पुत्र श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीका लग्न पुरानी रूढ़ प्रथाका त्याग करके गूजरात – अहमदाबादमें किया और विरोधी रूढ़िवादी जो उनकी बिरादरीमें हैं उनकी एक भी बात न सुनी और न उनके तीव्र विरोधकी परवाह की। वे सामान्यतः वैधव्य प्रथाके समर्थक न थे और यदि कोई विधवा निर्भयता और सच्चाईसे पुनर्लग्न करती हो तो वे उसके सम्मानके पक्षपाती थे। उन्हें स्त्रीशिक्षणको उत्तेजन देना बड़ा पसन्द था। एक बार हम लोग जालन्धर आर्य-कन्या विद्यालयमें गये। उसके स्थापक लाला देवराजजी जो बहुत बुड्ढे और

निवृत्त थे, उनसे मिले। जब उस वृद्ध पुरुषने कन्याविद्यालयको दिखाया जिसमें एक अलग विधवा विभाग भी था, तो बाबूजीने विना मांगे ही अमुक दान देनेको कह दिया। परांपूर्वसे अजीमगंजे कलकत्ता आदिमें खास कर मारवाड़ी समाजमें पर्देकी प्रथा है जो सिंघीजीके घरमें भी चली आती है। पर पिछले वर्षोंमें मैंने देखा कि उनके घर पर वह प्रथा बहुत शिथिल हो रही है और उसे वे ठीक भी समझते थे। वे मुझे कहते थे कि स्त्रियाँ साहस करें तो हमको कोई आपत्ति नहीं।

योगाभ्यास

सिंघीजीने अपने पितासे योगप्रक्रियाका अभ्यास भी किया था। बड़े बाबूजी अमुक हद तक योगप्रक्रिया जानते थे और वे यथासंभव घरमें सीखाते भी थे। एक बंगाली महानुभाव थे जो इस विषयमें बड़े बाबूजीके गुरु थे। बड़े बाबूजीकी इच्छा थी कि बहादुरसिंह उनसे और भी अधिक सीखे। पर मुझको सिंघीजी कहते थे कि 'मैंने जो अभ्यास कर लिया था उससे आगे सीखनेके लिये उस बंगाली महानुभावके पास अवकाश न था।' सिंघीजी आबूनिवासी शान्तिविजय-महाराजके भक्त थे। मैंने उनसे उक्त महाराजजी और उनकी योगशक्तिके बारेमें पूछा था कि 'आपको कैसा अनुभव है?' तो उन्होंने कहा था कि शान्तिविजयजी महाराजका योगाभ्यास उस बंगाली महानुभावकी अपेक्षा अवश्य अधिक है। मैंने उनको शान्तिविजयजी महाराजके सुनाई देनेवाले चमत्कारोंके बारेमें भी पूछा था तो उन्होंने सच सच जैसा अनुभव वे कर चुके थे कह बताया था। पर इतना निश्चित है कि शान्तिविजयजी महाराजके प्रति उनका आदर पर्याप्त था। फिर भी वे कहते थे कि 'महाराजजी कोई काम व्यवस्थित कर नहीं सकते।' मैंने एक बार पूछा कि 'आपने योगप्रक्रियाका परिणाम अपने जीवनमें प्रयोग करके कभी देखा है?' उन्होंने हाँ कहते हुए कहा कि 'केन्सरके भयसे मुखमें एक बार मुझे बड़ा ऑपरेशन करना पड़ा। यूरोपियन तथा देशी बड़े बड़े सर्जन थे। घर पर ही ऑपरेशन हुआ। डॉक्टरोंने जब क्लोरोफोर्म देना चाहा तो मैंने कहा कि क्लोरोफोर्मकी कोई जरूरत नहीं। आप लोग बेधड़क अपना काम कीजिए। मैं निष्कम्प स्थिर रहूंगा। तिसपर भी बीचमें आप लोग जरूरत समझें तो खुशीसे दवाई सुंघाना।' उन्होंने अपने योगाभ्यासके अनुसार जीभ आदिका विनियोग अमुक स्थानमें किया। ऑपरेशन बहुत सख्त था; करीब पौना घंटा

चला। उनके मित्र बंगाली डॉक्टर गिरीन्द्रशेखर जो आजकल कलकत्ता यूनि-वर्सिटीमें प्राध्यापक हैं उन्होंने नाडी पकडी थी। पर आखिर तक क्लोरोफोर्म देनेकी जरूरत नहीं हुई। मैंने कहा कि 'क्लोरोफोर्म देनेपर भी मैं तो ऑपरे-शनमें चिल्ला पडा था।' उन्होंने कहा कि 'यदि आपको इस प्रक्रियाका अभ्यास होता तो शायद ऐसा न होता।' पर मानसिक समत्वके बारेमें जब मैंने पूछा तो उन्होंने कहा कि 'यह साधना उस प्रक्रियासे भी सरलतासे सिद्ध होनेकी नहीं।'

सौष्ठवदृष्टि और कलावृत्ति

सिंघीजीकी बैठक हो या उनके बरतनेकी कोई भी चीज हो, उसे देखकर कोई भी समझदार व्यक्ति इतना तो विना जाने रह नहीं सकता कि सिंघी-जीकी रुचि और कलावृत्तिमें दूसरोंकी अपेक्षा एक खास प्रकारकी विशेषता है जो दूसरोंमें सुलभ नहीं। उनकी इस वृत्तिका परिचय मुझे आगरामें उनके प्रथम परिचयमें ही मिल गया। बड़े बाबूजीकी इच्छासे मैंने नई दृष्टिसे आव-श्यक सूत्रका, जिसे प्रतिक्रमण भी कहते हैं, हिन्दीमें अनुवाद विवेचन आदि किया था। आगरेके सुभिते के अनुसार यथासंभव अच्छे ही ढंगसे छपाई शुरू भी हुई थी। मैंने सिंघीजीको छपे थोडे फर्मोको दिखाकर उनका अभिप्राय पूछा कि 'इसमें कुछ सूचना करनी है?' उन्होंने तुरन्त ही कहा कि 'और तो सब ठीक है, पर कागज टाईप इससे भी अच्छे मिले तो और भी अच्छा।' जब मैंने कहा कि 'इसके लिये तो बंबई और कलकत्तेसे टाईप कागज लाने होंगे, और छपे फर्मे रद भी करने होंगे।' उन्होंने उसी क्षण कहा कि 'जो करना पड़े सो करो खर्चका प्रश्न ही नहीं है। पर अच्छेसे अच्छा बनानेका ध्यान रखो।' हमने फिर वैसा ही किया और उनकी सौष्ठव दृष्टि तथा कलावृत्तिकी तृप्तिका भरसक प्रयत्न किया। फलतः वह संस्करण इतना आकर्षक निकला कि आगे उसके ऊपरसे अन्यान्य स्थानोंसे दो संस्करण दूसरे निकले जिनसे उनके प्रका-शकोंने खूब फायदा उठाया। बाबूजीने तो मुफ्त वितरण करने ही के लिये वह आवश्यकसूत्र तैयार कराया था जिसका उस सस्ते जमानेमें भी करीब पांच हजार का बील आगराकी संस्थाको उन्होंने चुकाया। सिंघीजीको चित्र, स्थापत्य आदिका बहुत सक्रिय रस था। वे अपनी नई नई कल्पनाके अनुसार डिझाइन तैयार करवाते थे। एतदर्थ वे अपने पास एक आर्टिस्ट भी रखते थे। भगवान् महावीरके विहार क्षेत्रका नकशा कल्पसूत्रके वर्णनानुसार उन्होंने स्वयं ही खींच

रखा था। उसे वे अच्छे ढंगसे तैयार करके छपाना चाहते थे। १९३९ ई०में जब मैं मिला तो उनसे कहा कि 'जब नकशा तैयार करना ही है तो साथ साथ उन पुराने गांव, कस्बे, शहर, नदी, आदि सब स्थानोंकी भी जांच क्यों न करवावें कि इनमेंसे कौन कैसी हालतमें है? आज कल उसका क्या नाम है? और वह है या नहीं?—इत्यादि। ऐसी जांच करानेसे कल्पसूत्रके उस पुराने वर्णनकी ऐतिहासिकताका भी बहुत कुछ पता चल जायगा और वह नकशा एक प्रमाणभूत वस्तु बन जायगा।' उनको मेरी बात पसंद आई और तुरन्त ही कहा कि 'इस जांचके लिये आदमी खोजिए। पूरे साधनके साथ वह पादविहार करके जगह जगह घूमे और देखे। चाहे जितना खर्च हो मैं करूंगा।' उस समय कार्यक्षम सुयोग्य व्यक्ति प्राप्त करनेका मेरा प्रयत्न सफल होता तो आज उनकी कल्पनाका वह नकशा लोगोंके सन्मुख होता।

वे देश परदेशके सचित्र पत्र-पुस्तक देखते रहते थे। उनमें देखी हुई और वर्णन की गई जुदी जुदी वस्तुओंके ऊपरसे सिंघीजीने एक फवारा बनाना चाहा। डिझाईन के अनुसार काम शुरू कराया, क्या करना, कैसे करना इत्यादि सारी सूचनाएँ कारीगरोंको वे खुद करते थे। अन्तमें उनकी कल्पनाका वह फवारा बन गया जो उनके मकान सिंघीपार्कमें कलकत्तेमें विद्यमान है और उनकी कलावृत्तिका द्योतक है। कोई चीज उन्हें अशोभन पसंद नहीं आती थी। इसीसे दस हजार का बजट पचीस हजार तक पहुंचा पर फवारेको मनमाना बना देखकर उन्हें खर्च नहीं अखरा।

सिंघीजीने अपने तीन पुत्र और एक खुदके वास्ते इस तरह चार बंगलोंका नकशा स्वयं ही तैयार किया था। लड़ाई छिड़ जानेसे जो अभी कागज़ पर ही है। परंतु उनकी बनवाई एक स्मरणीय वस्तुका उल्लेख करना आवश्यक है। उनके बंबई वासी एक मित्र चाहते थे कि पावापुरी जलमंदिरका पुराना पुल यात्रिओंके लिये ठीक नहीं है। इससे नया और अच्छा पुल बनवाया जाय। उस मित्रने यह काम सिंघीजीको सौंपा। सिंघीजीने पत्थर कारीगरी आदिका निश्चय करके आगरासे कारीगर और पत्थर मंगवा कर पावापुरीमें एक सुंदर नया विशाल पुल कलकत्तेमें ही बैठे बैठे अपनी सूचनाके अनुसार बनवाया। परन्तु शोक इस बातका है कि वे उसे अपनी आंखोंसे देखनेका मनोरथ पूरा कर न सके।

चांदी, सोना, लकडी, पत्थर, जौहरात आदिकी अनेक छोटी मोटी चीजें सिंघीजी के द्वारा अपनी कलादृष्टिके अनुसार बनवाई हुई आज भी देखी जा सकती है।

मातृ-पितृभक्ति

अपने माता-पिताके प्रति सिंघीजीका इतना अधिक आदर था कि ऐसे बड़े और स्वतन्त्र मिजाजके पुत्रोंमें कम देखा जाता है। अपनी इच्छा कुछ भी हो पर वे माता-पिताकी इच्छाको प्रधान स्थान देते थे। बडे बाबूजीका स्वर्गवास होनेके बाद जब जब मैं गया और देखा तो मेरे देखनेमें यही आया कि वे दुपहरमें नियमसे अमुक घण्टे माताके पास विताते। कुछ बांचना, उनसे कुछ सुनना, पत्तोंसे खेलना — पर माताको हर तरहसे प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करना। ऑफिसमें कितना ही काम क्यों न हो, मिलनेवाले कितने ही क्यों न बैठे हों; पर उनका माताके पास बैठनेका नियत समय प्रायः निर्बाध रहता था। माताजी भी धर्मरुचि और खास कर योगरुचि थीं। उन्हे जैन शास्त्रके तत्त्वोंका परिचय ठीक था। और शास्त्र सुनना बडा पसंद था। मैं जब कभी माजीके पास बैठता तो शास्त्र और धर्म तत्त्वकी चर्चा चलती। कभी आनन्दघन, कभी चिदानन्द और कभी यशोविजयजीकी कृतिओंका वाचन — श्रवण चलता। बहुधा यही देखा कि उस मातृमण्डलकी चर्चा वार्ताके समय सिंघीजी आवश्यक काम छोडकर भी बैठते थे। सिंघीजीने एक वार कहा कि 'मैं अपना जन्म-दिन आने पर उसकी खुशी माताजीकी आरती उतार कर मनाता हूँ।' माताजीकी परितृप्तिके लिये वे शान्तिविजयजी महाराजके पास महिनों तक आबू आदि भिन्न भिन्न स्थानोंमें कारोबार छोड़कर रहते थे और हजारोंका खर्च करते थे। यों तो वे अपने माता-पिताके साथ जैन-तीर्थोंकी अनेक वार यात्रा कर चुके थे पर १९३१ ई०में वे माताजीको लेकर उत्तर और दक्षिण हिन्दुस्थानके सभी प्रसिद्ध जैन-जैनेतर तीर्थोंमें हो आये।

१९२९ ई०में पिताजीके स्वर्गवासके बाद उनकी स्मृति कायम रखनेकी भावनासे उन्हींको अभिमत विद्या, साहित्य और धर्मकी अभिवृद्धि और उत्तेजन देनेका सिंघीजीका विचार स्थिर हुआ। क्या काम करना, कहाँ करना, कैसे करना, किस दृष्टिसे और किसकी निगरानीमें संचालित करना इत्यादि मुख्य प्रश्नोंपर ऊहापोह होनेके बाद, सिंघीजीने तय किया कि मेरी कल्पना और सम-

झको संतोष दे सके ऐसा व्यक्ति मुनिश्री जिनविजयजीके सिवाय दूसरा नहीं है। सिंघीजी खुद इतिहास-साहित्य-कलारसिक तथा पुरातत्त्वप्रिय थे। और मुनिजी उन विषयोंकी जीवितमूर्ति हैं, ऐसा उन्हें मालूम था। फिर तो उन्होंने सारा काम मुनिजीके सुपुर्द करनेका अंतिम निर्णय किया और मुनिजीसे कहा कि 'बडे बाबूजीकी अमुक इच्छा थी, मेरी अमुक इच्छा है, जैन समाजकी और देशकी क्या क्या जरूरतें हैं और हमारी इच्छाके अनुसार उन जरूरतों की पूर्ति किस तरह हो सकती है—यह विचार आप कीजिए। हम उसमें कभी सूचना करेंगे पर काम करना आपके जिम्मे है। मेरे जिम्मे आर्थिक और दूसरे साधन आपकी सेवामें अधिकसे अधिक उपस्थित करना इतना ही है।' ऐसा कह कर बडे बाबूजीकी स्मृतिके निमित्त बोर्डिंग चलाने, सिरीज निकालने आदिका सारा काम मुनि श्री जिनविजयजीको सौंप दिया। और अन्त तक कभी हस्तक्षेप नहीं किया। जब बात होती या मिलते तो यही कहते कि 'मेरे पिताजीकी भावना और मेरी इच्छा सिद्ध होती है। और होगी तो सुयोग्य विद्वानोंके द्वारा ही। हम तो जितना अपने जीवनमें सदुपयोग करेंगे उतना ही हमारा।'

सिंघी सिरीज और छात्रवृत्ति देने आदिका काम तो शुरू ही था। पर दूसरा एक प्रसंग ऐसा आया जब उन्होंने अन्य धार्मिक काम करनेका भी सोचा। स्वर्गवासी मुनि मंगलविजयजी उन्हे पावापुरीमें मिले। वे चाहते थे कि हम कुछ काम करें और सिंघीजी मदद करें। बाबूजीने उनकी बात सुन कर कहा कि 'आप साधुलोग ऐसा हलवा-पुड़ी छोडकर कैसे काम करेंगे ?' सिंघीजीका वाक्प्रहार काम कर गया। उक्त मुनिजी और उनके शिष्य दोनो कृतनिश्चय हुए तो सिंघीजीने कहा कि 'अच्छा, हम आपको नियत अमुक आर्थिक मदद करेंगे। आप हजारीबाग जिलेमें सराक जाति जो पहले जैन थी उसके उद्धार-का काम शुरू कीजिए। दूसरी मदद भी आ जायगी।' दोनों गुरुशिष्यने उस जिलेमें डेरा डाला। सिंघीजी कलकत्ता बैठे बराबर मदद देते रहे और फिर तो दूसरे भी लोग सहायक हो गये। जो काम आज तक भी चलता है। असलमें सिंघीजीकी यह प्रवृत्ति अपने पिताजीकी स्मृतिके निमित्त ही शुरू हुई थी। इसमें सिंघीजीको अपनी माताजी तथा पुत्रोंका भी पूर्ण सहयोग रहा।

सिंघीजीका दरबार

जमींदारी और दूसरे कारोबारके कारण उनके पास जो दरबार जमता था वह तो दूसरा; पर मैं जिस दरबारका निर्देश करता हूँ वह अलग है। चित्रकार, इतिहासज्ञ, दार्शनिक प्रोफेसर या पण्डित और दूसरे अनेक उस उस विषयके निष्णात उनके पास अनेक कारणोंसे आया करते और कलकत्तेमें जब मैं उनके निकट ऐसा विद्वानोंका दरबार देखता था तो मनमें मन्त्री वस्तुपालका स्मरण हो आता था। सबसे मौनपूर्वक सादर बात सुनना और यथोचित सत्कार करना यह उनका जीवित विद्यापूजन था।

अतिनम्र दानशीलता

सिंघीजी जितने अधिक आतिथ्यप्रिय थे उतनी ही उनकी दानवृत्ति भी उदार थी। वे दान तो यथाशक्ति करते थे पर विशेषता उनकी यह थी कि उसकी जाहिरातका कोई प्रयत्न नहीं करना। निकट परिचय होने पर भी उनके बड़े बड़े और विशिष्ट दानोंका हाल मुझे बहुत पीछे मालूम हुआ। और मैंने उसके बारेमें कुछ पूछा तो बिलकुल संक्षेपमें जवाब मिला। पर उनकी खास विशेषता तो मैंने यह देखी कि दानसे भी अधिक दानपात्रके प्रति नम्रता और आदर। इस विशेषताका सूचक प्रसंग मैं अपने अंगत जीवनसे लिखूं तो उससे कोई औचित्यभंग न होगा।

मैं अमदाबाद गूजरात विद्यापीठमें काम करता था। उस कामको पूरा निपटानेके बाद मेरी एक इच्छा यह भी थी कि मैं और प्रवृत्ति बंध करके अंग्रेजी पढ़ूँ। मेरी इस इच्छाका न जाने उन्हें कहांसे पता चला। १९२८ ई० में जब मैं कलकत्ता था तो एक रोज अचानक मेरे कमरेमें आ कर बैठ गये। मुझसे पूछा कि 'क्या आपकी इच्छा अंग्रेजी पढ़नेकी है?' मैंने कहा 'है तो सही पर अभी समय नहीं आया। शायद दो सालके बाद आवे।' वे कहे कि 'जब समय आवे तब पढ़िये और अच्छा प्रबन्ध करके पढ़िये।' मैंने कहा 'उस समय देखा जायगा।' उन्होंने कहा 'अच्छा रीडर, अच्छा शिक्षक और दूसरा भी सुचारु प्रबन्ध करोगे तो कितने खर्चका अन्दाज है?' मैं शुरुमें सकुचाया। पर अन्तमें उन्होंने ही अच्छी जगह रह कर पढ़नेका अंदाज लगाया कि मासिक ढाई सौ तो चाहिए। मैं चुप था। उन्होंने सत्वर अपने आप मुझसे कहा कि 'ढाई सौ हो या तीन सौ जो खर्च हो आप यदि मुझसे लेंगे तो मैं अपनेको धन्य समझूंगा।'

(येही उनके यथावत् शब्द हैं) मैंने कहा 'समय आने पर देखा जायगा ।' उनके स्वयं स्फुरित, मुझ जैसेके प्रति अकारण नम्र शब्द, सुन कर मेरा चित्त अनेक लागणियोंसे भर गया । १९३० ई० के मार्चमें मैंने गुजरात विद्यापीठको छोड़ा । तब, चाहे जितने समय तक अपेक्षित, सब खर्च, एक एक सालका, एकसाथ पहिले ही से मंगा लेनेको मुझको सिंघीजीने कहा था । मै इंग्रेजीका अपना अभ्यास कहीं बैठ कर एकाग्रताके साथ करना चाहता था पर इतनेमें महात्माजीकी दांडी कूचसे राष्ट्रमें जो हलचल पैदा हो गई उसमें मैं भी बम्बई वगैरहमें प्रचारके कार्यमें व्यस्त हो गया । उस लहरके कुछ शान्त होने पर मैंने अपना अभ्यास शुरू किया जो करीब दो-ढाई वर्ष चलता रहा । सिंघीजी उसमें अपेक्षित सहायता देनेके लिये सदा उत्सुकताके साथ मुझे लिखा करते थे । परन्तु मैं अपनी चित्तवृत्तिके अनुसार बहुत ही संकोचके साथ जब उनसे कुछ रकम मंगवाता तो वे मनमें, मेरे संकोचको देख कर कुछ खिन्न ही होते थे । बनारसमें हिंदुयुनिवर्सिटीमें जो जैन चेयरकी स्थापना, जैन श्वेताम्बर कॉन्फरन्सके प्रयत्नसे की गई थी उसके संचालनके लिये कोई योग्य व्यक्ति मिल नहीं रहा था; अतः कॉन्फरन्सके कुछ अधिकारी मित्रोंने, कुछ समय तक, मुझको उस स्थानके संभालनेकी प्रेरणा की । बनारस यों ही मेरी परम प्रिय विद्याभूमि थी । मेरा चित्त उसके लिये आकृष्ट हो गया और उसमें शान्तिनिकेतनसे श्रीमुनिजीकी भी उत्साहजनक प्रेरणाका पुट मिल गया । सिंघीजीको यह खबर मिली तो उन्होने मुझको तारसे बंबईमें सूचित किया था कि 'आर्थिक दृष्टिसे काशी जानेकी जरूरत नहीं । चाहे जितना और चाहे जहाँ रह कर अध्ययन कर सकते हो ।' ऐसी नम्र और उदार वृत्ति मैंने मात्र मेरे प्रति ही नहीं देखी है । वे बड़े मनुष्यपरीक्षक थे । एक बार जिसे परीक्षापूर्वक चुनते थे उसके साथ उनका वैसा ही व्यवहार रहता था । मैंने देखा है कि मुनिश्री जिनविजयजीको अपनी परीक्षासे चुन कर **'सिंघी जैन सिरीझ'**के सर्वेसर्वा बनानेके बाद उनके प्रति कितना नम्र और आदरशील उदार व्यवहार रहा है । वे मुझसे अनेकबार कहते थे कि 'मेरी सिरीझके लिये मुनिजी जैसे व्यक्तिका मिलना मेरा अहोभाग्य है ।' मुझसे कहते थे कि 'मुनिजी इतना अधिक काम क्यों करते हैं ? और तबीयत क्यों बिगाड़ते हैं ?. सहायक सुयोग्य आदमी रख ले । खर्चका तो कोई प्रश्न ही नहीं । उनकी शक्ति चिरकाल काम दे तो पैसा क्या चीज है ?'

इतनी विवेकयुक्त सच्ची नम्रता व्यापारीमें सुलभ नहीं। ऐसी नम्रता देख कर मुझे भारविका 'न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम् ।' वाक्य याद आ जाता था।

अंतिम इच्छा और अंतिम मुलाकात

ई० १९४३ के ऑगस्टमें उनका एक पत्र मेरे पर अमदावाद आया। जब मै कारवंकलसे मुक्त हो कर हॉस्पीटलसे घर आ गया था। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'डॉ० श्यामाप्रसादजी पहिले मिले थे, और अभी सर् आशुतोष चेयरके प्रोफेसर विधुशेखर शास्त्रीजी मिलने आये थे। उन लोगोंकी इच्छा है कि कलकत्ता युनिवर्सिटीमें जैन-चेयर स्थापित हो और मैं मदद करूं। शास्त्रीजी आप ही को जैन-चेयर पर बुलाना चाहते हैं। इसलिये यदि आप कलकत्ता आवें तो जैन-चेयरके लिये पूरा खर्च करना मुझे पसंद है। आपके खर्चका तो प्रश्न ही नहीं। पर दूसरे सहायक अध्यापकका खर्च भी आप आवें तो मैं कर सकता हूँ' इत्यादि। मैं स्वस्थ होनेके बाद बम्बई आया और आचार्य श्री जिन-विजयजीके साथ सितम्बरमें कलकत्ता गया। थोड़े ही महिने पहले सिंघीजी, सिंघी जैन सिरीझ, भारतीय विद्या भवनको सारे खर्चकी अपनी जवाबदे-हीके साथ, सौंप चुके थे। सिंघीजी दिलसे चाहते थे कि मैं कलकत्ता रहूँ; पर मैंने जब अपना निर्णय बतलाया कि 'अब तो ऐसी कायमी जवा-बदेही लेनेको मै तैयार नहीं हूँ। चाहे, काम शुरू करना हो तो थोड़े महिने जरूर आ जाऊंगा।' मैंने उस समय रहना स्वीकार न किया और उनकी वह अन्तिम इच्छा यों ही रह गई। मै वहाँसे काशीके लिये निकला। विदा होते समय सिंघीजीके उद्गार ये थे कि 'अब तो मिलना कब होता है सो भगवान जाने।' बराबर उस वक्त वे शान्तिविजयजी महाराजके स्वर्गवासके निमित्त होनेवाली शोक सभाके लिये जा रहे थे। इसलिये मुझसे यह भी कहा कि 'गुरुजी मुझसे छोटे थे पर पहले गये। अब देखें हम कब तक जीएँगे और अपना कब मिलना होगा।' यही हमारी अंतिम मुलाकात।

सिंघीजीका सर्वतोमुखी विद्यानुराग

जैसा कि मैंने प्रारम्भमें सूचित किया है सिंघीजीके साथ मेरा परिचय २५ वर्षसे अधिक समय तक रहा है। इस सुदीर्घ परिचयके जितने प्रसङ्ग मुझको अभी स्मृतिगत रहे उनमेंसे अनेकोंको स्थान और समयाभाव के कारण यहाँ छोड़ दिया गया है। पर जो थोड़े प्रसङ्ग-स्मरण मैंने ऊपर दिये हैं उनके ऊपर

से कोई भी पाठक सिंघीजीके बहुमुखी व्यक्तित्वको समझ सकता है और साथ ही जब वह मुनीजीके लिखे विस्तृत परिचयवर्णनको पढ़ेगा तब उसके मनमें यह प्रतीति और भी दृढ़तर और विशद हो जायगी कि सिंघीजीकी विद्याभिरुचि किसी एक विषयमें सीमित न थी। मै गुजरात, मारवाड़, पंजाब, यू० पी०, बिहार और बंगालके अनेक प्रतिष्ठित और धनी मानी जैन कुटुंम्बोंके परिचयमें थोडा बहुत रहा हूँ। कई बड़े बड़े कुटुम्बोंके साथ तो मेरा सहवास-जन्य निकट परिचय भी रहा है; पर सिंघीजी जैसी महानुभावता मैने अभी तक किसी अन्य व्यक्तिमें नहीं देखी है। परम्परासे व्यापारी संस्कारवाले समाजमें, व्यापारिक कुशलतावाले और बुद्धिमान व्यक्तियों का होना सुलभ है; पर व्यापारिक-कौशल और बुद्धिपाटवके साथ सांस्कृतिक विद्याओंकी उत्कट अभिरुचि और कुशलताका सुयोग उतना ही दुर्लभ है। सिंघीजीमें यह सुयोग था इसीलिए मैं उन्हें महानुभाव कहता हूँ। इतिहासप्रसिद्ध वस्तुपाल मंत्रीकी जीवनकथा पढ़ते समय मेरे मनमें कई बार संदेह होता था कि क्या सचमुच इतनी परस्पर विरुद्ध दीखने वाली सिद्धियाँ व्यापारी कुलके एक संतानमें संभव हैं? पर सिंघीजीके विशेष परिचयने मेरे उस संदेहको सर्वथा निर्मूल कर दिया था कि व्यापारी होते हुए भी वह इतिहास, पुरातत्त्व, चित्रकला, स्थापत्य, मूर्तिरचना, निष्कविद्या और मणिरत्न-परीक्षामें निष्णात हो सकता है। १९४२ के सितम्बरमें एक दिन मैंने सिंघीजीके मुखसे कोयले और पत्थरकी विविध जातियोंके स्थान, उत्पत्ति और गुण-दोष विषयक तुलनात्मक वर्णन सुने तो मैं अंतमें सहसा बोल उठा कि 'आप तो इस विषयके अध्यापक हो सकते हैं।'

यों उनका स्वभाव अल्पभाषी था, बाकीके व्यवहारकी बातोंमें जहाँ २० शब्द बोलनेकी आवश्यकता प्रतीत होती वहाँ वे उसे १०में ही खतम कर देना पसंद करते थे, पर इन सांस्कृतिक विषयो की चर्चा करते वे मानों कभी थकते ही न थे। उनके ऐसा सर्वतोमुखी विद्याप्रेमी और कोई धनिक गृहस्थ मेरे परिचयमें नहीं आया।

ऐसे उत्कट विद्याप्रेमके साथ उनकी चित्तवृत्ति भी बड़ी विलक्षण उदार थी, जो बड़े बड़े विद्याप्रेमियोंमें भी बहुत ही कम देखी जाती है। स्वयं ऐसे विशिष्ट रूढिप्रिय एवं पुराने आदर्शवाले समाजके एक सम्मान्य घरानेमें जन्म लेने पर और अपने आसपास संकुचित सांप्रदायिक और संकीर्ण सामाजिक

भावनाका घनीभूत वातावरण फैला रहने पर भी उसका उनके मन पर कोई खास प्रभाव नहीं था। उनकी मनोवृत्ति विचारप्रधान थी, आचारजड नहीं। विचारशील व्यक्ति, जिसका बाह्य आचार फिर कैसे ही मार्गका अनुगामी हो, उनकी दृष्टिमें आदरपात्र रहता था। किसीके विभिन्न आचारको देख कर वे संकुचित या चकित हो जानेकी क्षुद्र वृत्ति रखने वाले नहीं थे। इससे उलटा, किसी भी विचारजड व्यक्तिके विषयमें उनका किंचित् भी आदर भाव नहीं होता था, चाहे फिर वह व्यक्ति औरोंकी दृष्टिमें कितना ही धर्मात्मा क्यों न हों।

उपसंहार

सिंघीजीके साथ एक बार मुनिजीका और मेरा सम्बन्ध होनेके बाद वह केवल स्थिर ही नहीं हुआ, बल्कि वह उत्तरोत्तर बढ़ता और विशद होता गया। उसका क्या कारण? यह प्रश्न मेरी तरह हम लोगोंको जाननेवाले और भी कइयोंके मनमें उठता होगा। इसके उत्तरके साथ ही प्रस्तुत स्मरणका उपसंहार करना चाहता हूँ। ध्येयकी समानता, पारस्परिक गुणदृष्टि और असाम्प्रदायिक स्वतन्त्र मनोवृत्ति – ये तीन ही ऐसा सम्बन्ध बंधनेके मुख्य कारण मुझको प्रतीत होते हैं। कला, स्थापत्य, साहित्य, पुरातत्त्व, इतिहास और तत्त्वज्ञान आदि मूल्यवती भारतीय पैतृक सम्पत्तिकी – विशेषतः जैनपरम्पराश्रित वैसी सम्पत्तिकी – सुरक्षा, उसका ऐतिहासिक दृष्टिसे सम्पादन-प्रकाशन और यथासम्भव परिवर्धन करना यही एकमात्र मुनिजीका तथा सिंघीजीका ध्येय रहा है। जो मेरी प्रकृतिके लिये भी बिलकुल अनुकूल ही था। इस तरह ध्येयकी समानता होने पर भी बाकीके दो तत्त्व न होते तो आपसी सम्बन्धकी इतनी पुष्टि और विशदता शायद ही होती। सिंघीजी धनवान् थे पर उनकी प्रकृति खुशामदप्रिय न थी। हम दोनों यथा-सम्भव विद्योपासक और विद्याजीवी रहे, फिर भी हममेंसे किसीकी प्रकृति खुशा-मदखोर नहीं। तीनोंका-पारस्परिक आकर्षण गुणदृष्टिमूलक रहा और वह मुख्य ध्येयकी सिद्धिके साथ ही साथ वृद्धिङ्गत होता गया। परन्तु पारस्परिक सम्ब-न्धकी विशदताका मुख्य आधार तो मुझको असाम्प्रदायिक स्वतन्त्र मनोवृत्तिका साम्य मालूम होता है। इस वृत्तिके उद्बोध और विकासके साथ ही मुनिजीने तो अपना साम्प्रदायिक वेश और तदनुकूल जीवनव्यवहार कभीका फेंक-फांक दिया था। सिंघीजी यद्यपि पारम्परिक जैन संस्कारमें जन्मे और संवर्धित हुए थे; परन्तु उनकी दृष्टि भी पुरातत्त्वीय और ऐतिहासिक अनुशीलनके साथ साथ

साम्प्रदायिकताके बन्धनसे मुक्त हो कर काम करती थी। हालां कि वे देखनेमें व्यवहारतः सामान्य रूपसे साम्प्रदायिक जैसे दीखते थे। मैं भी पन्थगत संकीर्ण परिस्थितिमें जन्मा और बड़ा भी हुआ, पर एक या दूसरे कारणसे अभ्यास और चिंतनकी वृद्धिके साथ साथ, मेरे मनमें असाम्प्रदायिकताका भाव ही प्रबल होता गया। इस सत्यगवेषक ऐतिहासिक दृष्टिने हम लोगोंके पारस्परिक सम्बन्धको विशद बनानेमें बड़ा काम किया है। मुनिजी इतने अधिक निर्भय और स्वतन्त्र प्रकृतिके मुझको मालूम हुए हैं कि उन्हें कोई भी धनी या विद्वान् दूसरी तरहसे अपने निकट इतना अधिक लानेमें सफल हुआ कभी मैंने नहीं देखा। जैन और जैनेतर परम्पराके अनेक धनी मानी उनके परिचयमें अधिकाधिक आते गये मैने देखे हैं, पर उन्हें जितना सिंघीजी अपने निकट ला सके उतना कोई ला न सका। इसका प्रधान कारण असाम्प्रदायिक स्वतन्त्र मनोवृत्तिकी समानता ही मुझको प्रतीत हुई है। मैं समझता हूँ कि कोई भी पारस्परिक स्थायी कार्यसाधक सुमेल चाहता हो तो उसे ऊपर सूचित तीन तत्त्वोंका अवलम्बन लेना चाहिये।

*

सिंघीजी पूरे राष्ट्रप्रेमी थे—यद्यपि राष्ट्रकी वर्तमान प्रवृत्तियोंमें उन्होंने बाहरसे कोई विशेष सक्रिय भाग नहीं लिया तथापि उनका अन्तर संपूर्णतः राष्ट्रके उत्थान और जागरणमें ओतप्रोत था। इसी तरह वे धार्मिक और सामाजिक सुधारके भी उत्सुक अभिलाषी थे—इस विषयकी जितनी भी सत्प्रवृत्तियां जहां कहीं होती रहती थीं उनमें उनकी पूरी सहानुभूति और सन्निष्ठा रहती थी।

उनके स्वर्गवाससे जैन समाज एक ऐसे महान् व्यक्तित्वसे वञ्चित हुआ है जिसकी पूर्ति होना सहज नहीं।

उनकी उस महान् आत्माको परम शान्ति प्राप्त हो यही मेरी आन्तरिक प्रार्थना है।

* *
*

बाबू श्रीबहादुरसिंहजी सिंघीके जीवनके कुछ स्मारक संवत्सर

*

वि. सं. १९४१ में अजीमगंजमें जन्म। मुर्शिदाबाद, नवाब हाईस्कूलमें मेट्रीक तक पढाई।

वि. सं. १९५४ में बालुचरनिवासी श्रीलक्ष्मीपति सिंहजीके पुत्र श्रीछत्रपति-सिंहजीकी पुत्री श्रीमती तिलक कुमारीके साथ विवाह सम्बन्ध।

सन् १९०४ में ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् राजेन्द्रसिंहका जन्म।

" १९१० में द्वितीय पुत्र श्रीमान् नरेन्द्रसिंहका जन्म।

" १९१४ में छोटे पुत्र श्रीयुत वीरेन्द्रसिंहका जन्म।

" १९१४ में स्थायी निवासके रूपमें कलकत्ता रहने आये। उसी समयसे अपने पिताके कारोबारको स्वयं संभालने लगे।

" १९१८ में श्रीपतिसिंहजी और जगतपतसिंहजीका आपसी झगडेका निकाल करनेके लिये आरबीट्रेटर बने।

" १९१९ में कोलियारी और माइनींगके उद्योगका प्रारंभ किया।

" १९२३ में सबसे पहले जमीनदारी खरीद करनेका काम चालू किया।

" १९२६ में बम्बईमें होने वाली जैन श्वेताम्बर कॉन्फरन्सके प्रेसीडेंट बने।

" १९२८ में इनके पिता बाबू श्रीडालचन्दजीका स्वर्गवास हुआ। पिताजीके पुण्यार्थ प्रायः १०००० हजार गरीबोंको १ सेर पक्के चावलसे भरा हुआ पित्तलका बडा कटोरा, मय ४ आनेके साथ, दान किया। २५ तोला भार चांदीकी रकाबियां, करीब ५०० की संख्यामें बिरादरीके सब घरोमें तथा सब देवस्थानोंमें भेंट दी।

" १९२९ में बालीगंजमें प्रायः ५ लाख रूपयेकी जमीन खरीद की जो अब 'सिंघी पार्क' के नामसे मशहूर है।

" १९३० में अपनी माताको साथ लेकर पश्चिम और दक्षिण भारतके तीर्थस्थानोंकी यात्रा की।

सन् १९३१ में अपने पिताकी स्मृतिमें शान्तिनिकेतनमें 'सिंघी जैन ज्ञान पीठ' की स्थापना की। 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'का प्रारंभ हुआ।

" १९३२ में धर्मपत्नी श्रीमती तिलक सुन्दरीका स्वर्गवास हो गया। उनके पुण्यार्थ अन्यान्य दानादि कार्योंके अतिरिक्त कलकत्तेमें जैन भवनकी स्थापनाके निमित्त १५००० रुपये दान किये।

" १९३२ से श्रीशान्तिविजयजी महाराजके समागममें आने जाने लगे।

" १९३२ में पञ्जाबके गुजरानवाला शहरमें स्थापित 'जैनगुरु कुल'के वार्षिकोत्सवके सभापति बने।

" १९३४ में केशरीयाजी तीर्थके केसके मामलेमें विशिष्ट योग दिया।

" १९३६ में पहले पहल 'हृदय रोग' का आक्रमण हुआ।

" १९३८ के अक्टूबरमें मारवाडके मांडोली गांवमें होनेवाली जैनोंकी एक बडी सभाके प्रेसीडेट बने।

" १९३८ के डीसंबरमें अपने पार्कमें न्युमेस्मेटिक (भारतवर्षके प्राचीन-निष्कविद्या निष्णातोंकी) कॉन्फरन्सका आयोजन किया।

" १९३९ में कलकत्तेमें होनेवाले ओसवाल महासम्मेलनके स्वागताध्यक्ष चुने गये।

" १९४० में कलकत्तेके भारती महाविद्यालय द्वारा स्थापित 'जैन साहित्य परिषद्'के स्थापक–अध्यक्ष चुने गये।

" १९४१ के डीसेंबरमें कलकत्तेमें 'सिंघीपार्क मेला'का बहुत बडा आयोजन किया जिसमें कलकत्तेके सभी बडे बडे लोगोंने और अमलदारोंने पूरा सहयोग दिया। इस मेलेके निमित्त प्रायः ४१००० रूपयोंकी बडी रकम इन्होने रेडक्रॉस फंडको भेट की।

" १९४१ के डीसेंबर ही में कलकत्ताका निवास छोड कर सारे कुटुंबके साथ अजीमगंज जा कर रहने लगे।

सन् १९४२ के नवंबर महिनेसे अजीमगंज वगैरह स्थानोंमें गरीबोंको सस्ते भावसे चावल देने शुरू किये जो १९४३ के डीसेंबर तक बराबर १४ महिनों तक देते रहे। इसमें उन्होंने कोई ३०००००(तीन लाख) रूपये व्यय किये।

" १९४३ के अप्रेलमें, कलकत्ताके रेडीयो स्टेशनसे महावीर जयन्ती उत्सव निमित्त, 'महावीरके उपदेश' पर संभाषण किया।

" १९४३ के मईमें, 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' भारतीय विद्या भवनको समर्पित की। भवनको एक हॉल बनानेके लिये १०००० रूपये समर्पण किये।

" १९४३ के अक्टूम्बरमें बीमारीका आक्रमण हुआ।

" १९४४ के जुलाईमें कलकत्तेमें स्वर्गवास। इनके स्वर्गवास निमित्त इनके सुपुत्रोंने अजीमगंज वगैरह स्थानोंमें कोई ५०००० रुपयेका दान-पुण्य किया।

" १९४४ के नवेम्बरमें इनकी पूजनीया वृद्ध माताजीका स्वर्गवास। इनके पीछे भी सिंघीजीके पुत्रोंने कोई ६०-७० हजार रूपये दान-पुण्य निमित्त व्यय किये।

* *
*